विश्व हिंदी पत्रिका

2012

विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस

विश्व हिंदी पत्रिका 2012

विश्व हिंदी पत्रिका

2012

प्रधान संपादक

श्रीमती पूनम जुनेजा

संपादक

श्री गंगाधरसिंह सुखलाल

विश्व हिंदी सचिवालय
स्विफ्ट लेन, फॉरेस्ट साइड
मॉरीशस

World Hindi Secretariat
Swift Lane, Forest Side
Mauritius

E-mail : info@vishwahindi.com
Website : www.vishwahindi.com
Phone : 00-230-6761196 • Fax : 00-230-6761224

REPUBLIC OF MAURITIUS

माननीय डॉ. वसंत कुमार बनवारी
शिक्षा एवं मानव संसाधन मंत्री
एम.आई.टी.डी. हाउस
फेनिक्स, मॉरीशस

MINISTRY OF EDUCATION AND HUMAN RESOURCES
(Office of the Minister)

संदेश

विश्व हिंदी सचिवालय की वार्षिक पत्रिका के चौथे अंक के लिए अपनी शुभकामनाएँ देते हुए मुझे हर वर्ष की तरह प्रसन्नता तो हो ही रही है, यह प्रसन्नता अब एक दृढ़ विश्वास को भी जन्म दे रही है कि वैश्विक स्तर पर सचिवालय अपने उद्देश्य एवं लक्ष्य की पूर्ति के रास्ते पर पूरे साहस के साथ आगे बढ़ रहा है। यही भावना उभरती है, जब अनुभव होता है कि साल दर साल सचिवालय के कार्यक्रम व गतिविधियों में बढ़ोतरी हो रही है और हिंदी जगत उनका स्वागत भी कर रहा है।

'विश्व हिंदी दिवस' और उसके उपलक्ष्य पर प्रकाशित होने वाली 'विश्व हिंदी पत्रिका' दोनों ही सचिवालय के महत्त्वपूर्ण कार्य हैं, जो विदेशी हिंदी विद्वानों के मॉरीशस आगमन और विश्व भर के विद्वानों के शोध के प्रकाशन के ज़रिए दुनिया भर में हिंदी भाषा की स्थिति की जानकारी को सभी के लिए सुलभ कराते हैं।

मुझे खुशी है कि आज मॉरीशस हिंदी के क्षेत्र में इस प्रकार की गतिविधि का और इस विश्व स्तर के प्रकाशन का केंद्र बना हुआ है। यह हिंदी भाषा को विश्व भाषा के रूप में देखने की हमारी प्रतिबद्धता का ही सबूत है।

मैं अपनी और मॉरीशस सरकार की ओर से विश्व हिंदी सचिवालय के अधिकारियों और इस पत्रिका के प्रकाशन के साथ जुड़े सभी विद्वानों को बधाई देता हूँ तथा विश्व हिंदी दिवस के आयोजन के लिए शुभकामनाएँ भी प्रेषित करता हूँ।

अंततः आप सभी पाठकों और विश्व भर के हिंदी-प्रेमियों को नववर्ष 2013 तथा मकर संक्रांति की शुभकामनाएँ! मुझे विश्वास है कि नया साल हिंदी की प्रगति के मकसद से लिए गए हर संकल्प की सफलता लेकर आएगा।

वसंत बनवारी

(डॉ. वसंत कुमार बनवारी)
24 दिसंबर, 2012

MITD House Phoenix, MAURITIUS
Tel. No. : 686 2402/03, Fax No. : (230) 698 3601
E-mail : vkbunwaree@mail.gov.mu

सत्यमेव जयते

भारतीय उच्चायुक्त
पोर्ट लुई, मॉरीशस

HIGH COMMISSIONER OF INDIA
PORT LOUIS, MAURITIUS

संदेश

10 जनवरी, 2013 को मनाए जानेवाले विश्व हिंदी दिवस के अवसर पर विश्व हिंदी सचिवालय द्वारा अपनी वार्षिक 'विश्व हिंदी पत्रिका' के चौथे अंक का लोकार्पण किया जा रहा है। पत्रिका का संपादक-मंडल इसके लिए बधाई का पात्र है।

आशा है कि पत्रिका के इस अंक में प्रकाशित आलेखों से विश्व में पुन: हिंदी की स्थिति के नए आयामों पर प्रकाश पड़ेगा, जिससे सचिवालय सहित सभी स्थानीय और वैश्विक संस्थाओं में हिंदी की प्रगति और प्रचार की नई दिशाएँ भी प्राप्त होंगी।

हिंदी को विश्व भाषा के स्तर पर प्रतिष्ठापित करने के लिए भारत एवं मॉरीशस की सरकारें कृतसंकल्प हैं। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु दोनों देशों का संयुक्त उपक्रम विश्व हिंदी सचिवालय है। वैश्विक फलक पर हिंदी से संबंधित विविध गतिविधियों के संयोजन तथा संचालन के लिए भारत एवं मॉरीशस की सरकारें सचिवालय को निरंतर प्रोत्साहन व सहयोग उपलब्ध कराती रहती हैं।

मुझे विश्वास है कि सचिवालय वैश्विक स्तर पर हिंदी के संवर्धन एवं प्रचार के लिए ऐसी कार्ययोजनाओं को क्रियान्वित करेगा, जिससे इसके संस्थापकों द्वारा निर्धारित लक्ष्य प्राप्त हो सकें।

मैं 10 जनवरी, 2013 को विश्व हिंदी दिवस के रूप में मनाने के लिए भी सचिवालय तथा मॉरीशस, भारत व अन्य देशों की संस्थाओं को शुभकामनाएँ देता हूँ। पिछले वर्षों के सफल आयोजनों ने सभी हिंदी-सेवियों के समक्ष विश्व हिंदी दिवस की सार्थकता सिद्ध कर दी है।

अंतत: संपूर्ण विश्व हिंदी समुदाय को **विश्व हिंदी दिवस के साथ नववर्ष 2013** व इस वर्ष में हिंदी प्रचार की समस्त योजनाओं की सफलता के लिए मंगलकामनाएँ देता हूँ।

(टी.पी. सीताराम)
21.12.2012

6th Floor, L.I.C. Building, President John Kennedy Street, P.O. Box 162, Port Louis, Mauritius
Tel. : (230) 208 7372/8123, Fax : (230) 208 6859
E-mail : hicom.ss@intnet.mu

संपादकीय

प्रिय पाठको,

बहादुरशाह जफर ने लिखा था—

'हिंदुस्तान की भी अजब सरजमीन है
जिसमें व.फ़ा-ओ-महर-ओ-मोहब्बत का है व.फ़ूर
जैसे कि आफ़ताब निकलता है शर्क़ से
इख़लास का हुआ है इसी मुल्क से जहूर
है अस्ल तुख़्म-ए-हिंद और इस जमीन से
फैला है इस जहाँ में ये मेवा दूर दूर।'

जिसको अगर सरल हिंदी में लिखा जाए तो शायद इस प्रकार होगा—

'अद्‌भुत है हिंदुस्तान की धरती
जिसमें प्रेम, दया और ईमानदारी उगती है
जैसे निश्चित ही सूर्य पूर्व से उदय होता है
इस धरती से जन्मता है सद्‌भाव
यही हिंद का वास्तविक बीज है और
इसकी मिट्‌टी से
यह फल फैले हैं संसार में दूर-दूर।'

बहादुरशाह जफर ने अपने बर्मा (आज का म्याँमार) निर्वासन के दौरान यह भाव उन्नीसवीं शताब्दी में व्यक्त किए थे, परंतु आज भी यह भाव उतने ही सत्य हैं, जितने तब थे। चाहे बात डायस्पोरा के देशों की हो या विश्व के किसी भी देश की, भारतीय संस्कृति की छवि अधिकतर देशों में देखी जा सकेगी। इंटरनेट पर उपलब्ध एक सूचना के अनुसार, केवल 4-5 देशों को छोड़कर, अन्य देशों में भारतीय मूल के लोग कम या अधिक संख्या में पाए जाते हैं और वे सब टूटी-फूटी हिंदी या उसमें सम्मिलित बोलियों से परिचित हैं। जैसे कि डॉ. राम विलास शर्मा ने कहा है, ''भाषा संस्कृति का वाहन है और उसका अंग भी।''

विश्व हिंदी पत्रिका का यह चौथा अंक है और अब तक इन अंकों में मॉरीशस, फीजी, सूरीनाम, गुयाना, दक्षिण अफ्रीका, त्रिनिडाड, अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन, रूस, चीन, जापान, फ्रांस, इजराइल, जर्मनी, इटली, न्यूजीलैंड, सिंगापुर, बेलारूस, बलगारिया, थाईलैंड, खाड़ी के देश, यूक्रेन, डेनमार्क, नार्वे, पोलैंड, नीदरलैंड्स, दक्षिण कोरिया, श्रीलंका, पाकिस्तान, रोमानिया, भूटान, नेपाल, चेक गणराज्य, जमैका, वियतनाम, हंगरी, स्पेन और ऑस्ट्रेलिया देशों से लेख प्राप्त हुए हैं। इस अंक में भी मॉरीशस, भारत, ऑस्ट्रेलिया, इजराइल, त्रिनिडाड व

टोबैगो, यू.के., जापान, नार्वे, सिंगापुर, रूस व अमेरिका के लेखकों का योगदान है। यह बात अपने आप में हिंदी, जो कि भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है, की वैश्विक उपस्थिति की पुष्टि करती है।

हिंदी की इस वैश्विक उपस्थित को और बल देने के उद्देश्य से, विश्व हिंदी सचिवालय ने पिछले वर्ष कई कदम उठाए। सबसे प्रथम एक उच्चस्तरीय वेबसाइट (पता : www.vishwahindi.com.) का निर्माण कॉन्वर्जी- लोकालाइजेशन लैब्स द्वारा कराया गया। उस बात के मद्देनजर कि विश्व के संचार माध्यम बदलते जा रहे हैं और हिंदी के प्रचार-प्रसार में युवा पीढ़ी को जोड़ना अति आवश्यक है। विश्व हिंदी सचिवालय द्वारा एक अंतर्राष्ट्रीय कार्यशाला का आयोजन किया गया, जिसका विषय था—हिंदी आई.सी.टी., ई-पत्रिकारिता और ब्लॉगिंग पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी—कार्यशाला। खुशी की बात यह रही कि इसमें भाग लेनेवाले सबसे कम उम्र के छात्र थे 19 वर्ष के और सबसे अधिक उम्र वाले प्रतिभागी 79 वर्ष के थे! जैसे-जैसे इंटरनेट व अन्य सॉफ्टवेयरों में हिंदी का प्रयोग बढ़ेगा, वैसे-वैसे हिंदी की वैश्विक उपस्थिति और सुदृढ़ होगी।

विश्व के विभिन्न देशों में लिखे जा रहे हिंदी साहित्य को एक वैश्विक मंच प्रदान करने के उद्देश्य से, कविता कोश पोर्टल के संस्थापकों से करार किया गया और प्रथम चरण में मॉरीशस के 16 हिंदी लेखकों की कृतियों को कविता कोश के पोर्टल पर शामिल कराया गया और उनकी कृतियों को विश्व हिंदी सचिवालय की वेबसाइट पर भी उपलब्ध कराया जाएगा।

भविष्य में अन्य देशों के हिंदी लेखकों की रचनाएँ भी इसी प्रकार विश्व के कोने-कोने तक पहुँचाने का कार्यक्रम है। विभिन्न देश के पाठकों से अनुरोध है कि वे अपने देश में हिंदी लेखकों की कृतियाँ इत्यादि विश्व हिंदी सचिवालय को भिजवाने की पहल करें।

विश्व हिंदी सचिवालय के अधिकारियों ने तीन अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लिया और हिंदी से संबंधित वैश्विक स्थिति से अवगत हुए। जापान के सम्मेलन में उजागर हुआ कि हिंदी फिल्मों और हिंदी संगीत के माध्यम से हिंदी की लोकप्रिय अंतर्राष्ट्रीय पहचान स्थापित हुई है।

स्पेन में आयोजित सम्मेलन में यह कटु सत्य सामने आया कि यूरोप में हिंदी पठन-पाठन का उत्साह शिथिल पड़ रहा है, क्योंकि वहाँ के व्यापारियों का यह मानना है कि भारत से वाणिज्यिक संबंध अंग्रेजी में ही संभव है; बावजूद इसके कि भारत की राजभाषा हिंदी है!

जोहांसबर्ग में आयोजित नौवें विश्व हिंदी सम्मेलन के दौरान गुयाना से आए प्रतिभागियों से परिचय हुआ और उनकी समस्याओं का एक लेख भी विश्व हिंदी पत्रिका के इस अंक में देखा जा सकता है। चूँकि लेख पत्रिका के लिए नहीं भेजा गया था, मूलत: अंग्रेजी में है और उसके कारण लेख में स्वयं उजागर होते हैं। विश्व हिंदी सचिवालय अपनी ओर से 'स्वयं हिंदी सीखने' की पुस्तकें व सीडी आदि गुयाना भेजने की व्यवस्था कर रहा है, परंतु यह लेख इसलिए छापा जा रहा है, क्योंकि हमारा अनुरोध होगा कि जो भी संस्था/व्यक्ति गुयाना के हिंदी प्रेमियों का सहयोग कर सके, वो कृपया आगे बढ़कर मदद करें।

हमारे पूर्वजों ने बहुत ही विकट परिस्थितियों में हिंदी का दीपक अपनी संतानों के लिए जलाए रखा। उसके मुकाबले में आज की परिस्थितियाँ बेहतर हैं, आवश्यकता है तो मनोबल और इच्छा शक्ति की। यदि विश्व के सभी हिंदी प्रेमी प्रण ले लें कि वे अपने निजी जीवन में, जैसे कि निमंत्रण पत्र, मंगलकामनाओं के संदेश इत्यादि हिंदी में भेजेंगे, अपने व्यवसाय में स्थानीय भाषा के साथ-साथ हिंदी का भी प्रयोग करेंगे, स्वजनों मित्रों को इ-मेल, संदेश इत्यादि हिंदी में ही भेजेंगे। जब हिंदी की माँग भारत में व अन्य देशों में बढ़ेगी तो बाजार स्वयं प्रतिक्रिया देगा और हिंदी की वैश्विक उपस्थिति और बढ़ेगी।

हमारे पास संख्या की शक्ति है और इस शक्ति से हम हिंदी को उसका उचित स्थान दिला सकते हैं।

आइए, एकजुट होकर हम अपने सपने को साकार करें और विश्व को हिंदीमय बनाएँ।

(पूनम जुनेजा)
महासचिव
मॉरीशस

❑

परमेश्वर के ज्ञान के सिवाय मुक्ति पाने का कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

— स्वामी दयानंद

हज़ार चेहरों से बनती एक तसवीर

कुछ दिन पूर्व अमिताभ बच्चन ने अपने फेसबुक पृष्ठ पर अपनी एक तसवीर प्रकाशित की। सामान्य रूप से देखने पर यह उनके चेहरे की छवि दिखती थी, लेकिन निकट से (जूम इन करके) देखने पर स्पष्ट होता है कि यह हजारों चेहरों को जोड़कर 'फोटोशॉप' के जरिए बनाई हुई आकृति है, जिसका पूर्ण रूप अमिताभजी का चेहरा बनता है। हजारों चेहरे मिलाकर बने उस चित्र में कोई भी एक चेहरा अमिताभजी का नहीं था। वे सभी अनेक देश, समाज, काल, उम्र, रूप-रंग के चेहरे थे। सभी एक दूसरे से भिन्न, लेकिन उन हजारों चेहरों में से एक भी चेहरा निकाल देने पर अमिताभजी के चेहरे पर दाग का ही आभास होगा। कुछ ऐसा महत्त्व है, उन हजारों चेहरों में से हर एक चेहरे का ।

कुछ ऐसी ही प्रक्रिया भाती है मुझे, जब मैं मस्तिष्क में हिंदी भाषा की वैश्विक छवि उभारने का प्रयास करता हूँ! हजारों चेहरों से बनी एक तसवीर।

इस अंक को लेकर विश्व हिंदी पत्रिका में कुल सौ से अधिक आलेख प्रकाशित हो चुके हैं, पत्रिका के अतिरिक्त हिंदी के 'वैश्विक प्रकाशनों' (पत्रिकाओं, विशेषांक, स्मारिकाओं, शोध आदि) में इस प्रकार के सैकड़ों आलेख छप चुके हैं। हर आलेख एक चेहरे को उभारता है, एक कहानी कहता है। परंतु एक बात संदेहातीत है, इनमें से कोई भी एक अकेला आलेख अथवा विचार हिंदी की स्थिति का संपूर्ण वैश्विक आकलन नहीं कर सकता। यहाँ सभी छोटी-छोटी छवियों को जोड़कर ही हिंदी की वैश्विक छवि उभर सकती है, उभर रही है।

हिंदी की छवि बनाने वाले हजारों चित्रों की भी अपनी विशेषताएँ हैं। ये सभी एक-दूसरे से भिन्न तो हैं ही, कई बार एक-दूसरे के विरोध में भी खड़े प्रतीत होते हैं ।

पत्रिका के हर आलेख में लेखक की व्यक्तिगत विशिष्टता के कारण कई बार एक आलेख दूसरे आलेख के विचारों, प्रस्तावों, यहाँ तक कि आँकड़ों से भी सहमत नहीं हो पाता। जिन आलेखों में राजभाषा, राष्ट्रभाषा और विश्वभाषा हिंदी की स्थिति, उसके अध्ययन-अधिगमन को लेकर अवधारणाओं, विभिन्न देशों में हिंदी के प्रति लोगों की रुचि के कारण आदि उजागर किए गए हैं, उनमें भी अनेक मतभेद हैं। अलग-अलग देशों में हिंदी की स्थिति और समस्याएँ तथा उन समस्याओं से जूझने के तरीकों की दृष्टि से देखें तो और भी अंतर उभरता है।

जहाँ भारत से आनेवाले आलेखों में राजभाषा हिंदी को लेकर चिंताएँ हैं, वहीं अन्य देशों की चिंता हिंदी को बच्चों की जबान पर लाने के आकर्षक तरीकों की तलाश से जुड़ी है। जहाँ एक हिंदी के अंकों के प्रयोग पर बल दे रहा है अथवा हिंदी के महान साहित्यकारों को सेलिब्रिटी का दरजा देने का प्रस्ताव रख रहा है, वहीं दूसरा आलेख 'शौकिया तौर' पर कविता लिखने वाले को उचित स्थान दे रहा है। एक आलेख के अनुसार आज नेट पर हिंदी संसाधनों का खुला खजाना है, दूसरा अपने देश में हिंदी शिक्षण के तकनीकी औजारों के अभाव पर चिंतन कर रहा है ।

ऊपर-ऊपर देखने पर यहाँ विरोध दिख सकता है, लेकिन निकट से देखने पर स्पष्ट होता है कि सभी आलेख अपने-अपने

स्थान, काल, परिस्थिति के अनुसार अपना सत्य बयान कर रहे हैं। इन सत्यों के बीच मतभेद वास्तविक रूप से एक विरोधाभास मात्र हैं और इन अलग-अलग सत्यों से विश्व हिंदी समुदाय के सम्यक विचार उभरते हैं। हिंदी की वैश्विक छवि!

हजार चेहरों से बना हिंदी का एक नया वैश्विक चेहरा उभर रहा है। जापान में हिंदी शिक्षण की सौ वर्ष पुरानी परंपरा है तो हाल में चीन में हिंदी शिक्षण की नई व्यवस्था भी अपनी जगह बना रही है। हमें गर्व है कि हिंदी का विस्तार इतना हुआ है कि इसमें भारतेंदु और प्रेमचंद तो थे ही, अनत से लेकर ओदोलेन भी समाए हैं। इसकी सेवा में शुक्ल-द्विवेदी के साथ अब ताकेशी-ओल्फन तक लगे हुए हैं। इन अलग-अलग चेहरों से ही हिंदी के चेहरे के उतार-चढ़ाव, उसके नैन-नक्श, उसके तिल-मासा बनते हैं।

आलेखों में अभिव्यक्त विचार विश्व हिंदी सचिवालय के नहीं होते, इसलिए संपादक मंडल इन विरोधाभासों में समन्वय का प्रयास भी नहीं करता। किसी प्रकार के समन्वयन का प्रयास 'एकरूपता' लाने के मापदंड स्थापित करने का समानार्थक सिद्ध होगा, जबकि विश्वभर में हिंदी को लेकर विचार, सुझाव, प्रयास और अवधारणाओं में एकरूपता (यहाँ भाषा के मानकीकरण की बात नहीं कर रहा हूँ) लाना, न केवल हिंदी के वैश्विक रूप को समझने के हर प्रयास को विफल करेगा, साथ ही (और उससे अधिक हानिकारक यह होगा कि) वैश्विक हिंदी की समझ में एकरूपता लाने के कारण निश्चित रूप से अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक का संघर्ष स्थापित होगा और अंततः हिंदी का वही रूप उभरकर आएगा, जो बहुसंख्यक को धार्य है।

वस्तुतः हजार चेहरे वाली इस तसवीर को समझने की चुनौती को पार करने के बाद हम अपने सामने एक नई और गंभीर चुनौती खड़ी पाते हैं—इस तसवीर को अखंडित रखने की। कबीर कह गए कि 'साधु कहावत कठिन है, लंबा पेड़ खजूर, चढ़े तो चाखे प्रेम रस, गिरे तो चकनाचूर।' पेड़ अधिक ऊँचा होता जा रहा है…चढ़ाई और कठिन।

हिंदी की वैश्विक छवि की अखंडता बनाए रखने की चुनौती आज के हिंदी मनीषी से, हिंदी संबंधी अपने पुराने समीकरण को बदलने या उनमें नए परिवर्ती राशि (वेरीएबल्स) जोड़ने की माँग करती है। हमारे पुराने समीकरण निश्चित ही पर्याप्त नहीं हो सकते।

समीकरण बदलने का अर्थ यहाँ इस रूप में न लें कि मतभेद नहीं होने चाहिए। हिंदी साहित्य, इतिहास, आलोचना के सिद्धांत, रस, छंद, अलंकार, शब्द निर्माण, शब्द चयन और भाषाविज्ञान आदि संबंधित जितने मतभेद हुए हैं, उन्होंने हिंदी विषयक चर्चा को सतत गतिशीलता प्रदान करने में अमूल्य योगदान दिया है। इसके अतिरिक्त यदि भिन्न पीढ़ियों के मन में हिंदी के प्रति विचार व भाव की चर्चा करें तो स्पष्ट रूप से 'ऐंटेना नहीं करता मैच' वाली स्थिति उभरकर आती रही है। लेकिन इन मतभेदों के अभाव में हिंदी पर विचार-विमर्श में जो गतिहीनता आती, वह घातक हो सकती थी।

परंतु इन मतभेदों पर विचार का दृष्टिकोण निश्चित ही परिवर्तित होना चाहिए। नए समीकरण, नए वैरिएबल्स अर्थात प्रत्येक भौगोलिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक (और अन्य जितने भी प्रकार के तथ्य हो सकते हैं) की विभिन्नता के आधार पर बनाने होंगे। यदि हिंदी काल और स्थान की सीमाओं को पार कर रही है तो उसको समझने-परखने के मानदंड इन सीमाओं में बँधे नहीं रह सकते।

ऐसे में हिंदी के हर चेहरे को अपनी कहानी अपनी जुबानी कहने के लिए मंच तैयार करना व उन मंचों पर उचित अवसर देने से नए समीकरण के नए तथ्य/आँकड़े अधिक प्रामाणिकता से उभरेंगे। विश्व हिंदी पत्रिका इसका जीवंत प्रमाण है। एक विचार यह भी है कि 'न उम्र की सीमा हो, न जन्म का हो बंधन' वाला सुंदर सिद्धांत रोचक रूप में अपनाते हुए युवकों द्वारा हिंदी 'में' ही नहीं, हिंदी 'पर' भी अपने विचार रखने के लिए उपयुक्त वैश्विक मंच प्रदान करने के उद्देश्य से राष्ट्रसंघ के मॉडल यूनाइटेड नेशन के समान एक 'मॉडल विश्व हिंदी सम्मेलन' स्थापित किया जाए। यही प्रणाली अन्य प्रकार से भी लागू हो सकती है, जिसके माध्यम से हिंदी पर वैश्विक चर्चा अधिक लोकतांत्रिक और सहभागितापूर्ण बने।

वैश्विक स्तर पर संभवतः 'हिंदी ज्ञान-हिंदी साहित्य ज्ञान' का समीकरण भी कुछ सीमा तक बदलना पड़े। हिंदी साहित्य का छात्र और अध्यापक होने के बावजूद अपने शब्दों को तोलते हुए यह कह रहा हूँ। यह स्वीकारते हुए कि हिंदी साहित्य का ज्ञान किसी भी हिंदी पढ़ने वाले के लिए हिंदी भाषा की भव्यता के अनुभव के लिए सर्वोत्तम साधन है, यह भी कहना चाहूँगा कि विदेशों में हिंदी पर चर्चा के लिए 'हिंदी विद्वान' का मानदंड केवल साहित्य ज्ञान नहीं होना चाहिए। मॉरीशस सहित अनेक देशों में ऐसे

कई हिंदी प्रेमी हैं, जो प्रेमचंद, प्रसाद, अज्ञेय को न जानते हुए भी इस भाषा के प्रति अधिक नहीं तो उतनी ही श्रद्धा रखते हैं, जितना कि साहित्य जानने वाले। (यहाँ अंग्रेजी और फ्रेंच भाषाओं में इस प्रकार का खुलापन हिंदी के लिए अनुकरणीय हो सकता है।) इससे संभवत: भारत से बाहर देशों में साहित्य और शिक्षण के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में कार्यरत लोग हिंदी क्षेत्र में आने में और इस भाषा का प्रयोग करने में हिचक का अनुभव न करें ।

यह समीकरण हिंदी शिक्षण के क्षेत्र में काफी मात्रा में परिवर्तित होता दिख रहा है। भाषा-शिक्षण और साहित्य-शिक्षण में अंतर को उभारने की आवश्यकता का अनुभव अनेक देशों में किया जा रहा है। यदि दसवीं-बारहवीं तक हिंदी शिक्षण में प्रमुख हिस्सा साहित्य का होगा तो उन कक्षाओं के बाद हिंदी शिक्षण में अन्य आयामों (ज्ञान के क्षेत्रों) के जुड़ने की संभावना बंद होती जाएगी। जबकि आवश्यकता है, हिंदी के साथ नए आयामों को जोड़ने की। गयाना, दक्षिण अफ्रीका, सूरीनाम जैसे देशों में हिंदी के शिक्षण की समस्याओं की जड़ में यह एक कारण अवश्य रहा होगा। यह अपने-आप में कितनी बड़ी विसंगति है कि भारतीय आप्रवासियों के वंशजों की भरमार वाले इन देशों में विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी शिक्षण कठिनाई में है या रुक गई है, जबकि चीन, जापान, अमेरिका में हिंदी के नए कोर्स आरंभ किए जा रहे हैं। ऑस्टिन के टेक्सास विश्वविद्यालय के 'हिंदी-उर्दू फ्लैगशिप' कार्यक्रमों की तरह शिक्षण योजनाएँ इन देशों में हिंदी शिक्षण को विस्तार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

इसी प्रकार की आवश्यकताएँ अन्य क्षेत्रों में भी हैं, जहाँ हिंदी को लेकर एक प्रकार से एकरूपता लाने की कोशिश अलग-अलग क्षेत्रों की हिंदी की विशेषताओं को उभरने नहीं दे रही है। भारत से बाहर संपूर्ण हिंदी साहित्य को आप्रवासी या विदेशी हिंदी साहित्य कहना तब तक सुविधाजनक था, जब तक इन देशों का साहित्य ठीक से नहीं उभरा था और जब तक इन सभी पर किसी-न-किसी रूप में एक 'प्रवासोत्तर मानसिकता' हावी थी, लेकिन आज तनिक अनुभव करें कि अमेरिका में लिखे जा रहे हिंदी साहित्य और मॉरीशस के हिंदी साहित्य में कितना अंतर हो गया है और ज़रा सोचिए कि अलग-अलग देशों के हिंदी साहित्य को अपने-अपने देश के नाम से संबोधित और सम्मानित करते हुए हम उन देशों के साहित्यकारों को अपनी पहचान बनाने का कितना अधिक और व्यापक अवसर दे पाएँगे ?

कुछ विद्वानों की एक जायज़ चिंता है—हिंदी के संख्यात्मक विस्तार से आनेवाली गुणवत्ता में कमी की। साथ ही इस बात की कि हिंदी भाषा के साथ एक जनता की संस्कृति तथा इतिहास, उसकी अस्मिता के जो मूल्य जुड़े हैं, वे नहीं खोने चाहिए। अनेक चेहरों से बने एक चित्र के उस बिंब को देखें तो यहाँ तीन बातें उभरती हैं।

पहले यह कि यदि भाषा किसी विशेष क्षेत्र (यहाँ 'विदेश' शब्द के प्रयोग का मैं पूर्णत: विरोधी हूँ। यदि कोई भाषा वैश्विक है तो वह विश्व के किसी भी देश में हो, 'विदेशी' नहीं हो सकती। उसके वक्ता, लेखक, विद्वान 'विदेशी' वक्ता, लेखक या विद्वान नहीं हो सकते, भारतेतर अवश्य हो सकते हैं) की हो गई, शब्द घुलने-मिलने लगे, विषयवस्तु उस क्षेत्र की होने लगे तो अंतत: अस्मिता, संस्कृति भी उसी क्षेत्र की होगी—समय चाहे कम अधिक लगे—पर इसकी स्वतंत्रता देने में ही भाषा का विकास है।

दूसरे यह कि आप्रवासियों के वंशज (पूर्वजों के आप्रवास के लगभग दो सौ साल बाद) और अन्य हिंदी सीखने वाले हिंदी के माध्यम से भारतीयता को अंतर्निविष्ट (इनकल्केट) करते हुए इस बात की ओर भी ध्यान देते हैं कि अपनी 'जापानीयता', 'मॉरीशसीयता', 'यूरोपीयता' आदि बरकरार रखें, इसलिए हिंदी भी इन सभी देशों की अस्मिता इतिहास तथा संस्कृति से जुड़ रही है, वह केवल भारतीयता की भाषा नहीं रही। इसमें हिंदी का लाभ ही है, हानि नहीं।

और तीसरे, पत्रिका के एक आलेख में उभारे गए पिरामिड के बिंब के बहाने कहना चाहूँगा कि हिंदी को लेकर एक ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए, जिसमें इस भाषा के हर स्तर के जिज्ञासु और ज्ञाता के लिए जगह हो। यदि कोई केवल हिंदी सिनेमा का बेहतर आनंद लेने के लिए हिंदी से संबंध रखता हो तो भी वह हिंदी का अपना ही है। यही तर्क पर्यटन, व्यवसाय आदि के लिए हिंदी सीखने वालों पर भी लागू होता है।

और हाँ, जैसाकि अनेक देशों में हो रहा है और जिसका गेनादी श्लोंपेर ने अपने आलेख में प्रमाण दिया है, एक बार हिंदी से प्रारंभिक परिचय हो जाने पर जिज्ञासु को इस भाषा की गहराइयों तक आकर्षित करने की संभावना हमेशा बनी रहती है।

बात दूर तलक जा रही है···अंत करता हूँ।

हिंदी की नई तसवीर बहुत बड़ी है, विशाल है, इसमें और कई चेहरों के जुड़ने की संभावना है : प्रक्रिया जैसा कि उपरोक्त कहा गया एक सदी से अधिक समय से जारी है और सुदृढ़ हो रही है। अब उन नए चेहरों का स्वागत करने के लिए विश्वभाषा हिंदी के प्रवेश द्वार चौड़े करें !

और…

विश्व हिंदी पत्रिका का चौथा अंक आपके हाथों में समर्पित करते हुए जिस आनंद का अनुभव हो रहा है, वह अनिर्वचनीय है ही। कई महीनों तक महासचिव और उपमहासचिव के मार्गदर्शन में कार्यरत प्रीति, अंजलि, जिष्णु और विजया की टोली के परिश्रम का फल है यह, जिसको हिंदी–आदित्य के समक्ष अंजुलि भर अर्घ्य के समान अर्पित कर रहे हैं। एक बार पुन: पत्रिका को आकार देने में विद्या विहार ने संभव की सीमाओं का अतिक्रमण किया, धन्यवाद! तथा विश्व हिंदी पत्रिका 2012 के लिए जितने विद्वानों ने आलेख भेजे हैं, उन सभी के प्रति सचिवालय की ओर से आभार प्रकट करना हमारा कर्तव्य बनता है।

अंतत: यह देखते हुए कि विश्वभर में हिंदी के कितने आयामों को उकेरना अभी बाकी है। संभवत: हिंदी की वैश्विक छवि अभी अधूरी ही है। विश्व हिंदी पत्रिका की अगली कड़ी के लिए आपसे अन्य ऐसे आलेखों की अपेक्षा रहेगी जो हिंदी के इस विशाल चित्र में और चेहरे जोड़ें, इसकी छवि की संपूर्णता में अपना योगदान दें!

शुभकामनाएँ,

मॉरीशस, 20.12.2012

—गंगाधरसिंह सुखलाल 'गुलशन'
उप महासचिव

सच्चरित्रता ही वह सर्वोत्तम संपत्ति है जो कोई भी व्यक्ति आनेवाली संतानों के लाभ के लिए दे सकता है।

— स्वामी विवेकानंद

यदि हमारे मन में सच्चाई है तो उसका प्रभाव अपने आप लोगों पर पड़ेगा।

— महात्मा गांधी

अनुक्रम

विश्व में हिंदी : विविध आयाम

1.	विश्व मंच पर हिंदी	डॉ. दामोदर खडसे	3
2.	भूमंडलीकरण और हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय संबंध	सुश्री अनुजा बेगम	10
3.	वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिंदी कविता	डॉ. केदार सिंह	14
4.	वैश्विक हिंदी : एक परिदृश्य	विजया सती	18
5.	वैश्विक परिप्रेक्ष्य में हिंदी की स्थिति	अनिरुद्ध सिंह सेंगर	22
6.	विश्व की हिंदी पत्रकारिता और पत्रिकाएँ	डॉ. कामता कमलेश	27
7.	जापान में हिंदी पुस्तकों की अनमोल विरासतें	प्रो. ताकेशि फुजिइ, श्री क्योसुके आदाची	33
8.	इजरायल में हिंदी साहित्य का अध्ययन-अध्यापन : प्राथमिक पग	डॉ. गेनादी श्लोम्पेर	38
9.	नॉर्वे में हिंदी	सुरेश चन्द्र शुक्ल 'शरद आलोक'	42
10.	सिंगापुर में हिंदी : एक नई उड़ान	संध्या सिंह	47
11.	रेडियो जापान की हिंदी सेवा : एक परिचय	मुनीश शर्मा	51
12.	विदेशों में हिंदी साहित्य का सर्वेक्षण एवं मूल्यांकन	इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ	54

विदेशों में हिंदी के पथप्रदर्शक

13.	पं. नरदेव वेदालंकार	विश्व हिंदी सचिवालय	61
14.	मॉरीशस में हिंदी भाषा के शिक्षण व उन्नयन में राष्ट्रपिता सर शिवसागर रामगुलाम का योगदान	तीना जगू-मोहेश	65
15.	महाकवि प्रो. हरि शंकर आदेशजी—एक महर्षि	आशा मोर	69
16.	हिंदी का दूर देश का एक बेटा : ओदोलेन स्मेकल	कुमार परिमलेंदु सिन्हा	73

17.	सूरीनाम में हिंदी को समर्पित जीवन; भारत के सांस्कृतिक दूत बाबू महातम सिंह	भावना सक्सेना	77
18.	प्रवासी भवानी दयाल संन्यासी और उनकी हिंदी सेवा	डॉ. राकेश कुमार दुबे	80
19.	हिंदी के विकास में विदेशी विद्वानों का योगदान	उमेश चतुर्वेदी	86
20.	मॉरीशस में हिंदी के प्रचार-प्रसार में आर्य समाज का योगदान	सत्यदेव प्रीतम	89

हिंदी और सूचना प्रौद्योगिकी

21.	सूचना प्रौद्योगिकी और देवनागरी लिपि	डॉ. परमानंद पांचाल	97
22.	हिंदी के प्रयोग व प्रसार की प्रमुख चुनौती : भाषा-प्रौद्योगिकी	डॉ. एम.एल. गुप्ता 'आदित्य'	103
23.	तकनीकी युग में हिंदी साहित्य का प्रचार-प्रसार	ललित कुमार	108
24.	हिंदी कंप्यूटिंग : उपलब्धि और चुनौतियाँ	डॉ. कविता वाचक्नवी	112
25.	निकट आती ई-बुक क्रांति और मुहाने पर हिंदी	बालेंदु शर्मा दाधीच	115

अन्य आलेख

26.	राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का राष्ट्रभाषा दर्शन	डॉ. राजेंद्र पी. सिंह	121
27.	राजस्थान में हिंदी : लोकभाषा से राजभाषा तक	डॉ. नीरज के. चतुर्वेदी	124
28.	विदेशों में हिंदी दिवस के आयाम	डॉ. कौशल किशोर श्रीवास्तव	131
29.	रवींद्रनाथ ठाकुर का हिंदी अभिग्रहण	डॉ. रणजीत साहा	134
30.	गोवा और हिंदी	डॉ. अनीता गांगुली	140
31.	हिंदी हमारी राजभाषा	अजय ओझा	144
32.	राजभाषा हिंदी—एक प्रयास	राम कुमार वर्मा	147

विश्व हिंदी सम्मेलन पर दो विशेष आलेख

33.	द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन : एक संस्मरण	रामदेव धुरंधर	153
34.	करीबियाई देशों में हिंदी का संघर्ष : गयाना के विशेष संदर्भ में	वर्षिणी उधो सिंह	159

अंतर्राष्ट्रीय हिंदी कविता प्रतियोगिता 2011 के विजेताओं की कविताएँ

35.	मैं शहीद हूँ	श्रीमती नीतू सिंह	164
36.	मैं अखबार हूँ	वशिष्ठ कुमार झमन	165
37.	मेरी पहचान 26 जनवरी	कौशल किशोर श्रीवास्तव	166

1

विश्व मंच पर हिंदी

–डॉ. दामोदर खडसे

आज हम वैश्वीकरण के युग में प्रवेश कर चुके हैं। व्यापार के लिए देश की सीमाएँ टूट रही हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ विभिन्न देशों में जाकर अपने उत्पादों की खपत के लिए स्रोतों की सतत तलाश कर रही हैं। स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति में बाज़ार एक महत्त्वपूर्ण घटक के रूप में उभरकर सामने आया है। विश्व-बाज़ार के इस परिदृश्य में ज्ञान-विज्ञान एक महत्त्वपूर्ण घटक के रूप में उभरकर सामने आया है। विश्व-बाज़ार के इस परिदृश्य में ज्ञान-विज्ञान की सभी शाखाएँ माँग और आपूर्ति के नियम के अनुसार खपत की संभावनाओं के द्वार खटखटा रही हैं। इस प्रक्रिया में आवागमन, संचार और तमाम माध्यमों पर भारी आवाजाही हो रही है। विज्ञान के चमत्कारों ने देशों की दूरियाँ कम कर दी हैं। संदेशों को पहुँचाने का समय कम कर दिया है। इसलिए यात्राओं और संदेशों की गति बेहिसाब बढ़ गई है। महीनों यात्रा के बाद विदेश जाना अब घंटों में सिमट आया है। अब पलक झपकाते ही इंटरनेट और सेल्युलर सेवाओं के माध्यम से दुनिया के किसी भी कोने में संदेश पहुँचाना बहुत आसान हो गया है। इस तेज़-गति-संचार-साधनों में भाषा की भूमिका बहुत अहम हो उठी है। इसीलिए हम देखते हैं कि दुनिया भर की बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारत में अपना उत्पाद बेचने के लिए हिंदी और भारती भाषाओं का सहारा ले रही हैं।

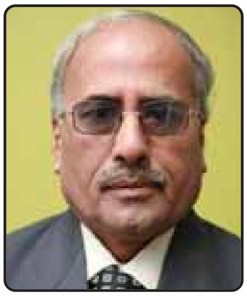

- **जन्म :** 11 नवंबर, 1948 ।
- **शिक्षण** : एम.ए., एम.एड., पी-एच.डी. (हिंदी)।
- **कार्याध्यक्ष :** महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी, महाराष्ट्र सरकार, मुंबई 2011।
- **प्रकाशित पुस्तकें—कथा संग्रह :** 'भटकते कोलंबस', 'पार्टनर', 'आखिर वह एक नदी थी', 'जन्मांतर गाथा', 'इस जंगल में', आदि।
- **उपन्यास :** 'काला सूरज', 'भगदड़', 'खंडित सूर्य', 'कोलाहल'।
- **कविता संग्रह :** 'अब वहाँ घोंसले हैं', 'जीना चाहता है मेरा समय', 'सन्नाटे में रोशनी' आदि। देश की प्रमुख हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं का नियमित प्रकाशन।
- **अनुभव :** 9 वर्षों तक अध्यापन, 30 वर्षों तक बैंक ऑफ महाराष्ट्र में सहायक महाप्रबंधक के रूप में सेवा-अनुभव।
- **संप्रति :** स्वतंत्र लेखन।

अमेरिका से भारत दौरे पर आए माइक्रोसॉफ्ट के प्रमुख बिल गेट्स ने मुंबई में कहा था कि भारत को हंदी सॉफ्टवेयर की आवश्यकता है और यह आवश्यकता पूरी करने के लिए माइक्रोसॉफ्ट तैयार है। उनके इस वक्तव्य को भारत के सभी भाषाओं के अखबारों ने प्रमुखता से छापा। दो वर्ष के भीतर ही उन्होंने हिंदी और भारतीय भाषाओं के कंप्यूटर बाज़ार में लाए, जिनमें पहली बार परिचालन प्रणाली भी हिंदी में है। इस तरह हिंदी के महत्त्व को विश्व स्तर पर स्वीकार किया गया। क्षेत्रीय आर्थिक फोरम के कार्यक्रम में 20 अप्रैल, 2007 को बिल गेट्स ने चीन में कहा कि ''तकनीकी विकास का भविष्य अब एशिया के पास होगा।'' कंप्यूटर के क्षेत्र में भारत का योगदान सर्वविदित है। आर्थिक विकास का भावी केंद्र यदि एशिया को कहा जा रहा है तो हिंदी की भूमिका और महत्त्वपूर्ण हो उठेगी।

विदेशों में लगभग 154 देशों के विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। इनमें आप्रवासी के अलावा स्थानीय छात्र भी हिंदी का अध्ययन करते हैं। एक समय था जब हिंदी का अध्ययन साहित्य-संस्कृति और एक भाषा के रूप में प्रमुखता से किया जाता था। पर आज हिंदी एक व्यावसायिक-व्यावहारिक भाषा के रूप में भी अपनाई जा रही है। साहित्य के माध्यम से अपनी संस्कृति, मान्यताओं और भावनात्मक धरोहरों को अक्षुण्ण रखने का प्रयास किया जाता है, वहीं रोज़ी-रोटी के लिए प्रयोजनमूलक हिंदी को अपनाया जा रहा है। विदेशों में हिंदी, सांस्कृतिक-दूत का काम भी करती है। कई विदेशी विद्वान हिंदी की विशिष्टता की ओर आकर्षित हुए और उन्होंने इस भाषा पर

अपना प्रभुत्व सिद्ध किया। उन्होंने हिंदी में रचनाएँ कीं। साथ ही, हिंदी से अपनी भाषा में और अपनी भाषा से हिंदी में अनुवाद किए। इस तरह हिंदी ज्ञान–विज्ञान और साहित्य–संस्कृति के आदान–प्रदान का माध्यम बन गई।

विदेशों में हिंदी की स्थिति को तीन वर्गों में देखा जा सकता है। पहले वर्ग में वे लोग आते हैं जो जीविकोपार्जन के लिए पीढ़ियों पहले भारत से विदेश आ बसे। हिंदी को अपनी अस्मिता के साथ उन्होंने जोड़े रखा। इन देशों में मॉरीशस, सूरीनाम, फीजी, त्रिनिदाद, गुयाना आदि देशों को शामिल किया जा सकता है। मॉरीशस के अभिमन्यु अनत पचास से अधिक हिंदी पुस्तकों के लेखक हैं। वे हिंदी के प्रमुख लेखकों में माने जाते हैं। हिंदी भाषा में वे मॉरीशस के जन–जीवन को शब्दबद्ध कर रहे हैं। इनके अलावा कृष्ण बिहारी मिश्र, रामदेव धुरंधर आदि प्रमुख उपन्यासकार हैं। मॉरीशस में 'आर्योदय', 'आक्रोश' और 'इंद्रधनुष' नामक हिंदी पत्रिकाएँ नियमित प्रकाशित होती हैं। फीजी में पं. कमलाप्रसाद मिश्र, पं. काशीराम कुमुद, बाबू कुँवर सिंह, गुरुदयाल शर्मा के नाम सुपरिचित हैं। सूरीनाम में अमरसिंह रमण, जीत नारायण, सूर्यप्रसाद वीरे प्रमुख नाम हैं। इन देशों में हिंदी भाषी भारतीय मूल के नागरिकों की संख्या इतनी अधिक है कि वे वहाँ की राजनीति, प्रशासन और सामाजिक जीवन के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। वे हिंदी के लिए बहुत योगदान दे रहे हैं। संभवत: यही कारण होगा कि दूसरा और चौथा विश्व हिंदी सम्मेलन मॉरीशस में और पाँचवाँ त्रिनिदाद में आयोजित किया गया। विश्व समुदाय के सामने हिंदी की व्यापक स्वीकृति के लिए ये प्रभावी प्रयास रहे हैं।

दूसरे वर्ग में, भारत के पड़ोसी देश हैं, जहाँ अनायास ही हिंदी, भाषा के रूप में विद्यमान है। इन देशों में नेपाल, भूटान, म्यांमार, श्रीलंका, पाकिस्तान, चीन आदि देशों का समावेश हो सकता है।

तीसरे वर्ग में ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, जर्मनी, फ्रांस, स्वीडन, बेल्जियम, चेकोस्लोवाकिया, रूस, जापान आदि देशों को रखा जा सकता है। इन देशों में भारतीयों की संख्या काफी बढ़ रही है। व्यापार–रोज़गार आदि क्षेत्रों में भारतीय आप्रवासियों की संख्या निरंतर बढ़ रही है। साथ ही, इन देशों के हिंदी के विद्वान काफी उल्लेखनीय योगदान कर रहे हैं।

अपनी भाषा के प्रति भारत में उदासी जैसे दौर में विदेशी साहित्यकारों के हिंदी के विकास में योगदान कुछ विशेष भले लगे, लेकिन भारत से बाहर हिंदी के प्रति लोगों का रुझान निरंतर बढ़ रहा है। भूमंडलीकरण के इस दौर में वाणिज्य और व्यापार की परिधियाँ देशों की सीमाएँ लाँघ रही हैं। उत्पादन और बाज़ार का तालमेल बिठाने के लिए उपभोक्ता को रिझाने के लिए विज्ञापन–एजेंसियाँ एड़ी–चोटी का पसीना एक कर अरबों के बजट का वारा–न्यारा कर रही हैं।

हिंदी के अध्ययन की सुविधा वर्तमान में, भारत से बाहर विश्व में कई विश्वविद्यालयों में उपलब्ध है। एक सर्वेक्षण के अनुसार अमेरिका में 113 विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में हिंदी अध्ययन के केंद्र हैं, जिनमें से 13 तो शोध स्तर के हैं। हाल ही में, अमेरिका की पेंसिल्वेनिया यूनिवर्सिटी ने एम.बी.ए. के छात्रों का दो वर्षीय कोर्स अनिवार्य कर दिया है, ताकि अमेरिका को हिंदुस्तान में व्यापार बढ़ाने में भाषा संबंधी कठिनाइयाँ न हों।

हिंदी में कई विदेशी भाषाओं के शब्द इस तरह रच–बस गए हैं कि उन्हें हिंदी से अलग करना अब लगभग असंभव सा हो गया है। अंग्रेज़ी से आए कैमरा, फुटबॉल, डायरी या पश्तो से आए अचार, नकल या पठान जैसे शब्द हों या कि अरबी भाषा से आए तारीख, वकील, आदमी, शराब, अमीर जैसे शब्द हों, इन शब्दों ने अब हिंदी में मौलिक पहचान बना ली है। जिस तरह विभिन्न भाषाओं से शब्द हिंदी में आए और शब्द–संपदा बढ़ती चली गई इसी तरह विदेशी विद्वानों ने हिंदी के विकास में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। साहित्य, संस्कृति और भाषा का अन्यान्य संबंध होता है। कई विदेशी साहित्यकारों ने हिंदी को अपनी अभिव्यक्ति का महत्त्वपूर्ण माध्यम बनाया।

हिंदी में कई विदेशी भाषाओं के शब्द इस तरह रच-बस गए हैं कि उन्हें हिंदी से अलग करना अब लगभग असंभव सा हो गया है। अंग्रेज़ी से आए कैमरा, फुटबॉल, डायरी या पश्तो से आए अचार, नकल या पठान जैसे शब्द हों या कि अरबी भाषा से आए तारीख, वकील, आदमी, शराब, अमीर जैसे शब्द हों, इन शब्दों ने अब हिंदी में मौलिक पहचान बना ली है। जिस तरह विभिन्न भाषाओं से शब्द हिंदी में आए और शब्द-संपदा बढ़ती चली गई इसी तरह विदेशी विद्वानों ने हिंदी के विकास में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। साहित्य, संस्कृति और भाषा का अन्यान्य संबंध होता है। कई विदेशी साहित्यकारों ने हिंदी को अपनी अभिव्यक्ति का महत्त्वपूर्ण माध्यम बनाया।

हिंदी भाषा और साहित्य के लिए अपना संपूर्ण जीवन समर्पित करने वाले फादर कामिल बुल्के का योगदान अमर रहेगा। इनके द्वारा तैयार किया गया अंग्रेज़ी–हिंदी शब्दकोश सर्वाधिक ख्याति प्राप्त संदर्भ ग्रंथ है। अंग्रेज़ी शब्दों के सटीक हिंदी पर्यायी शब्दों के लिए यह श्रेष्ठ प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है।

फादर कामिल बुल्के का जन्म बेल्जियम के एक गाँव रांपस में 1 सितंबर, 1909 को हुआ। घरवाले उन्हें इंजीनियर बनाना चाहते थे। 1930 में, उन्होंने लवैन विश्वविद्यालय से इंजीनियरिंग की डिग्री हासिल कर ली, पर उनका मन वहाँ नहीं लगा। फिर 1932 में, उन्होंने दर्शनशास्त्र में एम.ए. किया। यहीं उनका परिचय भारतीय दर्शन से हुआ और उन्होंने भारत आना तय किया। 1935 में, वे भारत आए। 1936 में, उन्होंने हिंदी सीखनी शुरू की। हिंदी के प्यार के चलते वे संस्कृत से भी जुड़ गए। बाद में, 1945 में उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से संस्कृत की डिग्री हासिल की। 1947 में, इलाहाबाद से हिंदी में एम.ए. किया और 1950 में, रामकथा पर पी–एच.डी. की डिग्री हासिल की। बाद में, उनकी पुस्तक 'रामकथा–उत्पत्ति और विकास' के रूप में प्रकाशित हुईं। उन्होंने अध्यापन अपनाया और झारखंड के राँची के सेंट जेवियर्स कॉलेज से जीवन–पर्यंत जुड़े रहे। उन्होंने बाइबिल का 'नीलपक्षी' नाम से 1978 में अनुवाद प्रकाशित करवाया। इसके अलावा 'मुक्तिदाता' और 'नया विधान' नामक उनकी दो पुस्तकें प्रकाशित हुईं। उनकी छोटी–बड़ी कुल 29 पुस्तकें प्रकाशित हुईं।

फादर कामिल बुल्के का कार्य मुख्यत: कोश–निर्माण, अनुवाद और हिंदी शोध से संबंधित रहा। तुलसी साहित्य के मर्मज्ञ के रूप में उनकी ख्याति रही। वे भारत और हिंदी के प्रेम में इतने सराबोर हो गए कि 1950 में भारतीय नागरिकता ग्रहण कर वे भारत के ही हो गए। भारत सरकार ने उनकी हिंदी के प्रति तन्मयता को देखते हुए उन्हें 1972 से 1977 तक केंद्रीय हिंदी समिति का सदस्य बनाया। भारत सरकार ने 1974 में उन्हें 'पद्मभूषण' से अलंकृत किया। 1973 में बेल्जियम सरकार ने भी अपने इस पूर्व नागरिक को रॉयल अकादेमी का फेलो बनाकर सम्मानित किया। हिंदी के इस समर्पित व्यक्तित्व का 1982 में देहावसान हो गया, लेकिन अपनी कृतियों, हिंदी–सेवा के माध्यम से वे सदैव हमारे बीच हैं। विशेष रूप से अंग्रेज़ी–हिंदी शब्दकोश के रूप में वे घर–दफ्तरों में निरंतर अपनी सार्थक उपलब्धियों की याद दिलाते रहेंगे।

डॉ. रूपर्ट स्नेल इंग्लैंड में रहकर हिंदी सेवा में हुटे हैं। भारत भवन की खुली रंगशाला में उनसे मुलाकात हुई। शक्लोसूरत से अंग्रेज़, पर कुरता–पाजामा और भारतीय चप्पल में वे भारत आए सैलानी लगते। हिंदी में जैसे ही बोलना शुरू करते हैं, स्पष्ट और सटीक हिंदी उच्चारण, हिंदी साहित्य में गहरी पैठ और हिंदी भाषा का व्यापक ज्ञान अनायास ही उनके कंठ से उमड़ पड़ता है। रूपर्ट स्नेल ने सत्रहवें वर्ष में भारतीय शास्त्रीय संगीत सुना और हिंदी के माध्यम से आनंद हासिल करने का निश्चय किया। 1974 में विशेष प्रवीणता के साथ हिंदी में बी.ए. किया और 1984 में हिंदी में पी.एच.डी. हासिल की। पहले हिंदी के व्याख्याता हुए और बाद में लंदन विश्वविद्यालय के 'स्कूल ऑफ ओरिएंटल स्टडीज' में हिंदी के रीडर और विभागाधयक्ष बने।

डॉ. रूपर्ट स्नेल ने यशपाल की कहानी 'उपदेश' का अंग्रेज़ी अनुवाद किया। साथ ही, भारतीय साहित्य और संस्कृति से संबंधित कई अध्ययनपूर्ण लेख हिंदी और अंग्रेज़ी में लिखे। 1981 में प्रेमचंद की कहानी 'रामलीला' का अंग्रेज़ी में अनुवाद 'वीकली' में छपा। 1989 में, हिंदी पर उनकी एक पुस्तक अंग्रेज़ी में इंग्लैंड से छपी। हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा का अंग्रेज़ी अनुवाद 'इन दि आफ्टरनून ऑफ टाइम' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। धर्मवीर भारती की पुस्तक 'कनुप्रिया' का अंग्रेज़ी अनुवाद भी उन्होंने किया है। 17वें वर्ष में हिंदी सीखने का प्रारंभ और पचासवें वर्ष की आयु में तमाम उपलब्धियाँ इस बात की गवाह हैं कि उन्होंने मथुरा, वाराणसी, दिल्ली, आगरा की निवासी–यात्राएँ कीं। मूल रूप से हिंदी में कविताएँ भी लिखते हैं। स्वभाव से हास्य–व्यंग्य का पुट लिए रूपर्ट स्नेल ने जब एक फोटो प्रकाशन के लिए भेजा तो टिप्पणी की ''इस पत्र के साथ मैं अपनी एक बेवकूफ तसवीर भेज रहा हूँ, जिसमें मैं पंडित दिखने की बहुत कोशिश कर रहा हूँ गंभीर मुद्रा, पुस्तकों–ग्रंथों–पोथियों से घिरा हुआ···'', साथ ही दो पंक्तियाँ लिख दीं—

''ज्यों–ज्यों नर मन घट बढ़ैं, त्यों–
त्यों निज अनुमान
कहत अद्वैतिन राम हूँ, डार्विन हौ
हनुमान।''

दो–तीन दिन उनके साथ रहने का अवसर मिला। वे विनोदप्रिय व्यक्ति हैं। मुहावरेदार हिंदी बोलने में निपुण हैं। वे मज़ाक में कहते, मैं हिंदी के साथ इतना घुल–मिल गया हूँ कि कई लोग मुझे रूपर्ट स्नेल कहने की बजाय 'रूप सिंह' कहना अधिक सही समझते हैं।

अंग्रेज़ों को भारत में हिंदी सिखाने के लिए 1782 में गिलक्रिस्ट की नियुक्ति की गई थी। कलकत्ता में सेंट विलियम फोर्ड कॉलेज की स्थापना होने पर डॉ. गिलक्रिस्ट को हिंदुस्तानी विभाग का प्रथम प्रोफेसर नियुक्त किया गया। उन्होंने 'हिंदी मैन्युअल' और 'हिंदी स्टोरी टेलर' नामक पाठ्य–पुस्तकों का निर्माण किया। डॉ. मोनियर विलियम ने 1890 में 'हिंदुस्तानी प्राइमर' और 'प्रैक्टिकल हिंदुस्तानी ग्रामर' का 1892 में निर्माण किया। फेडरिक साइमन ग्राउन ने 1874 के आसपास ब्रज के कई कवियों की कविताओं का

छंदबद्ध अनुवाद अंग्रेज़ी में किया। ग्राउन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक उपलब्धि तुलसीकृत रामायण का अंग्रेज़ी अनुवाद है, जो आज भी दुनिया में सबसे प्रामाणिक अनुवाद माना जाता है। डॉ. एफ.ई. के का जन्म 29 मार्च, 1879 में लंदन में हुआ। 1922 में लंदन विश्वविद्यालय ने उन्हें 'कबीर ऐंड हिज फालोअर्स' नामक शोध-ग्रंथ पर डी.लिट की उपाधि प्रदान की। इससे पहले 1918 में उन्होंने 'प्राचीन भारतीय शिक्षा' नामक पुस्तक लिखी थी। 1935 में वे इंग्लैंड लौट गए। वहाँ से वे अपने मित्रों को भारत में देवनागरी में पत्र लिखा करते थे। एक अन्य अंग्रेज़ हिंदी विद्वान हैं फ्रेडरिक पिंकाट। ब्रिटेन के हिंदी प्रेमियों के बीच एक सम्मानित नाम है। 1887 में 'बाल दीपक' नामक उनकी पुस्तक चार खंडों में प्रकाशित हुईं। प्रो. रोनाल्ड स्टुअर्ट मैकग्रेगर का जन्म 1929 में हुआ। ऑक्सफोर्ड और लंदन विश्वविद्यालय से उन्होंने हिंदी का अध्ययन किया। उन्होंने अंग्रेज़ी-हिंदी में पुस्तक लिखी 'मौखिक हिंदी अभ्यास'।

डॉ. ओदोलेन स्मेकल चेकोस्लोवाकिया गणराज्य के नागरिक हैं। 18 अगस्त, 1928 को जन्मे डॉ. स्मेकल ने पार्ल्स विश्वविद्यालय से हिंदी में एम.ए. किया और बाद में पी-एच.डी. की उपाधि हासिल की। डॉ. स्मेकल भारत में चेक गणराज्य के राजदूत रहे। वे हिंदी जगत में अपनी कविताओं के लिए जाने जाते हैं। उनके आठ कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। डॉ. स्मेकल ने 'गोदान' का चेक भाषा में अनुवाद भी किया है। वे भारत-प्रेम और हिंदी समर्पण के लिए विख्यात रहे। वे हिंदी को अपनी दूसरी मातृभाषा के रूप में मानते रहे हैं।

जर्मनी के लोठार लुत्से हिंदी के विदेशी साहित्यकार के रूप में अत्यंत चर्चित नाम है। 7 दिसंबर, 1927 को साइलेशिया में जन्मे डॉ. लोठार लुत्से हाइडेलबर्ग विश्वविद्यालय में भाषा विज्ञान विभाग के अध्यक्ष रहे। डॉ. लुत्से ने हिंदी कविताओं का जर्मन में अनुवाद किया। डॉ. लुत्से ने हिंदी छात्रों के लिए एक पाठ्य-पुस्तक भी तैयार की। उन्होंने अशोक वाजपेयी और विद्या खरे की कविताओं का जर्मन में अनुवाद किया है।

रूस के डॉ. येवर्गनी चेलीशेव का जन्म 27 अक्तूबर, 1921 में हुआ। वे भारतीय व संस्कृति के विद्वान रहे हैं। कविता में उन्हें विशेष रुचि रही। 'आधुनिक हिंदी कविता' विषय पर पी.एच.डी. की उपाधि से विभूषित हुए। उन्होंने रूसी और भारतीय साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन पर लगभग 200 पुस्तकों की रचना की। रूस के ही एक अन्य हिंदी विद्वान पी.ए. वारान्निकोव हैं, जिन्होंने रामायण का रूसी भाषा में अनुवाद किया है।

प्रोफेसर मारिया बृस्की का जन्म पोलैंड में 1937 में हुआ। वे भारत में पोलैंड के राजदूत भी रहे। हिंदी और संस्कृत से पोलिश भाषा में सराहनीय अनुवाद कार्य उन्होंने किया। 1966 में बनारस विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. प्राप्त की। उन्होंने कई हिंदी-संस्कृत नाटकों के अनुवाद किए। साथ ही, मनुस्मृति, इडास्मृति आदि का पोलिश में अनुवाद किया।

जापान में हिंदी को लोकप्रिय भाषा बनाने में निवाको कोईजुका की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। मिनाको ने हिंदी सिनेमा के माध्यम से जापान में हिंदी शिक्षा में क्रांतिकारी संभावनाओं की तलाश की। टीवी और नाटकों के माध्यम से हिंदी शिक्षण की व्यापक सामग्री तैयार की। रामायण को हिंदी पाठ्यसामग्री के तौर पर तैयार किया गया। उनके नेतृत्व में भारत के प्रमुख शहरों में हिंदी नाटकों का सफल मंचन किया गया है। प्रोफेसर क्यूमा दोई ने जापानी-हिंदी और हिंदी-जापानी शब्दकोश का निर्माण कर दोनों भाषाओं को एक-दूसरे के करीब ला दिया है। प्रो. दोह ने 'गोदान' का जापानी में अनुवाद किया है। इनके अलावा डॉ. तोजियो मिजेकेनी मूल रूप से हिंदी में कहानी लिखते रहे। उन्होंने पंजाबी भाषा में पी.एच.डी. प्राप्त की। प्रो. तोशियो तनाका ने भारत में हिंदी का अध्ययन किया और अब भी वे हिंदी के विकास में अपना योगदान दे रहे हैं।

विदेशों में कई हिंदी विद्वानों ने हिंदी के विकास में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कनाडा की डॉ. कैथरिन जी. हैंसन ब्रिटिश कोलंबिया विश्वविद्यालय में भारतीय भाषा और साहित्य की प्रोफेसर हैं। हिंदी के आंचलिक उपन्यासों पर उन्होंने पी.एच.डी. हासिल की है। धर्मवीर भारती, राजेंद्र यादव आदि रचनाकारों की कहानियों का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया है। हंगरी की मारिया नैजेशी हिंदी का अच्छा ज्ञान रखती हैं। उन्होंने भर्तृहरि पर पी.एच.डी. प्राप्त की। हिंदी से हंगेरियन में अनुवाद कार्य भी किया है। चीन के प्रो. जिन डिंगहान ने हिंदी सीखी और रामचरित मानस का चीनी में अनुवाद किया। चीन के ही एक अन्य विद्वान डॉ. गीनशेंवा ने वाल्मीकि रामायण का चीनी अनुवाद किया। प्रो. जोर्जो मिलाएनेति ने हिंदी साहित्य के महत्त्वपूर्ण रीतिकालीन कवियों का इतालवी में अनुवाद किया है।

इंग्लैंड में भारतीय लोगों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। एक सर्वेक्षण में तो यहाँ तक कहा गया कि लंदन की दूसरी भाषा हिंदी या हिंदुस्तानी होती जा रही है। क्योंकि भारतीय उप-महाद्विप के विभिन्न देशों के लोग अपनी पहचान के लिए हिंदी का उपयोग कर सुरक्षित अनुभव करते हैं। भारत के अलावा पाकिस्तान, नेपाल्म बँगलादेश, म्यांमार, श्रीलंका आदि देशों के नागरिक हिंदी में बोलने को प्राथमिकता देते हैं। अपरिचित होने के बावजूद वे आपस में संवाद के लिए हिंदी का प्रयोग करते हैं। यहाँ अंग्रेज़ी के बाद सबसे अधिक बोली जानेवाली भाषा हिंदी ही मानी जाती है। इंग्लैंड में भारतवंशियों का प्रभाव बढ़ रहा है। राजनैतिक रूप से ऊपरी

सदन में 14 और निचली सदन में 6 भारतवंशी हैं। स्थानीय नगरपालिकाओं में 245 से अधिक सदस्य हैं और कई शहरों के मेयर भी हैं। मित्तल जैसे उद्योगपति इंग्लैंड में सबसे धनी व्यक्ति माने जाते हैं। विभिन्न क्षेत्रों में प्रभाव बनाने वालों की भाषा भी महत्त्वपूर्ण हो उठती है। इंग्लैंड में हिंदी की सघन गतिविधियाँ इसका प्रमाण हैं।

ब्रिटेन में हिंदी की तमाम संस्थाएँ भी हैं। 'यू.के. हिंदी समिति' का संचालन श्री पद्मेश गुप्त व श्रीमती उषाराजे सक्सेना करते हैं। बर्मिंघम में 'गीतांजलि बहुभाषीय समुदाय' नामक संस्था डॉ. कृष्णकुमार व सुश्री तितिक्षा आनंद की देखरेख में चलती है। 'भाषा संगम' का संचालन महेंद्र वर्मा करते हैं। साथ ही अंतर्राष्ट्रीय हिंदी कवि सम्मेलन, भाषा सम्मेलन आयोजित होते हैं। छठा विश्व हिंदी सम्मेलन लंदन में ही आयोजित किया गया।

पिछले तीन वर्षों से कथाकार तेजेंद्र शर्मा के नेतृत्व में इंग्लैंड में हिंदी साहित्य की गतिविधियाँ बहुत तेज़ हो गई हैं। लंदन में वे 'अंतर्राष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान' का आयोजन करते हैं। इस अवसर पर विभिन्न गोष्ठियों और कवि सम्मेलनों के संयोजन सहित लंदन के और भारत से जाने वाले साहित्यकारों के बीच महत्त्वपूर्ण विचार-विमर्श होता है। इंग्लैंड में कई ऐसे साहित्यकार हैं जो अपने वर्तमान को हिंदी में शब्द बद्धकर रहे हैं। सत्येंद्र श्रीवास्तव भी उनमें से एक हैं।

लंदन में हिंदी रचनाकारों का बड़ा कारवाँ है। भारत में कथाकार सूरजप्रकाश 'अंतर्राष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान' का संयोजन करते हैं। सूरजप्रकाश ने 'कथा लंदन' नामक एक कथा-संग्रह का संपादन भी किया है। इसमें भारतेंदु विमल, शैल अग्रवाल, कैसर तमकीन, दिव्या माथुर, गौतम सचदेव, अरुण आस्थाना, उषाराजे सक्सेना, पद्मेश गुप्त, तेजेंद्र शर्मा की सक्रिय भागीदारी है। इस संस्था द्वारा अब तक चित्र मुद्गल, संजीव, ज्ञान चतुर्वेदी को नेहरू सेंटर, लंदन में सम्मानित किया जा चुका है।

सारा विश्व उदारीकरण और वैश्वीकरण की ओर बढ़ रहा है, ऐसे में विश्व की आर्थिक राजधानी अमेरिका में सुख-सुविधाओं के चुंबक की ओर आकर्षित होने में ज्ञान-विज्ञान में निपुण लोग सबसे आगे रहे हैं। भारत से भी अमेरिका जाने वालों की संख्या कम नहीं है।

अमेरिका जैसे महाकाय देश में अपनी पहचान कायम रखने के लिए भारतीयों ने कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। अमेरिका में, भारत के विभिन्न प्रांतों के लोग हैं। वहाँ वे सब हिंदी माध्यम से जुड़ते हैं। अपनी अस्मिता और पहचान के लिए हिंदी कार्यक्रमों में बड़ी संख्या में शामिल होते हैं।

अमेरिका में 'अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति' की 'विश्वा', 'विश्व हिंदी समिति' की 'सौरभ', विश्व हिंदी न्यास की 'हिंदी जगत' पत्रिकाएँ नियमित रूप से प्रकाशित होती हैं। साथ ही, न्यूयॉर्क स्थित भारतीय विद्यालय की ओर से हिंदी से संबंधित कार्यक्रमों का संचालन, भवन के कार्यकारी निदेशक डॉ. पी. जयरामन बिलकुल नई संकल्पनाओं के साथ करते हैं। विविध प्रकाशनों के अलावा हिंदी शिक्षण के प्रति भी वे समर्पित हैं। उम्र उनकी व्यस्तताओं को शिथिल नहीं कर पाई। अब भी वे प्रशासनिक कार्यों के साथ अध्यापन भी करते हैं। भारतीय संस्कृति व साहित्य से परिचित करवाने हेतु वे अमेरिका के हिंदी छात्रों का चयनकर उन्हें भारत भ्रमण पर लाते हैं। इनमें अमेरिका मूल के छात्र भी होते हैं।

डॉ. राम चौधरी, न्यूयॉर्क, विश्व हिंदी न्यास के अध्यक्ष हैं। उन्होंने अपना जीवन पूरी तरह हिंदी के लिए समर्पित कर दिया है। वे न्यूयॉर्क से 'हिंदी जगत' नामक पत्रिका का संपादन करते हैं। हर वर्ष वे हिंदी अधिवेशन का आयोजन भी करते हैं, जिसमें पूरे अमेरिका के प्रतिनिधि भाग लेते हैं। इसमें हिंदी कवि सम्मेलन, सांस्कृतिक कार्यक्रमों का समावेश होता है। वर्ष 2002 में 'डायसपोरा' हिंदी साहित्य विषय पर एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इसमें हिंदी के प्रख्यात उपन्यासकार डॉ. सुषम बेदी, डॉ. विशाखा ठाकर, मधु महेश्वरी, डॉ. रमाकांत शर्मा, डॉ. दामोदर खड़से, धनंजय कुमार, गुलशन मधुर और डॉ. सीमा खुराना ने भाग लिया था। हिंदी शिक्षण के संबंध में भी अधिवेशन में विचार-विमर्श किया गया। न्यास के सचिव डॉ. कैलाश शर्मा पेशे से इंजीनियर हैं, उन्होंने पूरे अधिवेशन को एक विशिष्ट ऊँचाई प्रदान की। इस अवसर पर हिंदी के कई प्रकाशन भी उपलब्ध कराए गए। 'दिशांतर' शीर्षक से एक कविता-संग्रह था, जो अमेरिका में बसे भारतीय कवियों की हिंदी कविताओं का संकलन है। डॉ. राम चौधरी की पुस्तक 'भारतीय अस्मिता के अग्रदूत' पुस्तक में भारतीय महापुरुषों के जीवन पर विशेष प्रकाश डाला गया है।

डॉ. सुषम बेदी कोलंबिया विश्वविद्यालय में हिंदी की विभागाध्यक्ष हैं। वे हिंदी की यशस्वी कथाकार हैं। उनके उपन्यास 'हवन' ने विदेशों में बसे भारतीयों के बीच जीवन-मूल्यों के संघर्ष को बखूबी से रेखांकित किया है। उनकी लगभग 10 पुस्तकें हिंदी में प्रकाशित हो चुकी हैं और चर्चित भी रही हैं। उनका नवीनतम उपन्यास है 'नवाभूम की रसकथा'। उसी विश्वविद्यालय की डॉ. अंजना संधीर का 'यह कश्मीर है' कविताओं का संकलन प्रकाशित हुआ है। अंजना संधीर ने एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उन्होंने अमेरिका की महिला रचनाकारों की कविताओं का व्यापक संकलन 'प्रवासिनी के बोल' में किया है। इसके अलावा 'सात समुंदर पार से', 'इजाफा' आदि का संपादन किया है। 'तुम मेरे पापा जैसे नहीं हो' उनका चर्चित काव्य संग्रह है। 'बारिशों का

मौसम तथा धूप-छाँव' और 'आँगन' उनका गज़ल-संग्रह है। गुलशन मधुर 'वाइस ऑफ अमेरिका' में अधिकारी हैं। उनकी कविताओं में अत्यंत संवेदनशील विषय समेटे गए हैं। डॉ. विशाखा ठाकर का 'तीसरा छल' चर्चित कविता-संग्रह है। डॉ. विशाखा की कविताएँ व्यक्तिगत अनुभूतियों की सार्थक अभिव्यक्तियाँ हैं। विभिन्न देशों से गुजरते हुए उन्होंने अपने भीतर संपूर्ण भारतीय अनुभूतियों को समेटा हुआ है।

संभवत: यह पहला अवसर होगा, जब हिंदी की कोई फिल्म विदेश में तैयार की गई और भारत में प्रदर्शित की गई। न्यूयॉर्क के कलाकारों और निर्माता-निर्देशकों ने 'अमेरिकन देसी' फिल्म का वहीं निर्माण किया। उसका विषय भी अमेरिका में बसे भारतीयों के जीवन में आ रहे परिवर्तनों और पीढ़ियों का संघर्ष है।

वाशिंगटन में अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति की अत्यंत सक्रिय शाखा है। मधु महेश्वरी, गुलशन मधुर, धनंजय कुमार और विशाखा ठाकर के नेतृत्व में इस समिति की ओर से हिंदी दिवस, कवि सम्मेलन आदि का आयोजन किया जाता है। साथ ही, हिंदी शिक्षण के लिए स्कूलों का संचालन भी किया जाता है। अमेरिका जैसे देश में टीवी का हिंदी चैनल भी है। इसमें श्री व्यास की भूमिका अत्यंत सराहनीय है।

अमेरिका के विभिन्न विश्वविद्यालयों में समाज विज्ञान की प्रोफेसर डॉ. उषादेवी विजय कोल्हटकर हिंदी और मराठी में समान रूप से अपना लेखन कर रही हैं। उनका हिंदी उपन्यास 'जमी हुई बर्फ' और 'प्रलय के पार' अमेरिकी जन-जीवन की भीतरी दास्तान है। 'चाबी का गुड्डा', 'अँधेरी सुरंग में', 'बटर, टॉफी और बूढ़ा डालर' उनके कहानी-संग्रह हैं। इन संग्रहों में उन्होंने अमेरिका के घर-परिवार-समाज की घटनाओं को कथारूप दिया है।

कोलंबिया विश्वविद्यालय (अमेरिका) के हिंदी विभाग में चर्चा के दौरान स्पष्ट हुआ कि इस विभाग में भारत, पाकिस्तान, फ्रांस, अमेरिका के छात्र हिंदी पढ़ने आते हैं। इंदौर के महाराजा होलकर की वंशज सब्रीना होलकर 'हिंदी और फ्रेंच भाषा का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर शोधकार्य कर रही थीं। साथ ही, एक अमेरिकी छात्र डेरिक मिचल 'भारत में धर्म और गांधीजी की सोच' विषय पर शोधकार्य कर रहे थे। जिस अंदाज़ से इन दोनों छात्रों ने चर्चा में मुद्दे उपस्थित किए इससे यह स्पष्ट होता है कि हिंदी और इसके साहित्य को लेकर वे बहुत उत्सुक और समर्पित हैं। विभाग प्रमुख के रूप में डॉ. सुषम बेदी का नेतृत्व और मार्गदर्शन बहुत सार्थकता लिए हुए रहा।

एक माह की अमेरिका यात्रा के दौरान वहाँ के प्रमुख नगरों से प्रवास करते समय यह बात स्पष्ट हुई कि हिंदी भाषा ने सभी भारतीयों को एक सूत्र में पिरोया है। अमेरिका में बेहतर आजीविका के लिए आए मूल भारतीयों में हिंदी के उत्कृष्ट रचनाकार भी हैं। हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के बारे में उनमें गहरी उत्कंठा लगी। डॉ. विशाखा ठाकुर, वरिष्ठ वैज्ञानिक भी हैं। साथ ही, हिंदी साहित्य में उनकी गहरी आस्था है। हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का अभाव, अनुपलब्धता उन्हें बहुत खलता है। उनकी रुचि को देखते हुए मैंने उनसे कहा कि इंटरनेट के इस युग में कुछ पत्रिकाएँ सहज प्राप्त हैं। उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। अब इंटरनेट के इस युग में हिंदी, दुनिया के कोने-कोने में सहजता से उपलब्ध होती रहेगी। अपनी जड़ों से जुड़नेवालों के लिए कंप्यूटर और इंटरनेट का आविष्कार निश्चित ही वरदान सिद्ध होगा।

कनाडा में भी हिंदी भाषा और साहित्य को लेकर बहुत उत्साह है। डॉ. स्नेह ठाकुर 'वसुधा' नामक पत्रिका का प्रकाशन कर रही हैं, जिसमें कविता-कथा आदि के प्रकाशन के साथ हिंदी भाषा विषयक लेखों को भी प्रमुखता से स्थान दिया जाता है।

आज विश्व में अमेरिका, कनाडा, रूस, ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, हॉलैंड, स्विट्जरलैंड, डेनमार्क, नॉर्वे, स्वीडन, इटली, ऑस्ट्रेलिया, मैक्सिको, क्यूबा, बेल्जियम, ऑस्ट्रिया, फिनलैंड, रोमानिया, उक्रेन, चीन, मंगोलिया, तुर्की, उज्बेकिस्तान, थाइलैंड, मॉरीशस, फीजी, सूरीनाम, गुयाना, त्रिनिदाद एवं टोबैगो, ताजिकिस्तान, पोलैंड, चेक गणराज्य, हंगरी, दक्षिण अफ्रीका, जापान, दक्षिण कोरिया जैसे देशों के विश्वविद्यालयों में हिंदी को भाषा के रूप में पढ़ाया जाता है। भारत के पड़ोसी देश पाकिस्तान, श्रीलंका, बँगलादेश, नेपाल, भूटान और म्यांमार में तो इसे पढ़ाया जाना अत्यंत स्वाभाविक है। इनमें से कुछ देशों में तो स्कूल स्तर पर भी हिंदी पढ़ाई जाती है।

कई विदेशी भाषाओं में शब्दकोश भी उपलब्ध हैं, जिनमें हिंदी-जर्मन, हिंदी-रोमानिया, हिंदी-रूसी, हिंदी-उज्बेकी, संक्षिप्त हिंदी-जापानी, हिंदी-चीनी शब्दकोष मुख्य हैं। हंगेरियन-हिंदी कोश भी तैयार किया गया है।

इंटरनेट के इस युग में हिंदी ने अपना विस्तार प्रारंभ कर दिया है। अब कई पत्र-पत्रिकाएँ इंटरनेट पर आ चुकी हैं। प्रसिद्ध सर्च इंजन गूगल के प्रमुख एरिक श्मिट का मानना है कि अगले पाँच से दस वर्ष के भीतर हिंदी इंटरनेट पर छा जाएगी। अंग्रेज़ी और चीनी के साथ-साथ यह दुनिया की प्रमुख भाषा होगी। दरअसल हिंदी की इसी व्यापक उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए गूगल के अलावा, माइक्रोसॉफ्ट, सन, याहू, आईबीएम और ओरेकल जैसी विश्व-स्तर की कंपनियाँ भी अपने मुनाफे की अपार संभावनाओं के चलते हिंदी को अपनाने में पहल कर रही हैं।

यूनिवर्सिटी ऑफ वेल्स के प्रोफेसर और भाषा-शास्त्र डेविड क्रिस्टल ने अंग्रेज़ी भाषा की स्थिति पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि वर्ष 1997 में वर्ल्डवाइड वेब पर अंग्रेज़ी 80 प्रतिशत थी जो

2000 में घटकर 70 प्रतिशत हो गई और 2004 में वेब पर अंग्रेज़ी 50 प्रतिशत तक सिमट आई है। इस सर्वेक्षण से यह स्पष्ट होता है कि अंग्रेज़ी के मुकाबले विश्व की कई भाषाएँ अब वर्ल्डवाइड वेब पर अपना स्थान बना रही हैं, हिंदी भी अपना स्थान निरंतर बना रही है। वेब के साथ ही मोबाइल संप्रेषण में एस.एम.एस. माध्यम में भी अब हिंदी का प्रयोग बढ़ रहा है।

विश्व स्तर पर हिंदी साहित्य के माध्यम से जहाँ दूर–दराज तक फैले आप्रवासियों को आपस में जोड़ने का कार्य किया जा रहा है, वहीं आप्रवासियों की आंतरिक अनुभूतियों, सांस्कृतिक विरासत, चिंतन और संवेदनाओं को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए हिंदी अपनी सार्थक भूमिका निरंतर निभाती रही है। सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि संप्रेषण की नव–नवीन तकनीक के साथ तालमेल स्थापित कर हिंदी की भूमिका को और अधिक महत्त्वपूर्ण परिप्रेक्ष्य में देखा जा रहा है।

विश्व स्तर पर हिंदी साहित्य के माध्यम से जहाँ दूर-दराज तक फैले आप्रवासियों को आपस में जोड़ने का कार्य किया जा रहा है, वहीं आप्रवासियों की आंतरिक अनुभूतियों, सांस्कृतिक विरासत, चिंतन और संवेदनाओं को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए हिंदी अपनी सार्थक भूमिका निरंतर निभाती रही है। सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि संप्रेषण की नव-नवीन तकनीक के साथ तालमेल स्थापित कर हिंदी की भूमिका को और अधिक महत्त्वपूर्ण परिप्रेक्ष्य में देखा जा रहा है।

नौवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन दक्षिण अफ्रीका की राजधानी जोहांसबर्ग में 22 से 24 सितंबर, 2012 को संपन्न हुआ। विश्व भर के हिंदी प्रेमी इसमें सहभागी हुए। इटली के श्री मार्को और जर्मनी की सुश्री बार्बरा सहित अनेकानेक विदेशी विद्वानों ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। बीस विदेशी और बीस भारतीय हिंदी विद्वानों को इस अवसर पर सम्मानित किया गया। भारत में और विदेशों में हिंदी के अध्ययन, सृजन, मीडिया जैसे प्रासंगिक विषयों पर विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किए।

भारत सरकार और मॉरीशस सरकार के संयुक्त तत्वावधान में विश्व हिंदी सचिवालय का स्थायी कार्यालय मॉरीशस में स्थापित किया गया है। संसदीय राजभाषा समिति की पूर्व सचिव श्रीमती पूनम जुनेजा को इसका महासचिव नियुक्त किया गया है। श्रीमती जुनेजा ने नौवें विश्व हिंदी सम्मेलन में विश्व हिंदी सचिवालय की गतिविधियों का व्यापक ब्योरा प्रस्तुत किया। इन गतिविधियों से यह लगता है कि सचिवालय वैश्विक स्तर पर हिंदी को गतिशील बनाने के लिए कटिबद्ध है।

हिंदी के विकास में उन विदेशियों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही, जिनके पूर्वज भारतीय रहे। इन देशों में मॉरीशस, सूरीनाम, फीजी, त्रिनिदाद, गुयाना आदि देश मुख्य हैं। इन देशों में हिंदी भाषियों की तरह मूल रचनाकार हैं। इन देशों में हिंदी में पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन होता है और लेखक–रचनाकार अपने–अपने देश की पत्र–पत्रिकाओं के साथ–साथ भारत की हिंदी पत्र–पत्रिकाओं में नियमित रूप से छपते रहे हैं विश्व समुदाय के सामने हिंदी की व्यापक स्वीकृति के लिए प्रभावी प्रयास जारी हैं। विदेशी विद्वानों, साहित्यकारों द्वारा हिंदी के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान विशेष उल्लेखनीय है। जितनी बड़ी मात्रा में विदेशों में हिंदी का अध्ययन–अध्यापन व प्रचार–प्रसार हो रहा है। इससे यह उम्मीद बलवती होती जाती है कि हिंदी वैश्विक स्तर पर एक महत्त्वपूर्ण भाषा के रूप में अपनी पहचान की व्यापकता निरंतर बढ़ाती रहेगी।

—डॉ. दामोदर खड़से
बी–503–504 हाई ब्लिस,
कैलाश जीवन के पास, धायरी, पुणे–411041
इ–मेल : damodarkhadse@gmail.com

❑

धर्म की क्षति जिस अनुपात में होती है, उसी अनुपात में आडंबर की वृद्धि होती है।

—प्रेमचंद

मनुष्य ही परमात्मा का सर्वोच्च साक्षात् मंदिर है, इसलिए साकार देवता की पूजा करो।

—विवेकानंद

भूमंडलीकरण और हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय संबंध

“भारतीय भाषाएँ नदियाँ हैं और हिंदी महानदी।”

–गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर

–सुश्री अनुजा बेगम

किसी भाषा को देखने के तीन संदर्भ होते हैं :—उस भाषा का अपना क्षेत्रीय संदर्भ, उस भाषा का अपना राष्ट्रीय संदर्भ और उसका अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ। भूमंडलीकरण के इस दौर में, हिंदी भाषा ही एक ऐसे भाषा–परिवार की एक आधुनिक भाषा है जो विश्व में सबसे बड़ी है तथा जिसके बोलनेवालों की संख्या विश्व में सबसे अधिक है। संसार की भाषाओं में हिंदी भाषा को तृतीय स्थान प्राप्त है। इसके बोलनेवालों की संख्या तीस करोड़ के आस–पास है।

डॉ. सुशील कुमार चटर्जी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ‘Indoaryan and Hindi’ में कहा था, ‘‘जहाँ तक बोलनेवालों की संख्या का प्रश्न है, हिंदी भाषा विश्व में तीसरे नंबर पर है। विश्व में सबसे अधिक बोलनेवालों की संख्या चीनी की है, दूसरे नंबर पर अंग्रेज़ी है और तीसरे नंबर पर हिंदी।’’

हिंदी भाषा की बोलियाँ–उपबोलियाँ तथा उसके स्थानीय रूप भी विश्व में किसी अन्य भाषा से कहीं अधिक हैं। अत: हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपना महत्त्व है, विशेषकर भूमंडलीकरण के इस दौर में।

‘‘असतो मा सद्गमय॥
तमसो मा ज्योर्तिगमय॥
मृत्योर्मा अमृतम गमय॥’’

- जन्म : 01 फरवरी, 1986, असम, भारत में।
- शिक्षा : हिंदी में स्नातकोत्तर उपाधि तथा एम.फिल शोध जारी।
- अनुभव : गुवाहाटी, असम के हेंदिक गर्ल्स कॉलेज तथा पांडु कॉलेज में अंशकालिक हिंदी प्राध्यापक के रूप में कार्यरत रहीं।
- प्रकाशन : ‘हिंदी कल’, ‘आज और कल’ (संगोष्ठी पेपर), ‘असम में हिंदी की परंपरा का संक्षिप्त इतिहास’ (आलेख), राष्ट्रीय एकता में हिंदी की भूमिका तथा अहिंदी भाषी प्रदेशों में हिंदी के प्रचार–प्रसार का महत्त्व (संगोष्ठी पेपर) आदि सहित अन्य आलेख व सृजनात्मक लेखन प्रकाशित।
- संप्रति : आर्य विद्यापीठ कॉलेज, गोपीनाथ नगर, गुवाहाटी, असम में अंशकालिक हिंदी प्राध्यापक के रूप में कार्यरत।

भारतवर्ष एशिया महादेश की एक प्रमुख देश है, अत: यहाँ की राष्ट्रभाषा हिंदी है। एशिया महादेश की भाषाओं में हिंदी ही एक ऐसी भाषा है, जो अपने देश के साथ–ही–साथ अंतर्राष्ट्रीय देशों में भी बोली और लिखी जाती है। विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर ने हिंदी भाषा के संदर्भ में लिखा है कि भारतीय भाषाएँ नदियाँ हैं और हिंदी महान दी। हिंदी में यदि और नदियों का पानी आना बंद हो जाए तो हिंदी स्वयं सूख जाएगी और यह नदियाँ भी भरी–पूरी नहीं रह सकेंगी।

आज भूमंडलीकरण के इस दौर में देखा जाए तो भारतीय–संस्कृति ने क्रमश: विश्व–संस्कृति में अपना एक अलग पहचान बनाया है। विश्व–संस्कृति आज भारतीय संस्कृति से जुड़े हुए हैं तथा ‘हिंदी’ ही वह कड़ी है जिसने विश्व–संस्कृति एवं भारतीय–संस्कृति की बीच की समन्वय की एकता को मज़बूत बनाया है। आज से लगभग कई वर्ष पूर्व ‘विश्व हिंदी सम्मेलन’ में 11 जनवरी, 1975 को विश्व हिंदी नगर के मुख्य पंडाल में जो गोष्ठी हुई थी, उस गोष्ठी का प्रारंभ करते हुए मॉरीशस के युवा क्रीड़ा मंत्री श्री दयानंदलाल वसंतराय ने जो कामना की वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने कहा—

‘‘हिंदी की गंगा द्वारा प्रदान की गई यह विश्वव्यापी भावात्मक एकता अमर रहे और संसार के विभिन्न भागों में बसे हुए हिंदी

भाषा-भाषी लोग सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं भावात्मक स्तर पर एक-दूसरे के अधिक-से-अधिक समीप आकर एक ऐसे भाईचारे में बँध जाएँ जो सद्‌भाव, सहयोग, संवेदन, सहिष्णुता तथा मैत्री पर आधारित हो।''

उन्होंने मॉरीशस में हिंदी की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहा था—

''मॉरीशस में हिंदी के प्रति बहुत उत्साह है। हिंदी हमारी संस्कृति और धर्म की भाषा है। हमारे उन्मुक्त चिंतन की भाषा है। इसके द्वारा हम विश्व के एक बहुत बड़े जनसमुदाय के साथ जुड़े हैं। उससे कटना हमारे लिए संभव नहीं। हिंदी भारत की राजभाषा है। हमें भारत से सहज-स्वाभाविक प्रेम है। उसकी उन्नति हमें सुख देती है और विपन्नता दु:ख!''

अत: भूमंडलीकरण मूल रूप से दो बातों से जुड़ी हुई है—''निजीकरण एवं उदारीकरण।'' आज के इस वैश्वीकरण युग में भारतवर्ष की 'राष्ट्रभाषा एवं राजभाषा' 'हिंदी' ने स्वराष्ट्र के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अपना संबंध स्थापित किया है।

भूमंडलीकरण का तात्पर्य है—आर्थिक उदारीकरण। भूमंडलीकरण के दौर में आज विश्व की अर्थव्यवस्थाओं का उदारीकरण हो रहा है। भारत में 1983 में प्रौद्योगिकी नीति का निर्माण हुआ था। भारत के भूमंडलीकरण की बुनियादी मान्यता यह है कि अमेरिका की राजनीतिक आर्थिक चौधराहट और यूरोप की सभ्यतामूलक विश्व-दृष्टि के तहत संचालित यह प्रक्रिया भारतीय लोकतंत्र के संस्थापक मूल्यों और संरचनाओं को बेहद रफ्तार और निर्ममता से बदल रही है।

भूमंडलीकरण के इस दौर में जिस तेज़ी के साथ विश्व में परिस्थितियाँ बदलती जा रही हैं; भारत उनसे अछूता नहीं है। दरअसल आज भारत इस बदलाव के पटल पर एक सशक्त नायक के रूप में उभर रहा है। विभिन्न क्षेत्रों में नए इतिहास की रचना की जा रही है। आज भारत अंतरिक्ष कार्यक्रम, कंप्यूटर, सूचना-प्रौद्योगिकी, प्रतिरक्षा, नाभिकीय कार्यक्रम, कृषि, मानव-स्वास्थ्य, महासागर विकास जैसे क्षेत्रों में विश्व मानचित्र पर एक सशक्त पहचान बना चुका है। भारतवर्ष आज एक सशक्त विश्व-शक्ति के रूप में उभर रहा है।

आज हिंदी तकनीक एवं सूचना-प्रौद्योगिकी के साथ कदम मिलाकर चलने में समर्थ है जिससे वह 'ग्लोबम विलेज' में प्रवेश कर चुकी है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में ज्ञान का महत्त्व था। वर्तमान युग में, सूचना-प्रौद्योगिकी ज्ञान की केंद्र-बिंदु है। आवश्यकतानुसार, विभिन्न दिशाओं में ज्ञान का संप्रेषण करना प्रौद्योगिकी का मुख्य उद्‌देश्य है।

आज भारत प्रौद्योगिकी उन्नति को अपनाकर द्रुत गति से विकास कर रहा है और जापान, अमेरिका जैसे विकसित देशों की श्रेणी में खड़ा होने जा रहा है।

हिंदी भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा है। भूमंडलीकरण के इस दौर में आज भारतवर्ष के बाहर भी हिंदी का व्यापक प्रचार-प्रसार हो रहा है। हिंदी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मात्र विचाराभिव्यक्ति का साधन नहीं, बल्कि राजनीतिक और सांस्कृतिक उद्‌देश्यों की प्राप्ति का भी एक समर्थ साधन सिद्ध हो चुकी है। हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय संबंध में सबसे महत्त्वपूर्ण प्रसंग हिंदी के विश्व-मैत्री की एक कड़ी होने का है।

'द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन' में 'धर्मयुग' के यशस्वी संपादक डॉ. धर्मवीर भारती ने कहा था—

''मैं संसार में मॉरीशस का विशेष महत्त्व इस दृष्टि से भी मानता हूँ कि यह एक ऐसा देश है जिसने अपनी आज़ादी की लड़ाई हिंदी भाषा के सहारे लड़ी और उन मूल्यों की, मानव अस्मिता की उस स्थापना के लिए अपनी भाषा के माध्यम से प्रयास किया।''

और मॉरीशस ही क्यों फीजी में भी काफी कुछ यहीं हुआ। और भारत में? भारत में देश की आज़ादी की लड़ाई में महात्मा गांधी ने हिंदी के अस्त्र का ही सहारा लिया। वे प्राय: 1910 से ही कहा करते थे कि राष्ट्रभाषा हिंदी का सवाल मेरे लिए देश की स्वतंत्रता से कम महत्त्वपूर्ण नहीं।

वेस्टइंडीज, गुयाना, त्रिनिदाद, सूरीनाम या कुछ अन्य देशों में हिंदी सांस्कृतिक एकता का एक समर्थ साधन है।

14 सितंबर, सन् 1949 भारतीय इतिहास की एक गौरवपूर्ण तिथि है। क्योंकि इसी दिन स्वतंत्र भारत की संविधान सभा ने हिंदी को राष्ट्रभाषा और देवनागरी को राष्ट्रलिपि घोषित किया था। ''एक हृदय हो भारत जननी''—यही मूलमंत्र राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार का मूल ध्येय है।

भूमंडलीकरण के इस दौर में, हिंदी के विश्व विस्तृत फैलाव को देखते हुए यह नारा लगाया जा सकता है कि—''एक हृदय हो विश्व जननी।''

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर देखा जाए तो वहाँ हिंदी पढ़नेवाले लोग दो तरह के हैं—विदेशी एवं प्रवासी भारतीय। विदेशों में हिंदी अधिकतर हमारे मज़दूर भाइयों-बहनों के साथ गई। उनकी यह सांस्कृतिक धरोहर रही और अपने सत्त्व से वहाँ कायम रही। हिंदी का जन्म संस्कृत और जनता की आम भाषा के मिलने से हुआ। इस भाषा को अहिंदी भाषा-भाषियों ने सँवारा और बढ़ाया। केशवचंद्र सेन, राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी जैसे अहिंदी भाषा-भाषी महान पुरुषों ने इसका प्रचार किया और इसे बल दिया। विदेशी विद्वानों ने भी इसकी सेवा की और ग्रियर्सन जैसे व्यक्तियों ने हिंदी में ज्ञान का खज़ाना बढ़ाया। महात्मा गांधी ने कहा कि यदि भारत को एक राष्ट्र बनना है तो चाहे कोई माने या न माने, राष्ट्रभाषा तो हिंदी ही बन

सकती है। तमिल के महाकवि सुब्रह्मण्यम भारती ने भी राष्ट्र की एकता के लिए राष्ट्र-भाषा हिंदी पर ही बल दिया।

विदेशों के लिए हिंदी प्रेम और सद्भाव की वाहिका है। विदेशी लोग हिंदी सीखते हैं, जिनके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

1. भारत से अपने को आर्थिक, व्यापारिक, सामाजिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से जोड़ना।
2. हिंदी में बातचीत करना।
3. हिंदी फिल्मों और उनके गीतों को समझना।
4. अकादमिक दृष्टि से हिंदी का गहन अध्ययन करना।

विदेशी हिंदी विद्वानों ने हिंदी में साहित्यिक रचनाएँ की हैं; शब्दकोश लिखे हैं और हिंदी की अनेक प्रसिद्ध रचनाओं को अपनी-अपनी भाषा में अनुवाद किया है। आज हिंदी भाषा केवल भारत तक ही सीमित नहीं है। वह अपने पड़ोसी देश पाकिस्तान, बँगलादेश, श्रीलंका में भली प्रकार बोली और समझी जाती है। नेपाल की तो प्रमुख भाषा है। इसके अतिरिक्त मॉरीशस, फीजी, त्रिनिदाद और सूरीनाम का बहुसंख्यक जन समाज भारतीय प्रवासियों का है; जिनकी मूल भाषा आज भी हिंदी है। वहाँ स्कूलों में हिंदी पढ़ाई जाती है। इन देशों में हिंदी के समाचारपत्र और पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होते हैं। फीजी और मॉरीशस में हिंदी को संवैधानिक मान्यता प्राप्त है। मॉरीशस में हिंदी के अनेक लब्धप्रतिष्ठित साहित्यकार हैं। वहाँ के विद्यालयों में अधिक संख्या हिंदी माध्यम स्कूलों की है। संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी की मान्यता का प्रस्ताव इन्हीं देशों का संयुक्त प्रयास था। इन्हीं देशों में से किसी-न-किसी देश में प्रतिवर्ष 'विश्व हिंदी सम्मेलन' का आयोजन होता है, जिसमें विश्व भर के प्रतिनिधि सम्मिलित होते हैं।

यूरोप का कोई ऐसा देश नहीं जहाँ हिंदी भाषी लोग बहुत संख्या में न बसे हों। इसलिए इन देशों में न्यूनाधिक रूप में हिंदी के पठन-पाठन की भी व्यवस्था है। रूस, जर्मनी, इंग्लैंड, फ्रांस, इटली, चेकोस्लोवाकिया, रूमानिया आदि देशों के विश्वविद्यालयों में एम.ए. और पी-एच.डी. स्तर तक हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की समुचित व्यवस्था है। अमेरिका के अनेक विश्वविद्यालयों में भी एम.ए. स्तर तक हिंदी की नियमित कक्षाएँ चलती हैं। जापान में भी बड़ी संख्या में लोग हिंदी जानते हैं। कुछ जापानी लेखकों द्वारा हिंदी में लिखे गए बाल-उपन्यास, कहानियाँ और निबंध भारतीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। स्पष्टतः हिंदी केवल भारत की ही नहीं, अपितु एशिया तथा अन्य कई देशों के सांस्कृतिक स्पंदन की भाषा है। उसका विश्वभर में प्रसार है। वह विश्व भाषाओं में अंग्रेज़ी और चीनी भाषा के बाद तीसरा स्थान रखती है।

हिंदी आज विश्व भाषा के रूप में अनेक देशों में तेज़ी से लोकप्रिय होती जा रही है और विश्व के विराट फलक पर अपने अस्तित्व को आकार दे रही है। हिंदी मात्र एक भाषा ही नहीं, भारतीय संस्कृति की सबल, समर्थ और सशक्त संवाहिका है, जो विदेशों में बसे करोड़ों की संख्या में प्रवासी भारतीयों और भारत मूल के लोगों के बीच आत्मीयता के संबंध-सूत्र स्थापित करने और उन्हें भारत, भारतीयता तथा भारतीय संस्कृति से निरंतर जोड़े रखने में एक सशक्त माध्यम का काम करती है। इसी में वे अपनी अस्मिता की पहचान भी पाते हैं।

हिंदी आज विश्व भाषा के रूप में अनेक देशों में तेज़ी से लोकप्रिय होती जा रही है और विश्व के विराट फलक पर अपने अस्तित्व को आकार दे रही है। हिंदी मात्र एक भाषा ही नहीं, भारतीय संस्कृति की सबल, समर्थ और सशक्त संवाहिका है, जो विदेशों में बसे करोड़ों की संख्या में प्रवासी भारतीयों और भारत मूल के लोगों के बीच आत्मीयता के संबंध-सूत्र स्थापित करने और उन्हें भारत, भारतीयता तथा भारतीय संस्कृति से निरंतर जोड़े रखने में एक सशक्त माध्यम का काम करती है। इसी में वे अपनी अस्मिता की पहचान भी पाते हैं।

चीन के बाद विश्व का सबसे बड़ा बाज़ार होने के कारण भारत से सहज संपर्क बनाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय विदेशी लोग हिंदी सीखने के लिए उत्सुक हैं। आज हिंदी का बाज़ारीकरण हो रहा है एवं भूमंडलीकरण के फलस्वरूप भारतवर्ष से अंतर्राष्ट्रीय देश आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक क्षेत्रों से जुड़ गए हैं। इससे हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय संबंध और भी मज़बूत हो गया।

विश्व के अनेक देशों के विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षा दी जाती है, जिसमें मॉरीशस, फीजी, हॉलैंड, जर्मनी, अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, ऑस्ट्रेलिया, थाईलैंड, उजबेकिस्तान, तज़ाकिस्तान, क्रोएशिया, कनाडा, चीन, जापान, रोमानिया, बल्गारिया, रूस, हंगरी और पोलैंड आदि देश प्रमुख हैं। जिन देशों में हिंदी शिक्षण को औपचारिक शिक्षा व्यवस्था में स्थान नहीं मिला, वहाँ भारतीय समुदाय की स्वयंसेवी संस्थाएँ हिंदी का अध्यापन करती हैं। स्वाधीन भारत की राजभाषा और बहुसंख्यक समाज की संपर्क भाषा होने के कारण हिंदी का विश्व-परिदृश्य बहुत व्यापक हो रहा है। भारतवर्ष के अहिंदी भाषी प्रदेशों में भी हिंदी का व्यापक प्रचार-प्रसार हो रहा है।

एशियाई देशों में हिंदी का प्रचार-प्रसार होनेवाले देशों के नाम

क्रमशः इस प्रकार हैं—

1. दक्षेस (सार्क के देश)के देश : भारतवर्ष, नेपाल, पाकिस्तान, भूटान, बँगलादेश, मालदीव एवं श्रीलंका।
2. दक्षिण-पूर्व एशिया के देश : लाओस, थाइलैंड, कंबोडिया, म्यांमार।
3. चीन, जापान और बौद्ध संस्कृति से प्रभावित देश।
4. अरब और इसलाम की संस्कृति से प्रभावित देश। ईरान, इराक, अफगानिस्तान,सऊदी अरब, कतर, ओमान, यमन, मध्य एशिया के देश कजाकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान, उजबेकिस्तान, संयुक्त अरब अमीरात (दुबई)।
5. यूरोप में हिंदी जाननेवाले देश : रूस, ब्रिटेन, नॉर्वे, जर्मनी, फ्रांस, हॉलैंड। अफ्रीका के देश, जहाँ भी हिंदी प्रचार-प्रसार हो रहा हैं क्रमशः मॉरीशस, सूरीनाम, दक्षिण अफ्रीका।
6. अमेरिका में हिंदी जाननेवाले देश।
7. गुयाना, त्रिनिदाद एवं टोबैगो, फीजी (विश्व के कुछ हिंदी जाननेवाले अन्य देश)।

उपर्युक्त देशों में हिंदी का प्रचार-प्रसार हुआ एवं मॉरीशस, फीजी, सूरीनाम (दक्षिण अमेरिका), गुयाना (दक्षिण अमेरिका), त्रिनिदाद (वेस्टइंडीज), दक्षिण अफ्रीका, बर्मा, नेपाल, हॉलैंड, इंग्लैंड, कनाडा, जापान, सोवियत संघ तथा चीन आदि देशों में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का भी प्रचार-प्रसार हुआ। हिंदी पत्रकारिता का भविष्य उपर्युक्त देशों में मात्र मॉरीशस, फीजी, सूरीनाम, गुयाना तथा दक्षिणी अफ्रीका में ही उज्ज्वल है, अन्य देशों में बर्मा, नेपाल, हॉलैंड के संबंध में सनिश्चय कुछ कहना कम-से-कम आज बहुत कठिन है।

भूमंडलीकरण के कारण जहाँ अंग्रेज़ी का दायरा व्यापक हुआ है, वहीं हिंदी की भी आवश्यकता बढ़ी है। देश की बहुत बड़ी जनसंख्या हिंदी बोलती है। भारत के बाहर भी कई देशों में हिंदी भाषियों का बाहुल्य है, इसलिए व्यापारिक कंपनियाँ चाहे देशी हों या विदेशी अपना माल बेचने के लिए हिंदी की उपेक्षा नहीं कर सकतीं। अतः व्यापारिक संस्थानों में हिंदी की जानकारी रखनेवालों की आवश्यकता तो रहेगी ही। विश्व बाज़ार ने तो हिंदी की ताकत को पहचाना है, किंतु हिंदी अपनी इस ताकत को कब पहचानेगी। निश्चय ही इसके लिए राष्ट्रीय सोच की आवश्यकता है, मानसिकता बदलने की आवश्यकता है और आवश्यकता है राजनीतिक इच्छा-शक्ति की। अतः राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन ने कहा है—''भाषा और संस्कृति से खिलवाड़ करनेवाले राजनीतिज्ञ आते हैं और चले जाते हैं। भारतीय संस्कृति का प्रतीक हिंदी सदा अमर रहेगी।''

निष्कर्षतः आधुनिक युग विज्ञान और तकनीकी का है। इसमें मानव की प्रगति की बहुत आवश्यकता है। ज्ञान दिन-प्रतिदिन तीव्र गति से बढ़ रहा है। हिंदी में विज्ञान और तकनीकी के साहित्य को बहुत बड़े पैमाने पर बढ़ाना चाहिए। आजकल बच्चों के कार्यक्रम में हिंदी का ही अधिक उपयोग हो रहा है। हिंदी तब बढ़ेगी जब उसमें विज्ञान और ज्ञान का ऐसा साहित्य रचा जाए, जिसे विश्व की अन्य भाषाएँ भी ग्रहण करने के लिए उत्सुक हों। हिंदी को गुणों से भरना है और ऐसे विचार से भरना है कि यह जनता के हित में अधिक-से-अधिक ज्ञान दे सके।

शब्द को तो भारत में ब्रह्म कहते हैं। ऐसे ही हिंदी को व्यापक होना चाहिए। शब्दों का तो बहुत बड़ा खज़ाना है किंतु यह खज़ाना उपयोगी तभी होगा जब शब्दकोशों में बंद न रहे और इसका प्रयोग हो, हमारे प्रतिदिन के जीवन में। भाषा आदान-प्रदान का माध्यम है। राजनीतिक भेदभाव लाने से उसका महत्त्व घटता है।

हिंदी में नवीन-विचार, ज्ञान एवं मनुष्य के दुःख-दर्द का साहित्य बढ़ाना चाहिए ताकि लोगों को उससे संतुष्टि और अपनापन दिखे। हमारे देश में त्रिभाषा सूत्र है। मातृभाषा तो आवश्यक है ही, राष्ट्रभाषा अन्य भाषाओं के बीच कड़ी है और एक बाहरी भाषा अंतर्राष्ट्रीय कड़ी के रूप में चाहिए—इससे राष्ट्र की एकता को बल मिलेगा, अंतर्राष्ट्रीय मैत्री बढ़ेगी और संसार से ज्ञान लेने और देने के लिए दरवाज़े खुले रहेंगे।

आज भूमंडलीकरण के इस दौर में हिंदी ने विश्व-मैत्री स्थापन करने में अपना शाश्वत पहचान दिखाया है। आज भूमंडलीकरण के कारण ही हिंदी के अंतर्राष्ट्रीय संबंध भी जुड़ गए हैं। सात्त्विक हृदय द्वारा विश्व-मानव हिंदी को आगे बढ़ाएँ एवं हिंदी भाषा भी अपनी भव्यता से आगे बढ़े। जैसे-जैसे वैश्वीकरण बढ़ेगा, हिंदी भी बढ़ेगी। जितना बाज़ारवाद बढ़ेगा—हमारी भाषाएँ उतनी ही आगे बढ़ेंगी।

अंत में, भव्य भारत की राष्ट्रभाषा हिंदी विश्व-भाषा पर अपनी समन्वयात्मक एकता को स्थापित कर सके उसी आशा सहित राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा कही गई पंक्ति से अपनी लेखनी को विराम देना पसंद करूँगी—

गहै भव्य भारत ही, हमारी मातृभूमि हरी भरी।
हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा, और लिपि नागरी॥''

—विल-होर्टिकल्चरल, रिसर्च स्टेशन
कहीकुची फार्म, पी.ओ. ऐंड पी.एस.
अजारा, गुवाहाटी-781017, असम (भारत)

❑

वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिंदी कविता

–डॉ. केदार सिंह

'वैश्वीकरण' अर्थात् 'अंतर्राष्ट्रीयकरण'। वैश्वीकरण एक व्यापक प्रक्रिया का नाम है जो राजनीति, तकनीक, अर्थव्यवस्था, सभ्यता एवं संस्कृति को गतिशील बना देती है। इससे भौतिक संसार की दूरियाँ सिमट जाती हैं और मूल्यों, मान्यताओं एवं विचारों में नई अर्थवत्ता आती है। वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया में स्थान एवं समय की भी दूरियाँ समाप्त हो जाती हैं।

इस प्रकार वैश्वीकरण का सामान्य अर्थ संपूर्ण विश्व को एक गाँव (Global Village) के रूप में देखना है। 'ग्लोबल विलेज' की अवधारणा 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की देन है, जो विभिन्न राष्ट्रों की सत्ता, स्वायत्ता तथा कल्याणकारी कार्यों एवं उदारवादी समाजों, के लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए एक नवीन चुनौती बनकर उभरा है तथा जिसका राष्ट्र विशेष रूप से विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था पर मिश्रित प्रभाव पड़ा है। वैश्वीककरण की प्रक्रिया के कारण राष्ट्र-राज्यों की स्वायत्ता एवं संप्रभुता के विकास के मुद्दों के संदर्भ में सिकुड़ती गई। अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों, विश्व व्यापार संगठन तथा बहुराष्ट्रीय निगमों, पर राष्ट्रीय संगठनों द्वारा लादी गई शर्तों एवं दिशा निर्देशों ने जहाँ एक ओर लोकतांत्रिक मूल्यों को प्रभावित किया, वहीं दूसरी ओर राज्यों की प्रभुता को भी सीमित करने का प्रयास किया। वैज्ञानिक उन्नति, औद्योगिक विकास एवं संचार माध्यमों ने युग की सोच-विचार और विकास के सारे मानदंड बदल दिए। इसने संवेदनशीलता, मानवता, नैतिकता, आदर्श आदि मानव मूल्यों को नए ढंग से पारिभाषित किया। इसने सभी को उपभोक्ता बना दिया।

'वसुधैव कुटुंबकम्' की प्राचीन भारतीय अवधारणा जो पूरे विश्व के लोगों को परिवार के सदस्य के रूप में देखने के लिए प्रेरित करती थी, पर आज हमारे भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक पर्यावरण भी वैश्वीकरण के राग अलापने लगे हैं। वैश्वीकरण की यह आँधी आज भारत में भी उत्तर आधुनिकता एवं उत्तर संरचना के रूप में प्रकट होकर भारतीय जनमानस को जड़ से हिला दे रही है। साहित्य के स्थापित मूल्यों में भी उपभोक्तावाद के दर्शन होने लगे हैं। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि 'उपभोक्तावाद' वैश्वीकरण के सबसे भयंकर परिणामों में से एक है। समकालीन हिंदी कविता भी इससे प्रभावित हुई है—

''क्या जमाना आ गया है
तब हम अपनी जरूरतों के लिए
अपने देशी बाज़ार जाते थे
अब विदेशी बाज़ार
अपनी जरूरत लिये हुए हमारे आँगन
में पैठता जा रहा है।
और हमारे छोटे-छोटे, प्यारे-प्यारे
घरेलू सपनों को
सुख के आतंककारी बड़े-बड़े
भूमंडलीय सपनों में बदल रहा है।''

1. वैश्वीकरण की इस उदारवादी व्यवस्था का दंश हमें झेलना पड़ रहा है। विश्व-व्यवस्था छलने लगी है। व्यक्ति का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। आदमी के सामने जरूरतों का अंबार लगा दिया गया है और उन जरूरतों को पूरा करने के लिए बाज़ार घर-घर की चौखट या आँगन तक पहुँच गया है, जबकि हमारा साहित्य या हमारी कविता हमें जरूरत भर की चीज़ों के साथ जीवन-निर्वाह की

- **जन्म :** 24 अगस्त, 1961, चतरा (झारखंड)
- **पुस्तक :** 'हिंदी नाटक : कल और आज' क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, 2005। कहानी की तलाश, पुस्तक भवन, नई दिल्ली, 2005। एकांकी कुंज, पुस्तक भवन, नई दिल्ली, 2005 आदि।
- **सम्मान :** 'साहित्य भूषण' सम्मान, गचा प्रकाशन, कटनी (म.प्र.)।
- **अपनी रचनाएँ :** लगभग 50 समीक्षात्मक लेख एवं कविताएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में।
- **सदस्य :** 1. लोक गंगा, मासिक, देहरादून, उत्तरांचल, 2. शोध-त्रैमासिक, सम्मलेन, पत्रिका, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 3. हिंदी प्रचारक संस्थान, वाराणसी

प्रेरणा देती आई है—

''साईं इतना दीजिए, जामे कुटुम समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाए।''

2. काव्य-सृजन अनुभवों का प्रतिफलन होता है, और उस अनुभव की पृष्ठभूमि अपने आस-पास के समाज से निर्मित होती है। यह विशुद्ध कल्पना होती है पर इसका आधार यथार्थ होता है। समकालीन हिंदी कविता में यथार्थ की भयावह स्थिति, सामाजिक आत्म संघर्ष के चित्र प्रमोद सिन्हा की इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

''क्या तुम जानते हो?
कि हमारे गाँव रामडिहार का आदमी भी,
धीरे-धीरे अपने चेहरे की चमक खोता जा रहा है
और वह बुनी हुई सभ्यता का अंग बनता जा रहा है।''

3 वैश्वीकरण के इस दुश्चक्र में फँसा हुआ आदमी अपने को कितना दीन-हीन महसूस कर रहा है उदाहरणार्थ द्रष्टव्य है प्रमोद सिन्हा की ही पंक्तियाँ—

''महानगर के किसी चाल में रहनेवाले बेटे को अफसोस है,
कि अभी माँ की आँखों में मोतियाबिंद का पानी उतर आया है,
और माँ दुःखी है कि वह नहीं देख पाती,
कि बारिश से उसकी खपरैल कहाँ-कहाँ से टपक रही है।''

4. भावना के स्तर पर आज का इनसान जिस तरह घुटन भरे माहौल में जी रहा है, उसकी गूँज समकालीन हिंदी कविता में स्पष्ट सुनाई पड़ रही है। अतुलवीर अरोड़ा की कविता 'कितना अँधेरा है' की पंक्तियाँ बरबश हमारा ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं—

''आत्ममुग्ध, अहंग्रस्त
आकाशचारी शून्य
कहाँ गए, कहाँ गए?
ये अर्थहीन साज-सज्जा की चीज़ें
कहाँ-से-कहाँ तक घरों के जुट आईं?
ये कौन-कौन से पुल तुमने कहाँ-कहाँ तोड़े?
ये हिंस्र हो गए, तुम्हारी चेतना के नाखून सारे
हिंस्र हो गए।''

वैश्वीकरण के इस बाज़ार में दुनिया सिमटती जा रही है। कोई भी शहर या देश हमारी पहुँच से बाहर नहीं है। ऐसे में समकालीन हिंदी कविता विचार करती है कि भले ही दो राज्यों, दो देशों के बीच भौगोलिक दूरियाँ कम होती जा रही हैं पर दो दिलों के बीच भावनात्मक फासला बढ़ता जा रहा है। बाज़ार की अपनी एक भाषा होती है, जिसे अपने-अपने उत्पाद को बेचने या खरीदने के लिए प्रयुक्त करता है। बाज़ार में भावनाओं, संवेदनाओं, संबंधों की कोई जरूरत नहीं होती

5. वैश्वीकरण की प्रवृत्तियों के अनुरूप ही सामाजिक आर्थिक परिदृश्य नए दौर से गुजर रहे हैं। इसके अंतर्गत उत्तर आधुनिक लड़ाई के चिह्न दीख रहे हैं, और इस लड़ाई में वर्ल्ड बैंक, डब्ल्यू.टी.ओ., आई.एम.एफ. अपने समस्त वैश्वीकरण और उदारीकरण के अस्त्रों से लैश है। बाज़ार को तीसरे विश्वयुद्ध के रूप में परोसने के लिए पश्चिमी शक्ति संपन्न राष्ट्र प्रयासरत हैं। वैश्वीकरण व्यवस्था की देन बाजारू संस्कृति ने जिस संवेदनहीनता को जन्म दिया है उसकी मिसाल देखें—

''महरूम करके साँवली मिट्टी के लम्स से
खुशरंग पत्थरों में उगाया गया मुझे।''

6. राजेश जोशी, अजामिल, मंगलेश डबराल, भगवान रावत, कुमार अंबुज, नरेश सक्सेना, अतुलवीर अरोड़ा, सुबोध सिंह 'शिवगीत' आदि समकालीन कवियों के द्वारा इन मुद्दों को बार-बार उठाया जाता है। द्रष्टव्य है अजामिल की कविता की ये पंक्तियाँ—

''दूध में धोयी गौरी चिट्टी तेरह की,
बिट्टो को चाहिए खुशी के लिए
इमली रिबन के लिए दो रुपए,
और माधुरी दीक्षित जैसा हरे रंग का काला लाचा।
गुलू खुश है टी.वी. के आए।
खुश है—तेज़ रफ्तार सवारी पर भागते हुए।
खुश है—कपिल, गावस्कर, शास्त्री के साथ क्रिकेट के पिच पर,
खुश है—कोचिंग क्लास में।
उस बेमतलब मुसकरानेवाली लड़की को देखकर।''

7. भारत से सुदूर विभिन्न देशों में निवास करनेवाले प्रवासी हिंदी के अर्चना पेन्यूली, इला प्रसाद, उमेश अग्निहोत्री, गौतम सचदेव, दिव्या माथुर, डॉ. पद्मेश गुप्ता, पूर्णिमा वर्मन, प्राण शर्मा, लावण्या शाह, शैल अग्रवाल, सुधा ओम ढींगरा, सुषमा बेदी, मृदुल कीर्ति, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, नरेश भारतीय, उषाराजे सक्सेना, सत्येंद्र श्रीवास्तव, उमेश अग्निहोत्री, श्रीमती पूनम जुनेजा, गंगाधर सिंह सुखलाल, हेमराज सुंदर आदि कवियों और लेखकों ने भी अपनी-अपनी रचनाओं के माध्यम से

इसी प्रकार के विचार दिए हैं।

वैश्वीकरण के इस बाज़ार में दुनिया सिमटती जा रही है। कोई भी शहर या देश हमारी पहुँच से बाहर नहीं है। ऐसे में समकालीन हिंदी कविता विचार करती है कि भले ही दो राज्यों, दो देशों के बीच भौगोलिक दूरियाँ कम होती जा रही हैं पर दो दिलों के बीच भावनात्मक फासला बढ़ता जा रहा है। बाज़ार की अपनी एक भाषा होती है, जिसे अपने-अपने उत्पाद को बेचने या खरीदने के लिए प्रयुक्त करता है। बाज़ार में भावनाओं, संवेदनाओं, संबंधों की कोई जरूरत नहीं होती—

''कोई हँसी नहीं,
कोई आह्लाद नहीं,
पक चुकी हैं संवेदनाएँ
इन बेसुरे दिनों से
थक चुकी हैं भावनाएँ।''

8. आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में भी क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। शिक्षा में तकनीकी, सूचना तकनीकी, विज्ञान की विविध नई शाखाओं के समावेश से एक नूतन क्रांति उत्पन्न हो गई है। इस स्थिति में शिक्षा का बहुमुखी और चहुँमुखी विकास तो हो ही रहा है, परंतु इस विकास की चकाचौंध में उच्च शिक्षित होकर भी लोग मूल्यों एवं संवेदनाओं के स्तर पर च्युत होते जा रहे हैं। उस संदर्भ में मदनलाल डागा की ये पंक्तियाँ स्मरण में आ रही हैं—

''नौजवानों को बूढ़ा बना देने वाले,
ये विश्वविद्यालय,
जो कभी बुद्धिजीवी बनाते थे अब
स्पंजनुमा डिग्रीजीवी बना रहे हैं,
जो न गल सकते हैं, न फल सकते हैं,
महज पानी उगल सकते हैं।''

9. इसी वैश्वीकरण के कारण आज के विनाशक वैज्ञानिक आविष्कारों एवं राज्य सत्ताओं के बीच संघर्ष में मनुष्य का जीवन असुरक्षित हो गया है। औद्योगिक प्रगति, तकनीकी विकास और संचार क्रांति ने आज एक ओर जहाँ संपूर्ण विश्व को विकास के पथ पर अग्रसर कर दिया है, वहीं अमानवीय खतरे भी बढ़ते जा रहे हैं। वसीम अकरम की 'ताजा खबर' की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

''एक न्यूज चैनल के डिजिटल स्टूडियो में
न्यूज एडिटर, एंकर और
तकनीशियन सब मौजूद।
ताजा खबर···
स्क्रीन पर एंकर की आवाज
देखिए एक सनसनीखेज खबर
क्यों हुआ?
कब हुआ?
कैसे हुआ?
एक नाबालिक लड़की का सामूहिक बलात्कार!
ब्रेकिंग न्यूज···
सिर्फ···इसी चैनल पर।
एक्सक्लुसिव ब्रेकिंग न्यूज
एक छोटे से ब्रेक के बाद···।
डर लगता है, दिल दहल जाता है
यह सोचकर कि कहीं कोई न्यूज चैनल
अपनी टी.आर.पी. बढ़ाने के लिए
स्टूडियो में बलात्कार का लाइव न दिखाने लगे।''

10. इस संदर्भ में मैं निवेदन करना चाहूँगा कि समकालीन हिंदी कविता कुछ समय के लिए भले ही वैश्वीकरण के दुश्चक्र में फँसकर उपभोक्तावादी बन गई है, पर कविता की ऐसी प्रवृत्ति एवं प्रकृति नहीं होती है। कविता हमारी संवेदना का परिष्कार करती है। यह एक साथ मानव-मूल्यों का निर्माण करती है और रक्षा भी। अच्छी कविता अपने पाठकों, श्रोताओं और उससे भी पहले स्वयं कवि को माँजती है। उत्तर आधुनिकता, उत्तर संरचना के बौद्धिक और वैचारिक ऊँचाई पर पहुँची हुई कविता को मानवता की त्राण के लिए, मरी हुई संवेदनाओं को जीवित करने के लिए, इस धरती पर आना ही होगा, क्योंकि कविता हमारी जरूरतों को अपने अंतर्ज्ञान से समझ लेती है, और अपने हज़ार-हज़ार हाथों से हमारी रक्षा करती है।

संदर्भ

1. 'क्या जमाना आ गया' (कभी-कभी इन दिनों) रामदरश मिश्र, इंद्रप्रस्थ इंटरनेशनल प्रकाशन, 2010
2. कबीर ग्रंथावली, डॉ. श्यामसुंदर दास, नागिरी प्रचारिणी सभा
3. 'तुम जानते हो', प्रमोद सिन्हा, वागर्थ—जुलाई-अगस्त 1999, पृ. 42
4. 'तुम जानते हो', प्रमोद सिन्हा, वागर्थ—जुलाई-अगस्त 1999, पृ. 44
5. 'कितना अँधेरा है', संपादक—मोहन सपरा, आस्था प्रकाशन, 1989, पृ. 14
5. 'महरूम करके', जदीदशाइर निश्तर खान, समकालीन

जनमत, वर्ष–25, अंक–2, पृ. 96

6. 'अपनी–अपनी खुशी में है सबकी खुशी', आजमिल, वागर्थ, अंक 52, जुलाई–अगस्त 1999, पृ. 76
7. बाज़ार में स्त्री, वीरेंद्र गोयल, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन–2010, पृ. 40
8. 'नौजवानों को', मदनलाल डागा, एस.बी.पी.डी., न्यूज लेटर पत्रिका वर्ष–1, अंक 11, पृ. 41
9. ताजा खबर, वसीम अकरम, वाक्, अंक–7, वर्ष–2010, पृ. 176

—डॉ. केदार सिंह
सादर ब्लोक रोड, आनंदपुरी
पी.ओ.–सेंट कोलंबस कॉलेज
हज़ारीबाग–825302, झारखंड (भारत)
इ–मेल : kedarsngh137@gmail.com

❑

संसार में सबसे शक्तिशाली मनुष्य वही है, जो सबसे अधिक अकेला खड़ा रहता है।

—इब्सन

अभिमान करना अज्ञानी का लक्षण है।

—सूत्रकृतांग

यह बोध कि तुम अज्ञानी हो, ज्ञान की ओर एक बड़ा पग है।

—डिजरायली

4

वैश्विक हिंदी : एक परिदृश्य

–विजया सती

- दिल्ली विश्वविद्यालय की बी.ए. (ऑनर्स) और एम.ए. हिंदी परीक्षाओं में सर्वश्रेष्ठ छात्रा होने के नाते 'सरस्वती पुरस्कार', 'मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार' और 'प्रोफेसर सावित्री सिन्हा स्मृति स्वर्ण पदक' से पुरस्कृत।
- दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदू कॉलेज में एसोसिएट प्रोफेसर के रूप में कार्यरत।
- वर्तमान में विजिटिंग प्रोफेसर, ऐल्ते विश्वविद्यालय, बुडापेश्त, हंगरी।
- एक सहयोगी कविता-संकलन के अतिरिक्त दो शोध पुस्तकों का प्रकाशन।
- विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आलेख और कविताएँ निरंतर प्रकाशित।

यह सुपरिचित तथ्य है कि भारत से बाहर विश्व के कितने ही देशों में विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी विधिवत रूप से पढ़ाई जा रही है। विभिन्न देशों की पहल और भारत सरकार की विविध योजनाओं के द्वारा उच्च शिक्षा स्तर पर हिंदी शिक्षण संभव हो पा रहा है। भारत सरकार की योजना के तहत भारतीय शिक्षाविद् विभिन्न देशों में निश्चित समयावधि के लिए हिंदी शिक्षण करने आते हैं। भारत जाकर हिंदी के अध्ययन के लिए भारत सरकार द्वारा छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जाती हैं, जिन्हें पाकर विभिन्न देशों से चुने हुए विद्यार्थी नियमित रूप से हिंदी के अध्ययन के लिए भारत के उच्च शिक्षा संस्थानों में जाते हैं। विदेश में भी कुछ संस्थाएँ हिंदी के विद्यार्थियों को पुरस्कृत करती हैं, फलस्वरूप पुरस्कृत विद्यार्थी हिंदी भाषी देश भारत के शैक्षिक और सांस्कृतिक भ्रमण पर जाते हैं। विदेश में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन से जुड़े विभिन्न विश्वविद्यालयों के विविध विभागों द्वारा समय-समय पर हिंदी सम्मेलन और गोष्ठियाँ आयोजित की जाती हैं, जहाँ हिंदी को केंद्र में रखकर बहुआयामी विमर्श होता है और इनकी कार्यवाहियों को स्मारिका के रूप में संयोजित किया जाता है। इन आयोजनों को विदेश मंत्रालय भारत सरकार, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् और भारतीय दूतावासों का सहयोग प्राप्त होता है। विभिन्न देशों में स्थित भारतीय दूतावासों के सहयोग से प्रत्येक वर्ष विश्व हिंदी दिवस मनाया जाता है, इस अवसर पर देश विशेष के हिंदी प्रेमी छात्र-छात्राओं को पुरस्कृत करने की परंपरा भी है। कई दूतावासों के सहयोग से नि:शुल्क हिंदी कक्षाएँ भी संचालित की जाती हैं। आज दुनिया की बहुत बड़ी आबादी हिंदी बोलती है। हिंदी का एक विश्व व्यापी मंच है, विश्व के विभिन्न भागों से हिंदी में साहित्यिक और सूचनापरक पत्रिकाओं और पत्रों का प्रकाशन होता है। मॉरीशस स्थित विश्व हिंदी सचिवालय दो देशों के सहयोग से संचालित एक ऐसी संस्था है जिसकी समस्त गतिविधियाँ हिंदी के अतीत, वर्तमान और भविष्य की स्थिति तथा प्रगति से जुड़ी हैं।

ये समस्त आयोजन विश्वपटल पर हिंदी की उपस्थिति को रेखांकित करते हैं।

अलग-अलग देशों में हिंदी शिक्षण के विभाग भिन्न-भिन्न नामों से पुकारे जाते हैं— यूरोपीय अध्ययन विभाग, प्राच्य विद्या संस्थान, भारत विद्या संस्थान, दक्षिण एशियाई अध्ययन विभाग, एशियाई अध्ययन विभाग, इंस्टीट्यूट ऑफ इंडोलॉजी आदि। इन विभागों में हिंदी के साथ-साथ संस्कृत भी पढ़ाई जाती है, कहीं-कहीं अन्य भारतीय भाषाएँ जैसे तमिल, बँगला आदि भी शामिल की जाती हैं। डिप्लोमा इन इंडोलॉजी के स्थान पर अब कई विश्वविद्यालयों में पूर्णकालिक बी.ए. और एम.ए. इंडोलॉजी की उपाधि प्रदान की जाती है। इस अध्ययन के अंत में छात्र शोध-पत्र भी लिखते हैं। विदेश में स्नातकोत्तर हिंदी शोध की परंपरा भी पर्याप्त विकसित हो चुकी है। स्नातक स्तर पर विद्यार्थी मुख्य और गौण विषय के रूप में हिंदी का चयन करते हैं। विद्यार्थी अन्य विषय के अध्ययन के साथ हिंदी को भाषा अध्ययन के रूप में भी चुन लेते हैं। कुछ विद्यार्थी अनौपचारिक रूप से भी हिंदी

भाषा का ज्ञान अर्जित करते हैं ताकि यह व्यावहारिक रूप से यात्रा आदि में उनके काम आ सके। यह जानना बहुत रोचक है कि भाषा शिक्षण की कक्षा में दो तरह के विद्यार्थी हमेशा होते हैं—कम समय में काम चलाने भर की भाषा सीखनेवाले छात्र और भरपूर सीखना चाहनेवाले छात्र। हिंदी के अध्ययन के बाद छात्र-समूह दूतावासों, सांस्कृतिक केंद्रों, संग्रहालयों, राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों और शिक्षा-संस्थाओं में रोज़गार पाने के अतिरिक्त मुक्त रूप से अनुवादक—दुभाषिया के रूप में कार्य करते हैं या उनके लिए पर्यटन के क्षेत्र में भी अपार संभावनाएँ हैं।

यह निष्कर्ष मुझे मध्य यूरोप के देश हंगरी की राजधानी बुदापैश्त के ओएत्त्वोश लोरांद विश्वविद्यालय के भारोपीय अध्ययन विभाग में हिंदी पढ़ाने के अपने बीस महीने के अनुभव के दौरान प्राप्त हुए। आज मैं यह कहने की स्थिति में हूँ कि विदेशी भाषा के रूप में अपनी मातृभाषा हिंदी को पढ़ाना एक ऐसा तृप्तिदायक आत्मीय अनुभव बन कर मेरे मानस पटल पर उभरा है जो हिंदी भाषियों को हिंदी पढ़ाने से सर्वथा भिन्न है। इस अध्यापन में पारस्परिक संवाद की बहुत बड़ी भूमिका है। दूर देश में हम केवल एक भाषा ही नहीं पढ़ाते, बल्कि उसके साथ-साथ हिंदी भाषी देश भारत का सांस्कृतिक-सामाजिक-आर्थिक-रचनात्मक-राजनीतिक इतिहास भी बताते हैं। उसके भौगोलिक विस्तार का परिचय देते हैं, वहाँ के रीति-रिवाज, खान-पान, पहनावे और मूल्यों मान्यताओं की जानकारी भी देते हैं। इस सबके बीच सर्वाधिक सुखद स्थिति यह होती है कि यह सब किसी निर्धारित पाठ्यक्रम के तहत नहीं होता। आपसी वार्तालाप के बीच विद्यार्थी की जिज्ञासा शांत करते हुए सब कुछ सहज ही जुट जाता है। कभी एक शब्द भर से व्यापक परिदृश्य खुल जाता है। बुदापैश्त में भारोपीय अध्ययन विभाग की हिंदी कक्षा में एक दिन यह रोचक प्रसंग हुआ कि कुछ विद्यार्थी जो कम उपस्थित हो रहे थे, उन्हें संबोधित करते हुए मेरे मुख से निकल गया कि आप तो ईद के चाँद की तरह नजर आते हैं। बस यहीं से बात आगे बढ़ चली चाँद के घटने-बढ़ने और लुप्त हो जाने की प्राकृतिक घटना कैसे घटित होती है, इससे तो वे वाकिफ थे। लेकिन ईद का चाँद मुहावरा उनके लिए एकदम नया था, उन्हें बताया गया कि बहुत दिन बाद जो दोस्त मिले उसे ईद का चाँद कह सकते हो। उन्हें यह प्रसंग रुचिकर लगा तो इस शब्द और उससे बने मुहावरे से होते हुए हम प्रेमचंदजी की कहानी ईदगाह तक चले आए। संक्षेप में कहानी सुनाई गई जिसके अंत तक आते-आते उनकी आँखें असीम उल्लास को व्यक्त कर रही थीं।

हिंदी भाषा जोड़नेवाले सूत्र के रूप में बहुत बड़ा काम कर रही है। उसके माध्यम से दूरियों को पाटा जा सकता है, अनजान से नाता जोड़ा जा सकता है और अपरिचय को परिचय में बदला जा सकता है।

यह छोटा सा उदाहरण बताता है कि एक शब्द के माध्यम से कक्षा में विद्यार्थी ने न केवल हिंदी भाषा बल्कि हिंदी भाषी देश भारत को जाना। इसके साथ ही उनका परिचय विश्व प्रसिद्ध विशिष्ट हिंदी रचनाकार मुंशी प्रेमचंद से भी हुआ। सांस्कृतिक धरातल पर वे ईद के त्योहार में बढ़ते जानेवाले भाईचारे और सांप्रदायिक सद्भाव से परिचित हुए। पारिवारिक जीवन-मूल्य के रूप में उन्होंने स्नेह, अपनत्त्व और संवेदनशीलता को पहचाना। सबसे बढ़कर बाल-मनोविज्ञान की गहरी छवि का भी साक्षात्कार किया। इस क्रम में हिंदी भाषा की शक्ति के साथ उसके विविध प्रयोगों को तो जाना ही, जब ईदगाह से होते हुए हम उससे मिलते-जुलते शब्द चरागाह और उनमें विचरनेवाले पशुओं तक आए। आधुनिक सभ्यता ने मनुष्य को प्रकृति से दूर किया है, शहर कंक्रीट के हो गए हैं तो चरागाह कहाँ बचे? यह महानगर की विडंबना है कि नई पीढ़ी चरागाह के साथ-साथ उसमें पशुओं को लेकर आनेवाले गड़ेरिए को भी नहीं जानती, जबकि हमारे बचपन की कहानियों में अक्सर एक गरीब गड़ेरिया रहता था। तो कहानी के माध्यम से शहरी जीवन के इस बदलाव की प्रक्रिया को भी रेखांकित किया गया और इसमें सबकी रुचि थी, यह अनुभव छात्र और अध्यापक दोनों को समृद्ध कर देनेवाला था।

फिर एक दिन हिंदी कक्षा में लोककथाओं की चर्चा चल निकली। दो देशों की भौगोलिक दूरियाँ बहुत अधिक थीं, किंतु यह समानता आश्चर्यजनक थी कि दोनों ही देशों की लोक कथाएँ राजा और रानी के साथ-साथ प्राय: किसी लकड़हारे की बात भी करती हैं। समानता यह भी पाई गई कि जो लकड़हारा बहुत गरीब था, वह मन का अच्छा होने के कारण अमीर बना और सुख से रहने लगा। और कथा में जो कोई पात्र बुरा था, वह मन का अच्छा न होने के कारण अमीर से गरीब हुआ और उसने दु:ख में दिन काटे। जब बात लकड़ी काटकर जीवन बितानेवाले लकड़हारे की हुई तो फिर ऐसे शब्दों की भी चर्चा हुई जो तरह-तरह के काम करनेवाले कारीगरों के विषय में बताते हैं। हमारी बातचीत में सब आए—कुम्हार और उसका घड़ा, लोहार और उसके द्वारा बनाई गई तलवार, हलवाई और उसकी बनाई मिठाई, बढ़ई की बनाई कुरसी जिस पर हम बैठे थे! तो इस तरह बहुत दिन से भूले हुए इतने सारे कारीगर स्मृति में भी आए और इनके माध्यम से हिंदी भाषा की शब्दावली से उनका परिचय प्रगाढ़ हुआ। भाषा की इस धरोहर और सांस्कृतिक समृद्धि की जानकारी छात्र को भविष्य में सांस्कृतिक दूत की भूमिका निभाने में निश्चित रूप से मदद कर पाएगी।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि हिंदी भाषा जोड़नेवाले सूत्र के रूप में बहुत बड़ा काम कर रही है। उसके माध्यम से दूरियों को पाटा जा सकता है, अनजान से नाता जोड़ा जा सकता है और अपरिचय को परिचय में बदला जा सकता है। उर्दू शायर ने लिखा है कि बात निकलेगी तो दूर तलक जाएगी। मुझे याद आ रहा है कि आज से कई वर्ष पहले हिंदी विभाग, हिंदू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय में कोरिया से किम नाम की छात्रा पढ़ने आई थी। एक साहित्यिक आयोजन में उन्होंने एक आलेख पढ़ा जिसमें एक कोरियन कहानी 'आलू' और प्रेमचंद की 'कफन' कहानी का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया था। दोनों कहानियों में बहुत सी समानताओं का उल्लेख किम ने किया था। जीवन के प्रामाणिक अनुभव देश-काल की सीमा में बंधे नहीं होते। भाषा-साहित्य किस प्रकार सीमाएँ पार कर जाता है, इसका उदाहरण तब मिला जब मैंने हंगरी के प्रसिद्ध कहानीकार मोरित्स जिग्मोंद और कालमान मिक्साथ की कहानियाँ पढ़ीं। मनुष्य के जीवन की विविध परिस्थितियाँ और उनके प्रति हमारी प्रतिक्रियाएँ एक-दूसरे से कितनी मिलती-जुलती होती हैं, भाषा किस तरह सेतु बन जाती है यह बोध फिर से गहरा हुआ। दो दूर देशों के कहानीकारों द्वारा लिखी गई कहानियों में व्यक्त जीवन में बहुत साम्य दिखाई पड़ता है। जैसे भारत में गरीब-किसान-मज़दूर हैं, वैसे ही तो अन्य देशों की कई कहानियों के पात्र भी जूझते हैं—अपनी गरीबी और भूख के साथ। जगत की रीति जैसी भारत में है वैसी ही अन्य देशों की कहानियों में भी पाई जा सकती है। जब मोरित्स जिग्मोंद की कहानी में यह वाक्य आता है—हर साल उनकी पत्नी उनसे धोखा करती रही है और हर साल एक लड़की पैदा करके उनके सामने डालती रही है। इसीलिए अपने आपको उन्होंने शराब में डुबो दिया है, तो लगता है कि जैसे भारतीय मानसिकता का जोड़ यहाँ भी मौजूद है। कठिन समय में अपने आपको शराब में डुबा देनेवाले पात्र हर जगह मौजूद हैं।

साहित्य के माध्यम से पारस्परिकता के तार जोड़ते हुए विद्यार्थी की समझ का विस्तार करना विदेश में हिंदी अध्यापन का लक्ष्य है। हिंदी सीखनेवाले विद्यार्थी को पहले-पहल अगर कुछ साहित्यिक अभिव्यक्तियाँ कठिन भी मालूम होती हैं तो संवाद के बाद उनकी दृष्टि और समझ का विस्तार होता है। फिर से एक उदाहरण दूँ—हमारे विभाग में कहानीकार जैनेंद्र कुमार की एक कहानी 'पत्नी' पढ़ाई जा रही थी, जो अपनी भाषिक सरलता के बावजूद पहले-पहल विद्यार्थी की समझ से परे थी। उसमें कुछ गूढ़ और ठेठ भारतीय संदर्भ थे, किंतु ऐतिहासिक विकासक्रम में जब भारत की विशद् राजनीतिक स्थिति के साथ भारतीय स्त्री की पारिवारिक-सामाजिक परिस्थिति का उल्लेख किया गया तो नए झरोखे खुले, विद्यार्थी की समझ का धरातल बढ़ा। ऐसे में स्त्री-विमर्श जैसे अत्याधुनिक प्रसंग तक पहुँचना संभव हो सका।

जहाँ एक ओर विदेशी भाषा के रूप में हिंदी का अध्यापन एक चुनौती है, वहीं रचनात्मक भी है। यदि पाठ्यक्रम का खुलापन हिंदी के प्रति विद्यार्थी की अभिरुचि को बढ़ाने में समर्थ होगा तो दूसरी ओर हिंदी की उपयोगिता पर आधारित अध्यापन समय की माँग को पूरा करेगा। आज प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साथ विज्ञापन जगत हिंदी को रोज़ नई अभिव्यक्तियों से भर रहा है। ऐसे में हिंदी के विविध रूपों का परिचय देते हुए आरंभ से अब तक हिंदी कैसे बदली, विकसित और संपन्न हुई—इस विषय को स्पष्ट करते हुए विद्यार्थी को आज के हिंदी समाचार-पत्रों और अंतरजाल पर उपलब्ध हिंदी ब्लॉग तथा पत्र-पत्रिकाओं से जोड़ना सार्थक प्रयास होगा। विद्यार्थी को फेसबुक संवाद और ईमेल हिंदी में लिखने को प्रेरित किया जा सकता है। यह आवश्यक है कि सबसे पहले तो हम विद्यार्थी को मानक भाषा का ज्ञान दें, फिर बोलचाल की हिंदी के निकट ले आएँ और अंततः रोज़गार परक हिंदी भी सिखाएँ, जैसे पर्यटन, अनुवाद और रचनात्मक लेखन से जुड़ी हिंदी। इस तरह निश्चित ही विद्यार्थी अधिक लाभान्वित होंगे। इस प्रकार के अध्ययन-अध्यापन से विदेशी भाषा के रूप में हिंदी पढ़ने और पढ़ाने में चुनौती, नयापन और रचनात्मक सक्रियता लगातार बनी रहेगी।

आज प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साथ विज्ञापन जगत हिंदी को रोज़ नई अभिव्यक्तियों से भर रहा है। ऐसे में हिंदी के विविध रूपों का परिचय देते हुए आरंभ से अब तक हिंदी कैसे बदली, विकसित और संपन्न हुई—इस विषय को स्पष्ट करते हुए विद्यार्थी को आज के हिंदी समाचार-पत्रों और अंतरजाल पर उपलब्ध हिंदी ब्लॉग तथा पत्र-पत्रिकाओं से जोड़ना सार्थक प्रयास होगा। विद्यार्थी को फेसबुक संवाद और ईमेल हिंदी में लिखने को प्रेरित किया जा सकता है।

विदेश में हिंदी पढ़ाते हुए हम एक-दूसरे के देश के साहित्य पर कुछ ठोस काम कर सकते हैं। दो देशों के विद्वान मिलकर कुछ विशिष्ट साहित्यकारों और उनके साहित्य का द्विभाषी परिचयात्मक कोश बना सकते हैं, कुछ विशिष्ट कविता-कहानियाँ अनूदित रूप में संकलित कर सकते हैं, जिससे आने वाले विद्यार्थी हमेशा लाभान्वित होंगे। इस अध्ययन से एक ऐसी सामग्री भी एकत्रित हो जाएगी जो आपसी समझ को बढ़ाने के साथ-साथ पाठ्यक्रम का

हिस्सा भी बन सकती है। बुदापैश्त के भारोपीय अध्ययन विभाग में इस प्रकार की गतिविधियाँ निरंतर बनी रहती हैं। विद्यार्थी हिंदी रचनाओं का हंगेरियन भाषा में और हंगेरियन साहित्य का हिंदी में अनुवाद करने के लिए तत्पर बने रहते हैं। यह कार्य पाठ्यक्रम का हिस्सा बनकर भी होता है और स्वतंत्र रूप से भी।

वैश्विक स्तर पर हिंदी के अध्यापन को सामयिकता और उपयोगिता से संलग्न कर रोज़गार से जुड़े विषयों का व्यावहारिक अध्यापन करना भी एक सार्थक पहल हो सकती है। उदाहरण के लिए प्रत्येक देश की पर्यटन गाइड हिंदी में प्रस्तुत की जा सकती है। हिंदी निबंध लेखन की कक्षाएँ विद्यार्थी के भीतर अभिव्यक्ति की ललक जगा सकती हैं। विदेशों में हिंदी-शिक्षण से जुड़े विभाग यदि एक भित्ति पत्रिका या हस्त लिखित पत्रिका की परिकल्पना को साकार कर सकें, तो वह इस मायने में सार्थक होगी कि विद्यार्थी रचनात्मक लेखन की ओर प्रवृत्त होंगे।

दो देशों की भाषाओं के मिलते-जुलते शब्दों की खोज भी विदेश में हिंदी शिक्षण का एक रोचक आयाम हो सकता है। हिंदी शिक्षण से जुड़े अतिथि आचार्य यदि देश—विशेष की भाषा और हिंदी कोश नए सिरे से बनाएँ या पहले से मौजूद कोश को अद्यतन करने में अपना योगदान दें तो यह प्रयास बहुत मूल्यवान सिद्ध होगा। वैश्विक हिंदी के परिदृश्य को सही रूप प्रदान करने के लिए पारस्परिक आदान-प्रदान बहुत जरूरी है। अभी इस दिशा में विदेश में बहुत सा काम होना बाकी है। दूर देशों के हिंदी अध्ययन से जुड़े विभागों को परस्पर जानना चाहिए कि विश्व के किस भाग में हिंदी कक्षाओं में कौन क्या पढ़ा रहा है ? इसके लिए एक देश के विभाग में निर्मित सामग्री को दूसरे देश के साथ बाँटा जा सकता है, विशिष्ट सामग्री के वीडियो लेक्चर साझा किए जा सकते हैं। ऐसे ई-कंटेंट का निर्माण किया जा सकता है, जिसे सभी विद्यार्थी समान रूप से देख पाएँ।

हिंदी विश्व मंच पर अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है। हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की मान्य छह भाषाओं इंग्लिश, फ्रेंच, स्पैनिश, रूसी, चीनी और अरबी के बाद अब सातवीं आधिकारिक भाषा बनाए जाने का आग्रह प्रबल रूप से किया जा रहा है।

संभावनाएँ अनंत हैं, प्रयास जारी हैं, आशान्वित बने रहना हमेशा अच्छा है!

—विजया सती
विजिटिंग प्रोफेसर
ऐल्ते विश्वविद्यालय,
बुदापैश्त, हंगरी
इ-मेल : vijayasatijuly1@gmail.com

❑

कल (विगत) वापस लौटकर हमारा होनेवाला नहीं है, परंतु भविष्य हमारा है, चाहे हम उसे हारें या जीतें।

—लिंडन बी. जॉनसन

दूसरों की नकल न कीजिए, अपने को पहचानिए और जो आप हैं वही बने रहिए।

—डेल कार्नेगी

अनुभव को खरीदने की तुलना में उसे दूसरों से माँग लेना अधिक अच्छा है।

—चार्ल्स कैलब काल्टन

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में हिंदी की स्थिति

–अनिरुद्ध सिंह सेंगर

हिंदी की स्थिति वैश्विक परिप्रेक्ष्य में बेहद सुदृढ़ है। हिंदी अपनी सहजता एवं सरलता के कारण समूचे विश्व में तेज़ी से बढ़ रही है। विश्व में सबसे अधिक बोली और समझी जानेवाली भाषाओं की यदि हम बात करें तो इसमें कोई शक नहीं है कि हिंदी प्रथम स्थान पर है। दूसरे स्थान पर चीनी भाषा है।

जबकि हम संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषाओं की बात करें तो संयुक्त राष्ट्र संघ की छह आधिकारिक भाषाएँ हैं, जिनमें—1. चीनी, 2. स्पेनिश, 3. अंग्रेज़ी, 4. अरबी, 5. रूसी और 6. फ्रांसिसी हैं।

विश्व में चीनी भाषा बोलनेवालों की संख्या दूसरे स्थान पर है। इसके साथ ही चीनी भाषा का प्रयोग क्षेत्र हिंदी की अपेक्षा सीमित है। जबकि हिंदी बोलने वालों की संख्या विश्व में प्रथम स्थान पर है, साथ ही हिंदी बोलनेवालों का व्यापक क्षेत्र है। विश्व के लगभग 93 देशों में हिंदी बोली जा रही है, समझी जा रही है, पढ़ी जा रही है। इसके अतिरिक्त हिंदी के प्रति सर्वेक्षण के दौरान जो षड्यंत्र किया जाता है वह यह कि जब भारत में हिंदी का सर्वेक्षण किया जाता है तो हिंदी की उपभाषाओं को हिंदी से पृथक कर देखते हैं। डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल ने अपने वर्षों के सर्वेक्षण में चौंकानेवाले तथ्य एकत्रित किए हैं। डॉ. नौटियाल के अनुसार हिंदी जाननेवालों की संख्या 1 अरब 10 करोड़ 30 लाख है, जबकि चीनी भाषा जाननेवालों की सिर्फ 1 अरब 6 करोड़। इस तरह हिंदी भाषा विश्व में पहले स्थान पर है।

विश्व के कुछ देश ऐसे हैं जहाँ भारतीय मूल के आप्रवासी नागरिकों की आबादी उस देश की आबादी की 40 प्रतिशत या उससे अधिक है। वहाँ भारतीय मूल के आप्रवासी जीवन के विविध क्षेत्रों में हिंदी का प्रयोग करते हैं। हिंदी एक संपर्क भाषा के रूप में भी प्रयोग की जाती है। इसमें निम्न देश आते हैं—मॉरीशस, फीजी, सूरीनाम, गुयाना, त्रिनिडाड, टोबैगो, पाकिस्तान, बँगलादेश, भूटान, नेपाल आदि।

विश्व के अनेक देश हिंदी को विश्व भाषा के रूप में सीखते हैं, पढ़ते हैं तथा लिखते हैं। इन देशों की शिक्षण संस्थाओं में प्राथमिक से लेकर उच्च स्तर तक हिंदी के पठन–पाठन की व्यवस्था है। विश्वविद्यालयों में हिंदी में शोध कार्य करने, डॉक्टर की उपाधि प्राप्त करने की भी व्यवस्था है। इन देशों में हिंदी का या तो जीवन के विविध क्षेत्रों में प्रयोग होता है अथवा उन देशों में अध्ययन–अध्यापन की सम्यक व्यवस्था है। इनमें अमेरिका, कनाडा, मैक्सिको, क्यूबा, रूस, ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, मॉरीशस, बेल्जियम, हॉलैंड, ऑस्ट्रिया, स्विट्जरलैंड, डेनमार्क, नॉर्वे, स्वीडन, फिनलैंड, इटली, पोलैंड, चेक, हंगरी, रोमानिया, बल्गारिया, युक्रेन, क्रोएशिया, पाकिस्तान, बँगलादेश, श्रीलंका, नेपाल, भूटान, म्यांमार, चीन, जापान, दक्षिण कोरिया, मंगोलिया, उजबेकिस्तान, ताजाकिस्तान, तुर्की, थाइलैंड, ऑस्ट्रेलिया, अफगानिस्तान, अर्जेंटीना, अल्जेरिया, इक्वेडोर, इंडोनेशिया, इराक, ईरान, युगांडा, ओमान, कजाकिस्तान, कतर, कुवैत, केन्या, आइवरी कोस्ट, ग्वाटेमाला, जमाइका, जांबिया, तांजानिया, नाइजीरिया, न्यूजीलैंड, पनामा, पुर्तगाल, पेरु, पैरागुए,

- **जन्म :** 03 अक्तूबर, 1961।
- **जन्म स्थान :** लिड़ऊपुर (जगम्मनपुर), जालौन (उ.प्र.)
- **शिक्षा :** बी.एस.सी., डिप्लोमा ऑफ ऑफ्थेल्मिक असिस्टेंड
- **विधा :** कविता, लेख, उपन्यास, संपादन।

प्रकाशित कृतियाँ : आकाश के मिती (कविता संग्रह), औरत के हक में (कविता संग्रह), अनिरुद्ध सेंगर—प्रतिनिधि रचनाएँ (काव्य संग्रह)

- **प्रसारण :** आकाशवाणी केंद्र गुना से कविता व वार्ता का प्रसारण।
- **संप्रति :** स्वास्थ्य विभाग गुना में नेत्र-चिकित्सा सहायक पद पर पदस्थ।
- **संपादक :** साहित्य क्रांति (मासिक पत्रिका) नेत्र-ज्योति (त्रै-मासिक पत्रिका) कई बार सम्मानित व पुरस्कृत।

फिलीपींस, ब्राजील, मलेशिया, सऊदी अरब, सिंगापुर, सूडान, सेशेल्स, स्पेन, हांगकांग आदि आते हैं।

अमेरिका में दो करोड़ से अधिक भारतीय मूल के लोग रह रहे हैं। वहाँ के हार्वर्ड, पेन, मिशिगन, येल आदि विश्वविद्यालयों में हिंदी का शिक्षण हो रहा है। अमेरिका के लगभग 75 विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। हिंदी का अध्ययन करनेवाले छात्रों की संख्या पंद्रह सौ से अधिक है। अमेरिका में हिंदी के लिए कई संस्थाएँ कार्य कर रही हैं। जिनमें अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति, हिंदी न्यास आदि प्रमुख हैं। इतना ही नहीं वहाँ कई हिंदी पत्रिकाएँ जिनमें *विश्व, सौरभ, हिंदी जगत, क्षितिज, विश्व विवेक, बाल भारती, हिंदी चेतना* आदि का नाम प्रमुख है, प्रकाशित हो रही हैं। अमेरिका में हिंदी लेखकों एवं कवियों की एक बहुत बड़ी संख्या है जिसमें कुछ नाम उल्लेखनीय हैं— सर्वश्री गुलाब खंडेलवाल, वेद प्रकाश वटुक, इंदुकात शुक्ल, शालिग्राम शुक्ल, सुषम बेदी, उषा प्रियंवदा, रामेश्वर अशांत, उमेश अग्निहोत्री, अंजना संधीर, सुधा ओम ढींगरा, धनंजय कुमार, मधु माहेश्वरी, अमरेंद्र मिश्र, सुरेश राय, कुसुम सिन्हा, राकेश खंडेलवाल, मंजू तिवारी, सीमा खुराना, कल्पना चिटणीस, रेणु राजवंशी गुप्ता आदि।

जापान का भारत से आध्यात्मिक जुड़ाव है। अपने धर्म के संस्थापक भगवान बुद्ध की पावन मात्रभूमि होने के कारण भारत के प्रति जापानियों में श्रद्धा है। साथ ही हिंदी लेखकों का साहित्य पढ़ने की उनमें एक उत्कंठा है। यही कारण है कि हिंदी साहित्यकारों की रचनाओं का अनुवाद न केवल जापानी में किया जा रहा है अपितु हिंदी भाषा पढ़ने, हिंदी में शोध करने जैसे कार्य बखूबी बढ़ रहे हैं। जापान में लगभग साढ़े आठ सौ कॉलेजों में हिंदी पढ़ाई जाती है, हज़ारों की संख्या में छात्र हिंदी पढ़ रहे हैं। जापान में सरदार पूर्ण सिंह, प्रेमचंद, अज्ञेय की रचनाएँ पढ़कर प्रेरणा ले रहे हैं। वहाँ के हिंदी विद्वान भारत में इतने ज्यादा रमे हुए हैं कि बहुत सी चीज़ों के बारे में भारतीयों से ज्यादा जानते हैं। इनमें प्रो. तोजियो तनाका का नाम प्रमुख है। तनाका तोम्मो गाइकोकु दाइकोकु में हिंदी विभागाध्यक्ष हैं। वे हिंदी शिक्षण के लिए जापानी माध्यम से पाठ्य-पुस्तकें तैयार करने के अलावा हिंदी साहित्य और संस्कृति उसके अतीत और वर्तमान से निरंतर जुड़े हैं। जापानियों को हिंदी भाषा पढ़ाने, हिंदी में शोध कराने के अलावा हिंदी रचनाकारों पर हिंदी और जापानी में लेखन उनकी रचनाओं का जापानी में अनुवाद करके वे हिंदी की सेवा कर रहे हैं। हाकुसुइशा (हिंदी प्रवेश), इंदो नो शूक्या तो गेइजित्सु (भारत के धर्म और कथाएँ) जैसी पुस्तकों के अतिरिक्त अज्ञेय, नरेंद्र शर्मा, हरिशंकर परसाई, भीष्म साहनी, मोहन राकेश, इलाचंद्र जोशी, राहुल सांकृत्यायन, राही मासूम रजा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पांडेय बेचन शर्मा, यशपाल, अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा पर अनेक जापानी विद्वान काम कर रहे हैं। विद्वानों में प्रो. तोमियो मिजोकामी, प्रो. अकीरा ताकाहाशी, प्रो. फुजिई, प्रो. योशिफुमी मिजनु, हिदेआकी इशिदा के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

इंग्लैंड के कैंब्रिज, ऑक्सफोर्ड, लंदन, यार्क विश्वविद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई काफी समय से होती आ रही है। इंग्लैंड, वेल्स और स्कॉटलैंड में 2004-05 के स्कूल सर्वे में बच्चों की भारी संख्या (180,764,711) ने अपने आपको हिंदी भाषी बताया था। इसके अतिरिक्त साहित्यिक क्षेत्र में हिंदी के लिए कई संस्थाएँ सक्रिय हैं, जिनमें भारतीय भाषा संगम, गीतांजलि, बहुभाषिक साहित्यिक समुदाय, यू.के.हिंदी समिति, हिंदी भाषा समिति, चौपाल, कृति यू.के., कृति इंटरनेशनल, कथा यू.के. प्रमुख हैं। इसके साथ ही वहाँ हिंदी के साहित्य के क्षेत्र में कविताओं और कहानियों की पुस्तकों का प्रकाशन बहुत तेज़ी से बढ़ा है।

कनाडा में भी हिंदी का प्रचलन बोलचाल, शैक्षणिक तथा साहित्यिक भाषा के रूप में बढ़ा है। आज ढेरों हिंदी पत्रिकाएँ नगरों, महानगरों में उपलब्ध हैं। हिंदी के विकास के लिए ढेरों संस्थाएँ कार्यरत हैं। साप्ताहिक पत्रों में हिंदी टाइम्स, हिंदी एब्राड; हिंदी पत्रिकाओं में विश्वभारती, नमस्ते कनाडा, हिंदी चेतना, वसुधा आदि प्रमुख हैं। कनाडा में प्रमुख रूप से जाने माने कवि हैं— सर्वश्री प्रो. हरिशंकर आदेश, श्याम त्रिपाठी, सुरेंद्र पाल, रत्नाकर नराले, संदीप त्यागी, राकेश तिवारी, भगवत शरण श्रीवास्तव, भारतेंदु श्रीवास्तव, ब्रजराज कश्यप, अरविंद नराले, शिवनंदन सिंह यादव, विजय विक्रांत, स्नेह सिंघवी, स्नेह ठाकुर, शैलजा सक्सेना, भुवनेश्वरी पांडेय, सुशीला गुप्ता, आशा बर्मन, सरोज भटनागर, प्रमिला भार्गव आदि। कनाडा में भारतीय कौंसलावास, पनोरमा, हिंदी प्रचारिणी सभा, कनेडियन कौंसिल ऑफ हिंदूज़, हिंदी साहित्य सभा आदि द्वारा समय-समय पर कवि सम्मेलनों, कवि गोष्ठियों का आयोजन किया जाता है।

मॉरीशस में हिंदी को सर्वाधिक गरिमा प्राप्त है। मॉरीशस विश्व का एक मात्र ऐसा देश है जहाँ की संसद ने हिंदी के वैश्विक प्रचार के लिए और उसे संयुक्त राष्ट्र संघ की अधिकृत भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना की। 12 लाख की आबादीवाले इस द्वीप में पाँच लाख हिंदी भाषी हैं। मॉरीशस में प्राथमिक पाठशाला से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक हिंदी पढ़ाई जाती है। रेडियो और टेलीविजन पर दिन-रात हिंदी में कार्यक्रम चलते रहते हैं। देश की सभी 254 प्राथमिक पाठशालाओं में हिंदी पढ़ाई जाती है। 585 अध्यापक हिंदी की सेवा में लगे हैं। 48842 छात्र हिंदी सीख रहे हैं। माध्यमिक स्तर पर देश के सभी 64 माध्यमिक विद्यालयों में हिंदी की शिक्षा जारी है। गैर-

सरकारी विद्यालयों एवं विश्वविद्यालय स्तर पर भी हिंदी शिक्षा का विकास हो रहा है।

मॉरीशस में अनेक छोटी-बड़ी संस्थाएँ हिंदी की ज्योति को प्रखर करने में संलग्न हैं। इनमें आर्य सभा, आर्य रविवेद प्रचारिणी सभा, हिंदी प्रचारिणी सभा आदि की भूमिका प्रमुख है। आर्य सभा पूरे देश में लगभग 200 प्राथमिक एवं माध्यमिक पाठशालाओं का संचालन करती है। जिसमें 400 अध्यापक 18 हज़ार विद्यार्थियों को हिंदी शिक्षण दे रहे हैं।

मॉरीशस में पुरानी पीढ़ी के कवि रूप में पं.लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी, सोमदत्त बखोरी, ब्रजेंद्र भगत मधुकर, ज्ञानेश्वर रघुवीर, गिरजानन रंगु, जगलाल रामा, दानीश्वर शाम, ठाकुर प्रसाद मिश्र, ठाकुर दत्त पांडेय, मधु विष्णुदत्त चंद्र, कृष्णलाल बिहारी, हरिनारायण सीता, मुनीश्वरलाल चिंतामणि, पूजानंद नेमा आदि नाम उल्लेखनीय हैं। आज के कवियों में राज हीरामन, हेमराज सुंदर, बृजलाल मोहन, जय जीऊत, मुकेश जीबोध और महिलाओं में राजवंती अयोध्या, सुमति बुधन, केशली रागपोत, चंपावती बम्मा, जयवंती रंगू, कल्पना लालजी आदि नाम प्रमुख हैं।

कथाकार के रूप में अभिमन्यु अनत ने अपनी पृथक पहचान बनाई है। उन्होंने उपन्यास के क्षेत्र में भी काफी नाम कमाया है। वहीं कहानीकार में पं.जयप्रकाश शर्मा, सूर्यप्रसाद मंगर भगत, जयनारायण राय, मुनीश्वरलाल चिंतामणी, भानुमति नागदान, दीपचंद बिहारी, रामदेव धुरंधर, पूजानंद नेमा, इंद्रदेव भोला, बीरसेन जगासिंह, सत्यवती जगमोहन, पुष्पा बम्मा, मोहन लाल बृजमोहन, लोचन विदेशी, सोनालाल नेमधारी, बृजलाल रामदीन करुण, सुनीति अलियार, केशवदत्त चिंतामणी, जय जीऊत, दामोदर सोमोरी, जनार्दन कालीचरण, कृष्णलाल बिहारी, दानीश्वर शाम, राज हीरामन आदि के नाम प्रमुख हैं। मॉरीशस में हिंदी लेखन विविधतापूर्ण और सक्षम है तथा हिंदी भाषा का विकास अन्य देशों की तुलना में यहाँ अधिक व्यवस्थित तरीके से हो रहा है।

इटली में वेनिस, टूरिन, रोम, ओरिएंटल, मिलान विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाई जा रही है। जहाँ लगभग डेढ़ सौ विद्यार्थी बने रहते हैं।

नीदरलैंड्स में लगभग सवा दो लाख भारतवंशी हैं। यहाँ हिंदी परिषद, हिंदी प्रचार संस्था, लायडन विश्वविद्यालय, हिंदू स्कूल संस्थाएँ, हिंदू ब्राडकास्टिंग कॉरपोरेशन, डच हिंदी समिति, एस.एल.एस. गोपिया इंटरनेशनल, सनातन एवं आर्यसमाजी संस्थाएँ कार्यरत हैं। यहाँ के चार विश्वविद्यालयों (लायडन, एम्सटरडम, यूटरेक्ट, खोनिंगन) में हिंदी पनपी है। हिंदी प्रचार-प्रसार में रेडियो और टी.वी. स्टेशनों पर हिंदी कार्यक्रम आते रहते हैं। यहाँ हिंदू ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन ओह्म है जिसके अंतर्गत ओह्म वाणी पत्रिका और ओह्म नेटवर्क है। ओह्म डच सरकार का मीडिया है। हिंदू शिक्षण संस्था जिसके चार स्कूल द हेग, रोटरडम, एम्सटरडम और यूटरेक्ट में हैं जहाँ हिंदी नियमित रूप से पढ़ाई जाती है।

कोरिया के दो विश्वविद्यालयों में हिंदी के विभाग हैं, एक राजधानी सियोल के हांकुक विश्वविद्यालय में दूसरा बुशान के विश्वविद्यालय में। हांकुक विश्वविद्यालय की एक शाखा राजधानी से पचास किलोमीटर दूर पोंगाइन में है, वहाँ भी हिंदी पढ़ाई जाती है। चार वर्षों का पाठ्यक्रम है, कुल मिलाकर पाँच-छह सौ छात्र हिंदी पढ़ते हैं।

सूरीनाम में छह आकाशवाणी और चार दूरदर्शन केंद्र हैं जहाँ संगीत, धार्मिक प्रचार, चर्चा, साक्षात्कार, सूचनाएँ, विज्ञापन और समाचार हिंदी में दिए जाते हैं। सूरीनाम में हिंदी अवधी, मगही,भोजपुरी, मैथिली के मिश्रण से तैयार हुई है अत: इसे सरनामी हिंदी कहा गया है। सूरीनामी हिंदुस्तानी हिंदी भाषा बोलते हैं और हिंदुस्तानी संस्कृति में जीते हैं।

पोलैंड में हिंदी भाषा और साहित्य वारसा, क्राकूब और पोजनान के विश्वविद्यालय में पढ़ाई जाती है। वहाँ के विश्वविद्यालय में हिंदी अध्यापन के लिए पाठ्य सामग्री उपलब्ध है। प्रो. शायेर, डॉ. रुकोव्स्का, प्रो. एम.के. ब्रिस्की, युत्युष पार्नोव्स्की, आजेय बुगोव्स्की, श्रीमती आलित्स्या कार्लिकोव्स्का, डॉ.आग्न्येष्का कोवातस्का सोनी, प्रो.दानूता स्ताशिक, प्रो. तादेउष पोबोजन्याक, श्रीमती अन्ना श्क्लूत्स्का, दायुर्ष गौशेर, डॉ. आग्नेष्का आदि ने हिंदी की विविध रचनाओं का अनुवाद किया है। हिंदी लेखकों में प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, फणीश्वरनाथ रेणु, जैनेंद्र, अज्ञेय, मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, इलाचंद जोशी, उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना आदि रचनाकारों की रचनाएँ अनुवाद के माध्यम से पोलिश भाषा में उपलब्ध हैं। इसके साथ ही कबीर, तुलसी जैसे कवि भी शामिल हैं।

रूस का भारत से मैत्री संबंध काफी पुराना है। दोनों देशों के मध्य पारस्परिक सांस्कृतिक आदान-प्रदान होता रहा है। रूस में प्रारंभ से ही लोग हिंदी में रुचि लेते रहे हैं। वहाँ प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक हिंदी का पठन-पाठन होता है। मास्को अंतर्राष्ट्रीय संबंध संस्थान, मास्को विश्वविद्यालय, रूसी मानविकी विश्वविद्यालय, सेंट पीटर्सबर्ग विश्वविद्यालय सहित लगभग दो दर्जन संस्थानों में डेढ़ हज़ार से अधिक रूसी छात्र हिंदी का अध्ययन कर रहे हैं। जवाहरलाल नेहरू सांस्कृतिक केंद्र मास्को की भी हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। रूस के कजान, करेलिया, तारूस, बोशकोर्तोस्तान, चुवाशिया, ब्लादिववस्तोक में स्थित भारतीय सांस्कृतिक केंद्रों में भी हिंदी का अध्यापन होता है। रूस से हर वर्ष लगभग आधा दर्जन छात्र हिंदी अध्ययन हेतु भारत आते हैं। समकालीन रुसी हिंदी विद्वानों में प्रो. ल्युदमिला

खखलोवा, डॉ. इंदिरा गजियेवा, प्रो. सेर्गेय सेरिब्रियानी, डॉ. अलेक्सांद्र सिगोर्सकी, डॉ. ग्युजेल स्त्रेलकोवा, डॉ. तत्याना दुब्यान्स्काया, अनन्त सीथा गूरिया के नाम उल्लेखनीय हैं। वर्तमान में हिंदी के अध्ययन में रूसी लोगों की रुचि निरंतर बढ़ रही है।

बल्गारिया में भारत विद्या के प्रति काफी अभिरुचि है। वहाँ हिंदी और संस्कृत में अध्ययन केंद्र खोले गए, सोफिया विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा के अध्यापन के लिए पूरी व्यवस्था है। वहाँ प्रो. एमिल बोएव, प्रो. तात्याना इफ्तीमोवा, श्रीमती वान्या गोचेवा, डॉ. वाल्या मैरीनोना, डॉ. मिलेना ब्रातोएवा, डॉ. रूसेवा सुकोलोवा हिंदी अध्यापन के प्रति पूरी तरह समर्पित हैं। इसके साथ ही डॉ. विमलेश कांति वर्मा, डॉ. रामकृष्ण कौशिक, डॉ. महेंद्र, डॉ. कर्णसिंह चौहान ने शिक्षण क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

फीजी में हिंदी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के उद्भव एवं विकास में पं.तोताराम सनाढ्य, पं.रामचंद्र शर्मा का उल्लेखनीय योगदान रहा। फीजी का श्रमिक समाज जो टूटी-फूटी हिंदी जानता था अपने साथ रामायण सुखसागर, श्रीमद्भगवद्गीता, श्री ब्रजविलास, देवपूजा एवं आल्हा खंड आदि पुस्तकें भी ले गया। छुरी, कुदाली,सब्बल से फीजी के जंगल को फतह करने वाले कोलोनियल शुगर रिफाइनिंग कंपनी के ये श्रमिक भजन कीर्तन, सत्यनारायण की कथा, आरती जैसी भारतीय परंपराओं को जीवित बनाए रहे। रामायण ने फीजी में हिंदी के प्रचार को बढ़ावा दिया। इन श्रमिकों के साथ भारतीय त्योहार रामनवमी, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, दशहरा, होलिका दहन भी धूमधाम से मनाए जाते हैं। फीजी पर भारतवर्ष का प्रभाव है तभी तो वहाँ अनेक पेड़-पौधों के वे ही नाम हैं जो भारत में हैं— तुलसी, चंदन, आम, नींबू, इमली, बेल, सिरसा, अमरूद तथा शाक सब्जियों के भी वही भारतीय हिंदी नाम हैं। फीजी के बाज़ारों, गली-कूचों में हिंदी स्वतंत्र रूप से बह रही है।

फिनलैंड के हेलसिंकी, स्वीडन, के स्टॉकहोम विश्वविद्यालय, डेनमार्क के कोपनहैगन विश्वविद्यालय में हिंदी पठन-पाठन की समुचित व्यवस्था है। नॉर्वे में हिंदी की स्थिति दिन-प्रतिदिन सुदृढ़ हो रही है। 46 लाख की आबादीवाले इस देश में 7 हज़ार भारतीय हैं। नॉर्वे में प्राथमिक पाठशालाओं से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक हिंदी पढ़ाई जाती है। नॉर्वे के ओस्लो विश्वविद्यालय में प्रो. जोलर फिन थीसन हिंदी विभाग में प्राध्यापक हैं। डॉ. मीना ग्रोवर, डॉ. उषा जैन माध्यमिक उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों को हिंदी पढ़ाने में सक्रिय हैं। स्व. पूर्णिमा चावला जो स्वयं कविता व कहानियाँ लिखती थीं, ने 15 वर्षों तक ओस्लो के स्कूलों में हिंदी पढ़ाने का कार्य किया। वहाँ परिचय, पहचान, त्रिवेणी, अल्फा, ओमेगा, आप्रवासी टाइम्स, सनातन मंच आदि पत्रिकाओं का प्रकाशन भी हुआ। 1990 से नॉर्वे में हिंदी पत्रिका शांतिदूत प्रकाशित की जा रही है। इसके अतिरिक्त भारतीय हिंदी चैनल जी.टी.वी., सोनी टीवी, जी.सिनेमा, बी.फॉर.यू., मूवी, एम टीवी आदि काफी लोकप्रिय हैं। 10 अप्रैल, 2007 से स्कैंडेनेवियन भारत साहित्य एवं संस्कृति मंच के प्रयासों से दूरदर्शन इंडिया का प्रसारण यूरोपीय देशों के साथ-साथ विश्व के 146 देशों के लिए शुरू हुआ है। नॉर्वे में हिंदी साहित्य के विकास में आप्रवासी लेखकों का विशेष योगदान रहा जिनमें पूर्णिमा चावला, हरचरण चावला, अमित जोशी, मीना ग्रोवर, शिखा चंद्रा, रश्मि क्षत्री, सुरेश चंद्र शुक्ल, इंद्रजीत पॉल, उषा जैन आदि प्रमुख हैं।

भूमंडलीकरण के इस दौर में टीवी, हिंदी फिल्में, दूरदर्शन के विभिन्न चैनलों ने हिंदी के प्रचार-प्रसार में अपनी भूमिका का निर्वाह किया है। हिंदी की लोकप्रियता देखते हुए तमाम विदेशी चैनलों ने अपने कार्यक्रम हिंदी में प्रसारित करना प्रारंभ कर दिया है जैसे डिस्कवरी, नेशनल जिओग्राफी आदि। इसके अतिरिक्त कई विदेशी फिल्में और धारावाहिक भी हिंदी में आ रहे हैं।

चीन का भारत से बहुत पुराना संबंध रहा है। चीनी यात्री फाह्यान, ह्वेनसांग जैसे विद्वानों ने चीनी संस्कृति तथा समाज से भारत को परिचित कराने में अहम भूमिका निभाई, उसी तरह भारतीय जीवन पद्धति, दर्शन तथा बौद्धमत को चीन में जीवन का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा बनाने में अपना जीवन खपा दिया। चीन के पेइचिंग विश्वविद्यालय, नानचिड़ विश्वविद्यालय आदि में हिंदी के पठन-पाठन की व्यवस्था है। प्रो. ची. श्येन द्वारा स्थापित भारत विद्या विभाग चीन का महत्त्वपूर्ण संस्थान है, जहाँ छात्रों को हिंदी एवं संस्कृत भाषा तथा साहित्य का गहराई के साथ अध्ययन कराया जाता है। प्रो. ची. श्येन ने वाल्मीकि रामायण का, प्रो. चिनहान ने रामचरित मानस का चीनी में अनुवाद किया है। इसके अलावा प्रेमचंद का गोदान, श्रीलाल शुक्ल का राग दरबारी, जयशंकर प्रसाद और कृश्नचंदर की रचनाओं का भी चीनी भाषा में अनुवाद हो चुका है। हाल ही के वर्षों में चीन में हिंदी के प्रति तेज़ी से रुझान बढ़ा है, इसके पीछे आर्थिक उदारीकरण एवं भूमंडलीकरण का प्रभाव है।

नेपाल का भारत से क्या रिश्ता है यह बताने की आवश्यकता नहीं है। भारत और नेपाल के बीच सांस्कृतिक, सामाजिक संबंध काफी पुराना है। नेपाल के दक्षिण की ओर का क्षेत्र प्रमुखत: हिंदी भाषी ही है, कारण यह क्षेत्र भारत के पूर्णत: हिंदी भाषी राज्यों से

जुड़ा है। भारत के इस भू–भाग से नेपाल का रोटी–बेटी का संबंध है। नेपाल में हिंदी का विकास भारत में विकास की तरह ही आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल जैसा ही है।

नेपाल में प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं में तरंग, जय नेपाल, संगम, आदर्श वाणी, किसान, बुलेटिन कोकिला, नव जागरण अनुराधा आदि हैं। साप्ताहिक पत्रों में लोकमत, इनकलाब; त्रैमासिक पत्रिकाओं में हिमालिनी प्रमुख है। इसके अतिरिक्त नेपाल में कई हिंदी संस्थाएँ कार्यरत हैं जिनमें जनकपुर बौद्धिक समाज प्रमुख है। नेपाल में हिंदी का पठन–पाठन प्राथमिक पाठशाला से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक हो रहा है।

यह सच है कि हिंदी विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र की भाषा है। यह भी सच है कि हिंदी बोलनेवाले विश्व की सबसे बड़ी भाषाओं में गिने जाते हैं। यहाँ तक कि प्रवासी भारतीयों की सांस्कृतिक भाषा भी हिंदी है। कहने का आशय भी यही है कि एक तरफ हिंदी ने अपना वर्चस्व अमेरिका, यूरोप, अफ्रीका, एशिया, ऑस्ट्रेलिया महाद्वीपों के तिरानबे देशों में फैला रखा है।

भूमंडलीकरण के इस दौर में टीवी, हिंदी फिल्में, दूरदर्शन के विभिन्न चैनलों ने हिंदी के प्रचार–प्रसार में अपनी भूमिका का निर्वाह किया है। हिंदी की लोकप्रियता देखते हुए तमाम विदेशी चैनलों ने अपने कार्यक्रम हिंदी में प्रसारित करना प्रारंभ कर दिया है जैसे डिस्कवरी, नेशनल जिओग्राफी आदि। इसके अतिरिक्त कई विदेशी फिल्में और धारावाहिक भी हिंदी में आ रहे हैं। परंतु हमारे यहाँ की सरकारों का रवैया हिंदी के प्रति ढुलमुल ही रहा। यह चिंतनीय है।

आशा की जानी चाहिए कि न केवल केंद्रीय शासन अपितु सभी राज्य सरकारें भी हिंदी के प्रचार–प्रसार में अपनी विशिष्ट भूमिका का निर्वाहन करेंगी। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हिंदी अपने बलबूते पर समूचे विश्व में बढ़ रही है। यह शुभसूचना है हिंदी के लिए।

—भार्गव कॉलोनी
गूना–473001, म.प्र. (भारत)
इ–मेल : aniruddhsengar03@gmail.com

❑

नारी का आभूषण शील और लज्जा है। बाह्य आभूषण उसकी शोभा नहीं बढ़ा सकते।

— बृहत्कल्पभाष्य

विद्वत्ता, चतुराई और बुद्धिमानी की बात यही है कि मनुष्य अपनी आय से कम व्यय करे।

— अज्ञात

आवश्यकता आविष्कार की जननी है।

— एक लोकोक्ति

6

विश्व की हिंदी पत्रकारिता और पत्रिकाएँ

–डॉ. कामता कमलेश

- **जन्म :** 10 जनवरी, 1939, कुड़वा, अमेठी, सुलतानपुर, उ.प्र में।
- **शिक्षा एवं उपाधि :** एम.ए.(हिंदी) प्रथम श्रेणी, पी-एच.डी., साहित्यरत्न, आचार्य, विद्या-वाचस्पति (मानद), विद्यासागर (डी.लिट्)
- **वर्तमान पद :** अध्यक्ष, रीडर एवं शोध-निर्देशक, हिंदी विभाग जे.एस.हिंदू कॉलेज, अमरोहा, उ.प्र में।
- **प्रकाशन :** व्याकरण—व्यावहारिक हिंदी : प्रयोग एवं विधि, उपन्यास—'नादान बहुत रोया', 'उसका नाम विनय था'; 'इंद्र धनुष', 'पेट की आग' (कहानी)। इसके अतिरिक्त निबंध एवं गद्य तथा अनुवाद में भी इनका योगदान है।

आज राष्ट्रसंघ में हिंदी की मान्यता को लेकर जो प्रयास हो रहा है यदि उसमें हिंदी की वैश्विक पत्रकारिता के योगदान को ले लिया जाए तो उसके समर्थन में उपयोगी तत्त्व स्वत: ही मिल सकते हैं। सदियों से हिंदी विश्व के अनेक देशों में अपने अस्तित्व एवं महत्त्व का पताका फहरा रही है, क्योंकि कई राष्ट्रों से हिंदी में प्रकाशित पत्रिकाएँ इसके ज्वलंत दस्तावेज हैं। यदि इनकी विषयवस्तु, भाषा-शैली, संपादन कला को गंभीरता से परखा और अध्ययन किया जाए तो हिंदी की वैश्विक शक्ति का ज्ञान हो सकता है। उस काल में आधुनिक साधन और मुद्रण सुविधाएँ नहीं थीं फिर भी हिंदी भक्तों और सेवकों ने हिंदी पत्रकारिता के माध्यम से उसके उज्ज्वल भविष्य का संकेत दे दिया था। उसका अदम्य साहस और हिंदी की उपयोगिता की पहचान बनाए रखने में इन पत्रिकाओं ने आधार-शिलावत कार्य किया। इसमें दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, चौमाही, अर्द्धवार्षिक, वार्षिक, मुख पत्र, वार्षिक बुलेटिन, अवसरानुकूल विशेषांक, अभिनंदन ग्रंथ, समारोह पत्रिका, धार्मिक विशेषांक आदि समय-समय पर हिंदी में प्रकाशित होते रहते हैं। इस लेख में विश्व की पत्रिकाओं का प्रामाणिक ऐतिहासिक, साहित्यिक चित्रण प्रस्तुत किया जा रहा है—

इंग्लैंड—

इंग्लैंड विश्व का पहला राष्ट्र है जहाँ से सर्वप्रथम सन् 1883 में कालाकांकर (प्रतापगढ़) उ.प्र. के नरेश राजा रामपाल सिंह ने 'हिंदोस्थान' त्रैमासिक पत्रिका का संपादन और प्रकाशन किया। यह हिंदी, उर्दू और अंग्रेज़ी में निकला था। इसके बाद लंदन से ही 'वैदिक पब्लिकेशंस', आर्यसमाज का मुख-पत्र प्रकाशित हुआ। सन् 1964 में हिंदी प्रचार परिषद्, लंदन के तत्त्वावधान में प्रवासिनी त्रैमासिक पत्र का प्रकाशन हुआ। इसके संस्थापक-संपादक स्व. धर्मेंद्र गौतम थे। इसके कई महत्त्वपूर्ण विशेषांक स्तरीय सामग्री से परिपूर्ण थे। लेखक का धर्मेंद्र गौतम से निकट का साहित्यिक संबंध था। सन् 1975 में 'नवीन वीकली' नाम से एक पत्र निकला। 23 मार्च, 1971 को श्री जे.एस. कौशल के संपादन में 'अमरदीप' साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हुआ।

यू.के. हिंदी समिति की ओर से 'हिंदी' त्रैमासिक पत्र का प्रकाशन जुलाई 1990 में निकला। इसके संस्थापक-संपादक श्री प्रेमचंद्र सूद थे। सन् 1967 में ज्योति प्रिंटर्स से हिंदी-गुजरात मासिक पत्र 'सर्जन' प्रकशित हुआ। इसके बाद अंग्रेज़ी और हिंदी में आर्य संदेश मासिक पत्र भी निकला। विगत दशक से 'पुरवाई' हिंदी मासिक पत्र का प्रकाशन हो रहा है, जिसके संपादक श्री पद्मेश गुप्ता, सह-संपादिका श्रीमती उषा राजे सक्सेना हैं। कॉमनवेल्थ ऑफ नेशंस के बैनर तले 'वर्तमान राष्ट्रकुल' नाम से एक पत्रिका लंदन से प्रकाशित हुई। आर्यसमाज, लंदन द्वारा 'आर्य पत्रिका' का प्रकाशन भी होता है।

रूस—

वर्तमान समय से रूस कई देशों में बँट चुका है अत: रूस को केंद्र में रखकर ही पत्रिकाओं का चित्रण किया जा रहा है। सन् 1802 में गेरासिस लेवदेव ने पिट्सवर्ग में एक प्रेस स्थापित किया

जिसमें संस्कृत, हिंदुस्तानी और बंगाली भाषा में छपाई होती थी। डॉ. पी.ए. वारान्निकोव ने नीक नाम की पत्रिका निकाली। नीक अवधी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है–अच्छा। वारान्निकोव रामचरित मानस के मर्मज्ञ विद्वान थे। नीक पत्रिका मुख्यतया भारतीय सिनेमा पर सामग्री प्रकाशित करती थी जो कि रूस के सैकड़ों नगरों में बड़े चाव से पढ़ी जाती थी। भारतीय सिने कलाकारों की कहानी, गीत इसमें प्रकाशित होते थे। इसके कुल तीन अंक निकले।

'सोवियत संघ' पत्रिका सन् 1972 से प्रकाशित हो रही है। 'सोवियत नारी' नाम से एक मासिक पत्रिका और निकलती है। इसके अतिरिक्त 'दीवार', 'वोस्तोव (पूरब) बुलेटिन' का प्रकाशन भी हो चुका है। सोवियत दूतावास से 'सोवियत दर्पण' प्रकाशित होती है। 'यूनोस्त', 'युवक दर्पण' मासिक, 'सोवियत-भूमि', 'दस्तावेज' आदि पत्र भी प्रकाशित हो चुके हैं। यूनोस्त लेखक यूनियन द्वारा प्रकाशित लोकप्रिय पत्र है। यह सन् 1955 से प्रकाशित हो रहा है। इसका आदर्श वाक्य है—'दुनिया में गैर दिलचस्प व्यक्ति कोई नही' का प्रतिबिंब है। सन् 1995 में मास्को से 'भारत भूमि' मासिक पत्र का प्रकाशन हो रहा है जिसके प्रकाशन में प्रसन्न वर्मा, दिनेश त्रिपाठी तथा सुजीत बनर्जी का सहयोग है।

यह राष्ट्र बापूजी की प्रारंभिक कार्य स्थली है। यहाँ से सर्व प्रथम सन् 1903 में इंडियन ओपिनियन साप्ताहिक पत्र का हिंदी संस्करण प्रकाशित हुआ। इसके प्रथम संपादक श्री मनसुखलाल नाजर थे। यह पत्र डरबन से 13 मील दूर फिनिक्स आश्रम से प्रकाशित श्री मदनजीत के प्रेस में मुद्रित होता था। गांधीजी की इस पर असीम कृपा थी। नाजर की मृत्यु के बाद गांधीजी के अंग्रेज़ी मित्र श्री हर्बट किचन एवं उसके बाद श्री हेनरी एस.एल पोलक इसके संपादक बने। इसके बाद 6 मई, 1922 को वहीं से हिंदी नाम का साप्ताहिक पत्र निकला जिसके प्रथम संपादक श्री भवानी दयाल संन्यासी थे।

अमेरिका–

अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति, अमेरिका के संस्थापक डॉ. कुँअर चंद्र प्रकाश सिंह ने 18 अक्तूबर, 1980 को रोजलिन वर्जीनिया में इसकी स्थापना की थी। इसी समिति के तत्त्वावधान में विश्व त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन हुआ। इसके प्रथम संपादक श्री रंजन कुमार सिंह थे। इसके कई उच्च स्तरीय विशेषांक प्रकाशित हो चुके हैं। हिंदी साहित्य, भाषा और संस्कृति पर केंद्रित इसके प्रकाशन ने हिंदी को विश्वस्तरीय बनाने में प्रमुख भूमिका निभाई है। न्यूयॉर्क से 'संवाद-सूत्र' त्रैमासिक पत्र भी निकल रहा है। जनवरी 1984 में हिंदी साहित्य सभा के तत्त्वावधान में भारतीय पत्रिका प्रकाश में आई। इसी वर्ष इलिनाय से भारती द्वैमासिक पत्र भी प्रकाशित हो रहा है। यही से 'सौरभ' त्रैमासिक पत्र भी प्रकाशित हो रहा है। अमेरिका से ही 'गदर की गूँज' पत्रिका का प्रकाशन हो चुका है। यह सूचनात्मक एवं सामाजिक पत्र माना जाता है। सन् 1909 में 'संजीवनी' मासिक पत्र का प्रकाशन हुआ। मैक्सिको में सन् 1947 में स्थापित यूनेस्को कूरियर का हिंदी संस्करण भी प्रकाशित होता है।

कनाडा–

हिंदी लिटरेरी सोसाइटी ऑफ कनाडा के तत्त्वावधान में हिंदी-संवाद त्रैमासिक पत्र निकलता है। इसके संपादक श्रीनाथ प्रसाद द्विवेदी हैं। सन् 1982 से हिंदी चेतना का प्रकाशन डॉ. सुधा ओम ढींगरा कर रही हैं। सन् 1967 से वसुधा का प्रकाशन श्रीमती स्नेह ठाकुर करती हैं। नवंबर 1982 से जीवन-ज्योति का संपादन श्री हरि शंकर आदेश कर रहे हैं। यह पत्रिका मूलरूप से संगीत एवं सांस्कृतिक गतिविधियों पर केंद्रित रहती है। टोरंटो से सन् 1975 से भारती मासिक हिंदी-अंग्रेज़ी पत्र का संपादन श्री त्रिलोचन सिंह गिल कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त विश्व भारती पाक्षिक पत्र का संपादन श्री रघुवीर सिंह कर रहे हैं। यहीं से संगम पाक्षिक पत्र भी निकलता है तथा कर्तव्य नाम की एक आर्य पत्रिका भी निकलती है। हिंदी साहित्य परिषद्, सरी, कनाडा से आर्यसमाज के द्वारा एक आर्य पत्रिका का प्रकाशन होता है जिसकी संपादिका श्रीमती मधु वार्ष्णेय हैं।

दक्षिण अफ्रीका–

यह राष्ट्र बापूजी की प्रारंभिक कार्य स्थली है। यहाँ से सर्व प्रथम सन् 1903 में इंडियन ओपिनियन साप्ताहिक पत्र का हिंदी संस्करण प्रकाशित हुआ। इसके प्रथम संपादक श्री मनसुखलाल नाजर थे। यह पत्र डरबन से 13 मील दूर फिनिक्स आश्रम से प्रकाशित श्री मदनजीत के प्रेस में मुद्रित होता था। गांधीजी की इस पर असीम कृपा थी। नाजर की मृत्यु के बाद गांधीजी के अंग्रेज़ी मित्र श्री हर्बट किचन एवं उसके बाद श्री हेनरी एस.एल पोलक इसके संपादक बने। इसके बाद 6 मई, 1922 को वहीं से हिंदी नाम का साप्ताहिक पत्र निकला जिसके प्रथम संपादक श्री भवानी दयाल संन्यासी थे। इसके पहले सन् 1912 में धर्मवीर नाम का एक साप्ताहिक पत्र श्री भवानी दयाल संन्यासी के संपादन में निकल चुका था। नेटाल से अमृत सिंधु नाम का एक पत्र सन् 1910 में प्रकाशित हुआ था।

सन् 1948 में पं. नरदेव वेदालंकार ने हिंदी शिक्षासंघ स्थापित किया जिसके तत्त्वावधान में संघ समाचार का प्रकाशन हुआ। इसका

संपादन डॉ. राम प्रसाद हेमराज ने किया था। इसमें बच्चों को हिंदी की ओर प्रेरित करने के लिए बाल-कोना स्तंभ भी रखा गया था।

जापान–

सन् 1964 में 'अंक' नाम का एक पत्र निकला। जापान-भारत मैत्री संघ के बैनर तले 'सर्वोदय' पत्र का प्रकाशन होता है। वस्तुत: यह एक धार्मिक पत्र है। जापान का प्रथम हिंदी पत्र 'ज्वालामुखी' है जो सितंबर 1980 में टोकियो से प्रकाशित हुआ। इसके प्रथम संस्थापक-संपादक श्री योशिअकि सुजुकी थे। प्रकाशन के समय श्री सुजुकी डॉ. कामता कमलेश से सभी सामग्रियों एवं संपादन कला पर विचार कर सहयोग एवं निर्देशन करते थे। इसीलिए पत्र का साहित्यिक स्तर बना रहा। पत्रिका का ज्वालामुखी नाम जापान के फुजि पर्वत की भव्यता को ध्यान में रखकर रखा गया है। डॉ. कमलेश से वार्तालाप करते हुए संपादक ने कहा था कि फुजि पर्वत की तरह हम भी सदैव क्रियाशील रहें और ज्वालामुखी की गतिशीलता हमारे जीवन में बनी रहे तभी हम साहित्य को उत्तरोत्तर गति दे सकेंगे। यह पूर्ण साहित्यिक पत्र था, किंतु अब इसका प्रकाशन बंद हो चुका है।

इस राष्ट्र ने अब तक लगभग 54 हिंदी पत्र प्रकाशित करने का कीर्ति स्तंभ स्थापित कर विश्व में प्रथम स्थान का गौरव प्राप्त कर लिया है। मॉरीशस ही पहला ऐसा राष्ट्र है जहाँ भारत से बाहर दो बार 'विश्व हिंदी सम्मेलन' का आयोजन हो चुका है। साथ ही मॉरीशस में 'विश्व हिंदी सचिवालय' का प्रधान कार्यालय भी स्थापित है। इस दृष्टि से यह देश 'विश्व हिंदी का महातीर्थ' बन चुका है।

चीन–

सन् 1957 से 'सचित्र चीन' नाम की उत्कृष्ठ रंगीन मासिक पत्रिका निकलती है। इसका प्रकाशन एवं मुद्रण 19 भाषाओं में एक साथ बीजिंग से होता है।

नॉर्वे–

सर्वप्रथम 1979 में 'परिचय' द्वैमासिक पत्र का प्रकाशन हुआ था। जिसके संपादक थे श्री सुरेशचंद्र शुक्ल शरद आलोक। कालांतर में यही पत्र 'स्पाइल दर्पण' के नाम से प्रकाशित हो रहा है। इसमें हिंदी साहित्य के साथ नॉर्वे के भी हिंदी समाचार छपते हैं। सन् 1990 से 'शांतिदूत' त्रैमासिक पत्र भी अमित जोशी के संपादन में निकलता है। इसके अतिरिक्त 'त्रिवेणी' त्रैमासिक पत्र भी कैलाशराय के संपादन में द्वैमासिक रूप में प्रकाशित होता है। आप्रवासी टाइम्स हिंदी पत्र भी यदा-कदा निकलता है।

चेकोस्लोवाकिया–

हिंदी और चेक भाषा में काफी समानता है। चेक के प्रथम हिंदी अध्यापक विसेंस पोसीज्का हिंदी को साड़ी पहने चेक भाषा कहते थे। अब यह चेक और स्लोवाक नाम से दो राष्ट्रों में बँट गया है। यहाँ सन् 1945 में 'नव प्राच्य' (नोवी आरिएंत) नाम से मासिक पत्रिका निकाली गई जिसके संपादक थे आचार्य लेसनी। इसमें हिंदी साहित्यकारों एवं उनके साहित्य पर लेख छपते थे।

हॉलैंड–

अब इसे नीदरलैंड कहा जाता है। यहाँ पर सूरीनाम से आए लाखों प्रवासी भारतीय रहते हैं। लालारुख प्रवासी भारतवंशियों की एक सजग संस्था है। इसी लालारुख नाम से हिंदी और डच में एक मासिक पत्र निकलता है। डॉ. जे.पी कोलेश्वर सुकुल इसके प्रथम संपादक हैं। आर्यसमाज की ओर से 'आसन संदेश' 1986 और 'वर्तमान पत्र' निकलते हैं। ओम वाणी हिंदी और डच भाषा में प्रकाशित होती है। 'संगठन' नामक हिंदी पत्र मासिक पिछले 25 वर्षों से बराबर निकल रहा है। इसके संपादक श्री ओम प्रकाश सामवेदी हैं। 'हिंदू 'नाम से एक मासिक पत्र हिंदी और डच भाषा में एक साथ निकलता है। इस पत्र का आदर्श वाक्य है—'चाहे पंथ अनेक हैं फिर भी हिंदू एक हैं।' इसके अलावा दिव्य संदेश मासिक हिंदी पत्रिका प्रकाशित होती है, जिसमें आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार की भरपूर सामग्री छपती है। देनहाग से ऐसा समाचार मासिक पत्र 1980 से प्रकाशित हो रहा है।

मॉरीशस—

इस राष्ट्र ने अब तक लगभग 54 हिंदी पत्र प्रकाशित करने का कीर्ति स्तंभ स्थापित कर विश्व में प्रथम स्थान का गौरव प्राप्त कर लिया है। मॉरीशस ही पहला ऐसा राष्ट्र है जहाँ भारत से बाहर दो बार 'विश्व हिंदी सम्मेलन' का आयोजन हो चुका है। साथ ही मॉरीशस में 'विश्व हिंदी सचिवालय' का प्रधान कार्यालय भी स्थापित है। इस दृष्टि से यह देश 'विश्व हिंदी का महातीर्थ' बन चुका है जहाँ विश्व के हिंदी प्रेमी सदा प्रेरणा, शक्ति और उत्साह लेने के लिए आते रहते हैं। इसे 'लघु भारत' भी कहा जाता है।

सर्वप्रथम इस देश में 15 मार्च, 1909 को 'हिंदुस्तानी' पत्र निकला। इसके संस्थापक संपादक डॉ. मणिलाल थे। पहले यह साप्ताहिक रहा फिर दैनिक के रूप में प्रकाशित हुआ। इसके बाद 'मॉरीशस इंडियन टाइम', अंग्रेज़ी, फ्रेंच तीन भाषाओं में दैनिक पत्र निकला। इसके संस्थापक श्री आर.के. बुघन तथा संपादक पं. राम अवध शर्मा थे। 'आर्यवीर' साप्ताहिक हिंदी पत्र पं. काशीनाथ किष्टो

के संपादन में प्रकाशित हुआ। 'जागृति' पत्र सन् 1939 में प्रकाशित हुआ और 1950 तक निरंतर छपता रहा। मॉरीशस के प्रथम प्रधानमंत्री डॉ. शिवसागर रामगुलाम जो कि मॉरीशस की जनता में 'चाचा रामगुलाम' के नाम से लोकप्रिय थे, 'जनता' साप्ताहिक पत्र के संस्थापक बने। पत्र के प्रथम संपादक जय नारायण राय ने सन् 1948 में इस पत्र को प्रारंभ किया। जनता पत्र बहुत ही सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक पत्र होने से जनप्रिय था, किंतु 1982 में इसका प्रकाशन बंद हो गया। इस पत्र के अंतिम संपादक श्री राजेंद्र अरुण रहे। 9 नवंबर, 1950 से 'आर्योदय' पाक्षिक फिर मासिक पत्र का जन्म हुआ। यह पहले 'आर्यवीर जागृति' के नाम से छपता था। इसके प्रथम संपादक पं. आत्माराम विश्वनाथ थे। इसके बाद पं. मोहन लाल मोहित हुए। प्रसन्नता है कि यह पत्र अब तक प्रकाशित हो रहा है और इसके संपादक हैं श्री सत्यदेव प्रीतमजी। सन् 1935 में 'दुर्गा' साप्ताहिक पत्र हस्तलिखित के रूप में निकाला गया। तब इसके संपादक श्री सूर्य मंगर भगत थे। यह पत्र 1938 तक अपने अस्तित्व में रहा।

जुलाई 1960 में सर्वप्रथम पूर्ण साहित्यिक पत्र के रूप में 'अनुराग' का प्रकाशन हुआ। यह हिंदी परिषद का मुख पत्र माना जाता है। इसके प्रधान संपादक श्री सोमदत्त बखौरी थे। बखौरीजी को भारत सरकार ने 'विश्व हिंदी सेवी' पुरस्कार से भी सम्मानित किया था। हिंदी लेखक संघ के तत्त्वावधान में सर्वप्रथम एक बाल पत्रिका 'बाल सखा' के नाम से सन् 1965 में प्रकाशित हुई। कुछ वर्षों के बाद यह बंद हो गई। पर यह पुन: इसी नाम से सन् 2006 में चौमाही बाल पत्रिका के रूप में पाठकों के समक्ष आई और इसके प्रधान संपादक बने श्री इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ। हिंदी लेखक संघ के 50वीं वर्षगाँठ सन् 2011 पर इसका एक चित्ताकर्षक विशेषांक प्रकाशित हुआ है। हिंदी प्रचारिणी सभा के बैनर तले सन् 1960 में 'नवजीवन' पाक्षिक पत्र का जन्म हुआ जिसके संपादक सूर्य प्रसाद मंगर भगत और विक्रम सिंह रामलाला रहे।

सन् 1930 में प्रकाशित 'बसंत' पत्र जो कि शीघ्र ही बंद हो गई थी। उस समय इसके संपादक पं. गिरजानंदजी थे। प्रसन्नता की बात यह है कि हिंदी प्रेमियों के आग्रह पर सन् 1977 में महात्मा गांधी संस्थान, मोका के द्वारा 'बसंत' पत्रिका का पुनर्जन्म हुआ और इसके प्रधान संपादक बने श्री अभिमन्यु अनत। आजकल इसके संपादक मंडल में डॉ. जोगा सिंह, पूजानंद नेमा, राज हीरामन हैं। वसंत पत्र मॉरीशस में पहले मासिक छपता था पर अब त्रैमासिक के रूप में छप रहा है। यह पत्र विशुद्ध साहित्यिक है तथा भारत में भी इसके अंकों की उत्साह के साथ प्रतीक्षा रहती है। ह्यूमन सर्विस ट्रस्ट के तत्त्वावधान में सन् 1987 में 'स्वदेश' नाम से हिंदी साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हुआ। प्रथम संपादक के रूप में श्री धनदेव बहादुर और राज हीरामन रहे। यह सन् 1991 तक बड़ी गरिमा और उच्चता के साथ प्रकाशित होता रहा। भारतीय राज दूतावास के द्वारा 'भारतीय समाचार' नाम से एक मासिक पत्र सन् 1972 से प्रकाशित हो रहा है जो कि भारत संबंधी समाचारों से प्रोत होता है। भारत राज दूतावास से 'भारत दर्शन' नाम से एक त्रैमासिक पत्र 1989 में प्रारंभ हुआ जो कि सन् 1991 तक प्रकाशित हुआ।

राजकीय हिंदी अध्यापकों के संघ द्वारा 'आक्रोश' नाम का एक मासिक पत्र सन् 1990 में श्री सत्यदेव टेंगर के संपादन में निकलना प्रारंभ हुआ। 'इंद्रधनुष सांस्कृतिक परिषद्' के द्वारा 'इंद्रधनुष' नाम से एक त्रैमासिक पत्र सन् 1988 से श्री प्रह्लाद रामशरण के संपादन में प्रकाशित हो रहा है। अब यह पत्र त्रैमाषिक हो गया है हिंदी, अंग्रेज़ी, फ्रेंच में। बाल साहित्य की दूसरी पत्रिका 'मुक्ता' नाम से सन् 1990 में प्रकाशित हुई। इसके प्रकाशक एवं संपादक के रूप में श्री राजनारायण गति का नाम छपता रहा। सन् 1992 में यह पत्र अकाल ही काल के गाल में फँस गया। हिंदी प्रचारिणी सभा के तत्त्वावधान में सन् 1995 से 'पंकज' त्रैमासिक पत्र का प्रकाशन हो रहा है। इस पत्र के प्रथम अंक का विमोचन सभा की हीरक जयंती के अवसर डॉ. कामता कमलेश ने किया था। यह छात्रोपयोगी हिंदी पत्रिका है। इसके संपादक श्री अजामिल माताबदल हैं। इन्हें और डॉ. कमलेश को सन् 2001 में उत्तर प्रदेश, भारत के तत्कालीन राज्यपाल डॉ. विष्णुकांत शास्त्री के करकमलों से 'हिंदी रत्न' से अलंकृत किया गया था। इस अवसर पर भारत में मॉरीशस के तत्कालीन उच्चायुक्त महामहिम दानी लाल शिवाजी उपस्थित थे। सितंबर 1999 से हिंदी संगठन द्वारा बच्चों की पत्रिका 'सुमन' का संपादन श्री अजामिल माताबदल और राजनारायण गति द्वारा हो रहा है। सन् 2001 से 'जनवाणी' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन संपादक दिनेश गुंडोरी तथा श्रीमती सरिता बुधू के द्वारा प्रारंभ हुआ। अब यह पत्र बंद हो चुका है।

मॉरीशस में 'विश्व हिंदी सचिवालय' स्थापित है। इसके द्वारा 'विश्व हिंदी समाचार' त्रैमासिक का प्रकाशन होता है। यहीं से 'विश्व हिंदी पत्रिका' नाम से एक वार्षिक पत्रिका का भी प्रकाशन हो रहा है। इसके प्रधान संपादक श्रीमती पूनम जुनेजा तथा संपादक श्री गंगाधरसिंह सुखलाल हैं। संसार में विश्व हिंदी की आत्मा समझने के लिए ये पत्रिकाएँ ऐतिहासिक कार्य कर रही हैं। शेष बचे पत्रों के नाम हैं—'हिंदुस्तानी' द्वितीय सन् 1909 संपादक— विनय राम किसुनजी, 'मॉरीशस आर्य पत्रिका', पाक्षिक जून 1911, 'ओरियंटल गजट' सं. पं. राम लाल तिवारी, 'मॉरीशस इंडियन टाइम', दैनिक सं. पं. रामअवध शर्मा, 'मॉरीशस मित्र' दैनिक

(1924) सं. राजकुमार गजाधर, 'सनातन धर्माक' (1933) 'जमाना', 'मासिक चिट्ठी', 'सैनिक', 'मज़दूर', 'दीवाली संदेश', 'वर्तमान', 'परिवर्तन', 'शिवरात्रि' 1976, 'वैदिक जनरल', 'समाजवाद', 'कांग्रेस', 'हमारा देश', 'प्रकाश', 'त्रिवेणी', 'दर्पण' (1971), 'आभा', 'प्रभात', 'निर्माण', 1976, 'रणभेरी', 'सृजन' 1993, 'रिमझिम' 1997 सं. अभिमन्यु अनत, आदि पत्रिकाएँ मॉरीशस की हिंदी पत्रिका के इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ हैं। अभिनंदन ग्रंथों में पं. मोहन लाल मोहित और राष्ट्रकवि ब्रजेंद्र भगत 'मधुकर' विशेषांक विश्व हिंदी पत्रकारिता के अभिनव ग्रंथ हैं।

सूरीनाम—

इस प्रवासी भारतीय बहुल राष्ट्र से सर्वप्रथम 1964 में 'आर्य दिवाकर' पत्र प्रकाशित हुआ। सरस्वती प्रेस से 'सरस्वती' मासिक पत्र का प्रकाशन पं. शिवरतन शास्त्री के संपादन में हुआ। भारतोदय प्रेस, निकेरी नगर से 'भारतोदय' पत्र निकला। सन् 1975 में 'धर्म प्रकाश' संपादक डॉ. ज्ञान हंस अधीन का प्रकाशन हुआ। इसके बाद 'वैदिक संदेश' 1979 नाम से पं. शिवरतन शास्त्री ने एक पत्र निकाला। सूरीनाम के हिंदी लेखक प्रेमानंद के संपादन में 'प्रेम संदेश' और 'धर्म प्रकाश' हिंदी और डच भाषा में मासिक पत्रिका का संपादन हुआ। श्री महातम सिंह के संपादन में 'शांति दूत' मासिक पत्रिका का प्रकाशन हुआ। सन् 1985 से डॉ. कामता कमलेश के निर्देशन एवं प्रेरणा से हिंदी परिषद् सूरीनाम से 'सूरीनाम दर्पण' का प्रकाशन हुआ। इस पत्र के संपादक हरिदेव सहतू और जानकी प्रसाद सिंह हैं। यह पत्र अब भी निकल रहा है। डॉ. कमलेश ने इसका आदर्श वाक्य दिया है—हिंदी पढ़ो ही नहीं वरन् लिखो भी। सन् 1983 से 'भासा' मासिक द्वैमासिक हिंदी और डच में निकला। सन् 1985 में सूरीनाम के कवि अमर सिंह रमन के संपादन में 'वसंत' पत्र का प्रकाशन हुआ। इसके भी निर्देशक, सलाहकार और प्रेरक डॉ. कामता कमलेश रहे। यह साइक्लोस्टाइल प्रक्रिया में छपता था। भारत के राजदूतावास सूरीनाम से 'भारत समाचार' मासिक पत्र का संपादन भी होता है।

त्रिनिडाड एवं टोबैगो (वेस्टइंडीज)—

सन् 1968 में श्री बच्चू लाला के सहयोग से दैनिक 'कोहिनूर अखबार' प्रकाशित हुआ। भारतीय विद्या संस्थान के तत्त्वावधान में 'ज्योति पत्रिका' का प्रकाशन होता है। इसके संपादक हैं—प्रो. हरिशंकर आदेश। वस्तुत: इसमें भारतीय संगीत के सूरों और लयों का परिचय दिया जाता है। हिंदी निधि संस्था द्वारा 'हिंदी परिचय' और 'हिंदी निधि' पत्रिकाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। आर्यसमाज से 'आर्य संदेश' मासिक श्री एल. मिश्र के संपादन में होता है।

गुयाना—

इसे पहले 'ब्रिटिश गुयाना' कहा जाता था। यहाँ सर्वप्रथम अंग्रेज़ी दैनिक 'आग्रोसी' पत्र के रविवारीय अंक में एक पृष्ठ हिंदी का होता था। आर्यसमाज द्वारा 'आर्य ज्योति' और सनातन धर्म द्वारा 'अमर ज्योति' पत्रिका प्रकाशित होती है। पं. योगिराज शर्मा के संपादन में 'ज्ञानदा' मासिक पत्र का संपादन कई वर्षों तक हुआ। पं. राम लाल यहाँ के प्रमुख पत्रकार हैं।

फीजी—

विश्व में सर्वाधिक हिंदी पत्र मॉरीशस से प्रकाशित होते हैं। उसके बाद फीजी का स्थान है जहाँ से लगभग 35 पत्र निकल चुके हैं। जबकि फीजी की आबादी मॉरीशस की आधी से भी कम है। यहाँ से प्रथम हिंदी पत्रिका सन् 1913 से 'सेटलर' था जिसमें अंग्रेज़ी के साथ कुछ पृष्ठ हिंदी के होते थे। सन् 1923 में 'फीजी समाचार' साप्ताहिक पत्रिका प्रधान सं. सूर्य मुनिदयाल विदेसी तथा श्री बाबूराम सिंह के संपादन में निकला। इसके पूर्व 'भारत पुत्र', 'वृद्धि' और 'वृद्धि वाणी' का प्रकाशन हुआ।

फीजी का सर्वाधिक लोकप्रिय पत्र 'शांतिदूत' है जो 11 मई, सन् 1935 से यथावत निकल रहा है। इसके प्रथम संपादक पं. गुरुदयाल शर्मा थे। श्री वी.डी. लक्ष्मण के संपादन में 'किसान', किसान महासंघ की ओर से 'दीनबंधु' पत्र भी निकले। कबीर पंथी ज्ञानीदास के संपादन में 'ज्ञान' और 'तारा' निकले। कवि काशीराम कुमुद के संपादन में 'प्रवासिनी' निकला। 'जंजाल', 'सनातन प्रकाश', 'मज़दूर', 'विजय', 'पुस्तकालय', 'प्रकाश' पत्र भी इन्हीं दिनों प्रकाशित हुए। 'जय फीजी' 1958 साप्ताहिक पत्र पं. कमला प्रसाद मिश्र के संपादन में शुरू हुआ जो कि अब तक प्रकाशित हो रहा है। श्री मिश्र को भारत सरकार 'विश्व हिंदी सेवी साहित्यकार' से सम्मानित भी कर चुकी है। डॉ. कामता कमलेश सन् 1988 में उनके अतिथि रहे और उनकी हिंदी सेवा और संपादन को स्वयं देखा, परखा और सराहा था। इंडियन टाइम्स 1945 सं. राम सिंह 'जागृति' अर्द्ध साप्ताहिक पं. राघवानंद शर्मा के संपादन में निकला। सन् 1953 में 'आवाज' 1953 साप्ताहिक पत्र और 'झंकार' सिने साहित्य पर ज्ञानी दास ने निकाला। 'फीजी संदेश' संपादक के.जी. लाल मोरिस, 'मिसान मित्र' संपादक नंद किशोर, डॉ. विवेकानंद शर्मा के संपादन में 'सनातन संदेश' और 'उदयाचल' 1982 निकला। डॉ. शर्मा भारत प्रवास में लेखक के आतिथ्य में बहुत दिन रहे।

सन् 1926 में 'राजदूत', 'फीजी वृत्तांत' और 'शंख' का प्रकाशन हुआ। 'फीजी समाचार' नटवर लाल गांधी के संपादन में प्रकाशित होता है। सन् 1986 में श्री राम लोचन के संपादन में 'फीजी दर्शन', मासिक का प्रकाशन हुआ। 'विजय', 'प्रशांत समाचार' साप्ताहिक

और 'सरताज' साप्ताहिक सं. एस.एस. दास का प्रकाशन 1988 में हुआ। फीजी हिंदी परिषद् की ओर से राम नारायण गोविंद के संपादन में 'साहित्यकार' 1986 का भी प्रकाशन हो चुका है।

म्यांमार (बर्मा)–

यहाँ से सर्वप्रथम श्री एल.बी. लाठिया के संपादन में 'बर्मा समाचार' फिर 'प्राची कलश' और सन् 1934 में 'प्राची प्रकाश' हिंदी दैनिक पत्रिका निकली। जिसके संस्थापक पं. अनंत राम मिश्र और प्रथम संपादक श्यामाचरण मिश्र थे। फिर 'प्रवासी' साप्ताहिक पत्रिका प्रकाशित हुई। सन् 1951 में राम प्रसाद वर्मा ने 'नवजीवन' दैनिक पत्रिका निकली। फिर 'जागृति' पत्रिका निकला। सन् 1953 में 'ब्रह्मभूमि' मासिक का प्रकाशन रंगून से ब्रह्मानंद और रामप्रसाद वर्मा ने किया। सन् 1970 में 'आर्य युवक जागृति' मासिक का प्रकाशन हुआ।

नेपाल–

काठमांडू से 'नेपाल' सन् 1956, हिंदी दैनिक का प्रकाशन श्री उमाकांत दास के संपादन में हो रहा है। त्रिभुवन विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग से स्व. डॉ. कृष्णचंद्र मिश्र के संपादन में 'साहित्य लोक' 1979 का प्रकाशन हुआ। अब वहाँ से 'हिमालिनी' त्रैमासिक सं. डॉ. उषा ठाकुर पत्र का संपादन हो रहा है। इसके अतिरिक्त 'चर्चा', 'आरोहण', 'नेपाल संदेश', 'शारदा', 'जन चेतना' आदि पत्रों का प्रकाशन भी होता है।

अन्य देश–

अबूधावी से श्री कृष्ण बिहारी के संपादन में 'निकट' त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन होता है। शारजहाँ में 'अभिव्यक्ति' एवं 'अनुभूति' नाम से जाल पत्रिकाएँ श्रीमती पूर्णिमा वर्मन के निर्देशन में प्रकाशित होती हैं। हंगरी से 'दिन पत्रिका' सं. लायोश मझ्री एवं श्रीमती इवा अरादी तथा श्रीलंका से 'सुगृहिणी' मासिक पत्रिका वेंकटलाल ओझा एवं श्रीमती हेमंत कुमारी के संपादन में प्रकाशित हो चुकी है। तिब्बत से 'तिब्बत बुलेटिन' और 'तिब्बत समाचार' मासिक न्यूजीलैंड से 'सागरिका' पत्र निकलते हैं।

यद्यपि इससे शोध लेख के कई पत्र काल कवलित हो चुके हैं और कई अब भी नई ऊर्जा, नए उत्साह और वैश्विक आलोक में प्रकाशित होते हैं। इन्हीं पत्रों से विश्व हिंदी की पत्रकारिता के स्वर्णिम पृष्ठ अब भी अपनी नूतन आभा बिखेर रहे हैं। बिना इनके विश्व हिंदी का इतिहास पूर्ण नहीं हो सकता है।

—डॉ. कामता कमलेश
10, बड़ा बाज़ार, अमरोहा
जे.पी. नगर–244221 (भारत)

❑

व्यवहार में पक्षपात नहीं करना चाहिए। व्यवहार धर्म से भी महत्त्वपूर्ण है।

— चाणक्यसूत्राणि

कार्य उद्यम से सिद्ध होते हैं, मनोरथों से नहीं।

— विष्णु शर्मा

7

जापान में हिंदी पुस्तकों की अनमोल विरासतें

–प्रो. ताकेशि फुजिइ और श्री क्योसुके आदाची

जन्म : 16 मई, 1955
शिक्षा : बी.ए., हिंदी विभाग, तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरैन स्टडीज (मार्च 1981), एम.ए., हिंदू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय (मार्च 1985)। आसामी में सर्टिफिकेट, आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय (मार्च 1985)। एम.ए., तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरैन स्टडीज (मार्च 1986)। **कार्य :** टोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ स्टडीज, हिंदी विभाग में सहायक शिक्षक, वरिष्ठ शोध सहायक, प्राध्यापक, एसोसिएट प्रोफेसर, प्रोफेसर, दक्षिण, निदेशक (सेंटर फॉर डॉक्यूमेंटेशन एंड एरिया-ट्रांस्कल्चरल स्टडीज) पदों को सँभाला (1986-2012)। टोक्यो विश्वविद्यालय में प्राध्यापक (1991)। टोक्यो विमन क्रिशचन विश्वविद्यालय में प्राध्यापक (1997-2012)। चीबा विश्वविद्यालय में प्राध्यापक (1994-2003)। स्कूल ऑफ ओरिएंटल एंड अफ्रीकन स्टडीज, लंदन तथा दिल्ली विश्वविद्यालय, हिंदी विभाग में रिसर्च फेलो (मार्च 1990-दिसंबर 1990)। ब्रिटिश पुस्तकालय, लंदन तथा दिल्ली विश्वविद्यालय, हिंदी विभाग में विदेशी शोध फेलो (फरवरी 1997-मार्च 1997)। **प्रकाशन :** जापानी तथा अंग्रेजी में 5 पुस्तकें प्रकाशित। जापानी में हिंदी भाषा तथा साहित्य पर लगभग 15 अकादेमिक पेपर। **सम्मान :** 8वें विश्व हिंदी सम्मेलन, न्यूयार्क में विश्व हिंदी सम्मान (2007)

- **जन्म :** 14 फरवरी, 1975 (क्योतो, जापान)।
- **शिक्षा :** तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरैन स्टडीज (एम.ए. 2000)।
- **कार्य :** लेक्चरर (अंशकालिक), तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरैन स्टडीज और तोकाई विश्वविद्यालय।
- **शोध क्षेत्र :** आधुनिक भारत में भाषा और मुद्रण; भारत-जापान संबंधों का इतिहास।
- **प्रकाशन :** ''मेइजी, ताइशो तथा शोवा युग (1868 1989) में दक्षिण एशियाई अध्ययन; लेख सूची (2006) आदि।

जापान में हिंदी और भारतीय भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन का इतिहास काफी पुराना है। आपको यह जानकर आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता होगी कि जापान में हिंदी-उर्दू शिक्षण की परंपरा को आरंभ हुए 100 वर्ष पूरे हो गए हैं। सन् 1908 में तोक्यो विदेशी भाषा विद्यालय (Tokyo School of Foreign Languages : TSFL) में हिंदुस्तानी और तमिल भाषा की पढ़ाई शुरू की गई। तब दोनों भाषाएँ सर्टिफिकेट और डिप्लोमा के रूप में पढ़ाई जाती थीं। उसके बाद सन् 1911 में हिंदुस्तानी भाषा को स्वतंत्र विभाग का दर्जा दिया गया और इसके अंतर्गत डिग्री कोर्स की पढ़ाई शुरू हो गई। कई कारणों से तमिल विभाग आगे नहीं चल सका। तब से आज तक प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान भी स्थगन के बिना पढ़ाई जारी रही है। इसी बीच सन् 1949 में TSFL का नाम बदलकर तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरैन स्टडीज (TUFL) हो गया। सन् 1961 में हिंदुस्तानी विभाग उर्दू और हिंदी के दो स्वतंत्र विभागों में विकसित हो गया तथा सन् 1966 में एम.ए. और सन् 1992 में पी-एच.डी. स्तर का अध्यापन भी शुरू हो गया। फिर सन् 2012 के अप्रैल में बढ़ते भारत-जापान संबंध को देखते हुए नए सिरे से बँगला विभाग भी स्थापित किया गया। आजकल इन तीनों विभागों में संस्कृत, पालि, मराठी, नेपाली, पंजाबी, सिंधी, मलयालम और तमिल भाषाएँ सर्टिफिकेट कोर्स के रूप में पढ़ाई जाती हैं।

हमारी यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी की विशेषताएँः संक्षिप्त परिचय (देखिए, फोटो नं. 1)

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसी विदेशी भाषाओं के पठन-पाठन के लिए उन्हीं भाषाओं में लिखी पुस्तकों की भारी जरूरत होती है। हमारी यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी में दुनिया भर की भाषाओं की

University-Library

लगभग 7 लाख किताबें हैं जिनमें भारतीय भाषाओं की पुस्तकों की संख्या कुल मिलाकर 45,000 के आसपास ही है। यहाँ हिंदी भाषा के अलावा संस्कृत, प्राकृत, पालि, उर्दू, बंगाली, पंजाबी, मैथिली, सिंधी और कई द्रविड़ भाषाओं की किताबें भी शामिल हैं। सिर्फ मानक हिंदी की ही नहीं, बल्कि ब्रजभाषा, अवधी, राजस्थानी और पहाड़ी जैसी बोलियों की पुस्तकें भी मौजूद हैं।

इनके अलावा लाइब्रेरी में 200 से अधिक भारतीय पत्र-पत्रिकाओं का अच्छा-खासा संग्रह है और साथ ही कई विशेष संकलन भी हैं। विशेष संकलनों में उल्लेखनीय हैं; प्रो. गामो की निजी लाइब्रेरी और नवलकिशोर कलेक्शन। प्रो. गामो हिंदुस्तानी विभाग के प्रथम जापानी अध्यापक थे। उनकी लाइब्रेरी में प्रेमचंदजी के उपन्यास गोदान, कर्मभूमि, गबन, गोदान वगैरह के प्रथम संस्करण हैं। 19वीं शताब्दी के विख्यात प्रकाशक मुंशी नवलकिशोरजी (1836-1895) के जमाने में नवलकिशोर प्रेस (लखनऊ) ने 4,000 से अधिक संस्कृत, हिंदी, उर्दू, पारसी और अरबी किताबें प्रकाशित की थीं। उनमें से लगभग 1,000 पुस्तकें हमारे पास ही हैं। ये सब किताबें SARDA (शारदा) कलेक्शन के नाम पर डिजिटैज की गई हैं और अब वेब (web) में आ गई हैं (http://repository.tuhs.ac.jp/doc/sarda/about_e.html)। आप घर में बैठकर आराम से इन पुस्तकों को पढ़ सकते हैं। नवलकिशोर प्रेस की पुस्तकें हमारी लाइब्रेरी के अतिरिक्त दुनिया में विख्यात ब्रिटिश लाइब्रेरी, लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस, और शिकागो यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी में सुरक्षित हैं।

पं. रामचंद्र शुक्लजी के हिंदी साहित्य का इतिहास में जितने कवियों और साहित्यकारों के बारे में चर्चा की गई हैं, लगभग उन सबों की रचनाएँ हमारी लाइब्रेरी में मिल जाती हैं। शुक्लजी के इतिहास के बाद समकालीन युग तक हिंदी जगत में जितने नए लेखकों का आविर्भाव हुआ, उनकी रचनाओं को पढ़ने में कोई कठिनाई महसूस नहीं की जाती है। आधुनिक भारत के साहित्यिक विचारधाराओं की—चाहे वह प्रगतिवाद, छायावाद या प्रयोगवाद हो—मुख्य रचनाएँ और दलित साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है।

सिर्फ हिंदी ही नहीं, बल्कि भारतीय साहित्य और भाषाओं के अध्ययन में फोर्ट विलियम कॉलेज (Fort William College, कलकत्ता), हेइलीबेरी कॉलेज (Haileybury College, Hertford) और श्रीरामपुर मिशन (Serampore Mission) के योगदान को नकारा नहीं किया जा सकता। हमारी लाइब्रेरी में इन तीनों संस्थानों से प्रकाशित कई दुर्लभ ग्रंथों का संकलन है।

यहाँ ब्योरे के साथ 45,000 पुस्तकों का पूरा का पूरा परिचय देना संभव ही नहीं है। पर खुशी की बात है कि इन सबों का डाटा अब यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी के Web catalogue (OPAC) में उपलब्ध हो गया है।

दुर्लभ पुस्तकों की एक झलक

आइए, अब हमारी लाइब्रेरी में सफर कीजिए। हम आपको फोटो के साथ चुनी हुई दुर्लभ और अमूल्य पुस्तकों को दिखाएँगे।

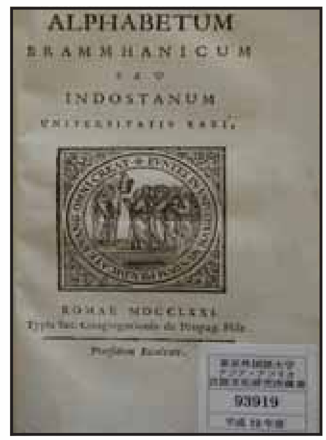

Alphabetum Brammhanicum

लाइब्रेरी में हिंदी की सबसे पुरानी पुस्तक है Alphabetum brammhanicum sev indostanum universitatis kasi। असल में यह लैटिन भाषा में लिखी हुई हिंदी व्याकरण ही है, जो 1771 में रोम (इटली) में छपी थी (देखिए, फोटो न. 2)। इसके बाद आएँगी Singhasun butteesee (1805) और General principles of inflection and conjugation in the Bruj B,hak,ha (1811) जो फोर्ट विलियम कॉलेज द्वारा प्रकाशित की

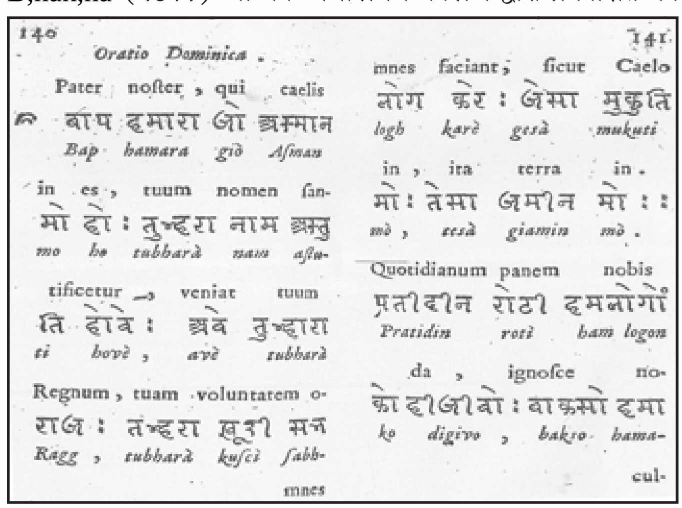

140

Oratio Dominica.

Pater noster, qui caelis
बाप हमारा जो अस्मान
Bap hamara gio Asman
in es, tuum nomen san-
मो हो : तुम्हरा नाम असु
mo ho tubhara nam astu-
tificetur, veniat tuum
ति होवे : अवे तुम्हारा
ti hovè, avè tubhara
Regnum, tuam voluntatem o-
राज : तम्हरा खुशी सब्ब
Ragg, tubhara kusci sabb-
mnes

141

mnes faciant, sicut Caelo
लोग करे : जेसा मुकुति
logh karè gesà mukuti
in, ita terra in.
मो : तेसा जमीन मो ::
mò, tesà giamin mò.
Quotidianum panem nobis
प्रतीदीन रोटी हमलोगों
Pratidin roti ham logon
da, ignosce no-
को दीजीवो : बाकसो हमा
ko digivo, bakso hama-
cul-

Alphabetum Brammhanicum 2

गई थीं (देखिए, फोटो न. 3)। लाइब्रेरी में इस कॉलेज की 20 से अधिक किताबें हैं। इनके साथ ही 19वीं शाताब्दी के शुरू में श्रीरामपुर मिशन द्वारा प्रकाशित बाइबिल की अनूदित पुस्तकें भी मौजूद हैं (देखिए, फोटो न. 4)।

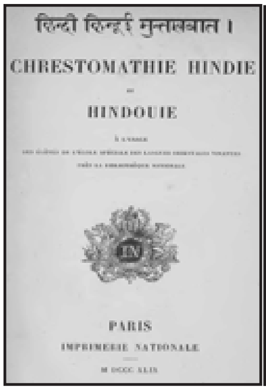

hindI hindUI muntakhabAt

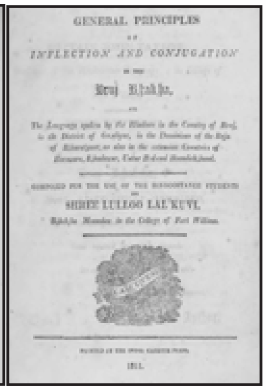

General Principles

हमारी लाइब्रेरी में सबसे बहुमूल्य पुस्तक है Les Hindous (4 खंडों में)। यह 1808-12 में प्रकाशित की गई फ्रांसीसी किताब है। कहा जाता है कि अब दुनिया में इसकी सिर्फ 50 प्रतियाँ रह गई हैं। इसमें अनेक हस्तलिखित रंगीन सुंदर चित्र संगृहीत हैं (देखिए, फोटो न. 5)। M. Garcin de Tassy द्वारा लिखी गई पुस्तकें Rudimemts de la langue hindoui और हिंदी हिंदुई मुंतख बात भी देख सकते हैं

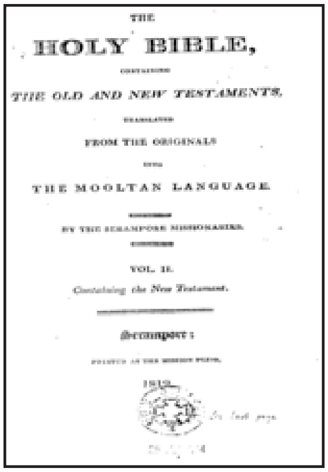

Holy Bible Mooltan

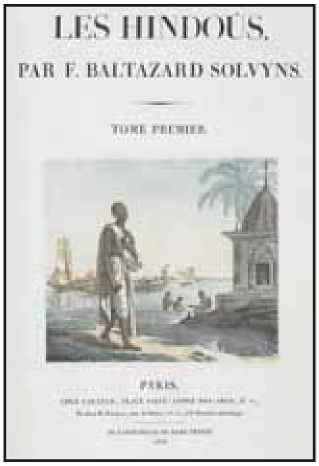

Les Hindous

(देखिए, फोटो न. 6)। प्रेम सागर के कई संस्करणों की 10 पुस्तकें हैं जिनमें से सबसे पुरानी पुस्तक 1851 की है (Edward B. Eastwick, The Prem Sagar, or, The ocean of love)। इसके अलावा बाग व बहार के कई संस्करणों की 35 पुस्तकें भी हैं। ईस्ट इंडिया कंपनी का हेइलीबेरी कॉलेज, जो फोर्ट विलियम कॉलेज बंद होने के बाद भारतीय भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन के केंद्र के रूप में उभर आया था। उसके ऐतिहासिक कागजात भी माइक्रो फिल्म में शोधकर्ताओं को उपलब्ध कराए जाते हैं।

आधुनिक काल में आते ही आपको भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850-1885) की 35 पुस्तकें, राजा शिवप्रसाद सितारे-हिंद (1824-95) की 10 पुस्तकें, और लल्लूजी लाल (1463-1825) की 18 पुस्तकें भी मिल जाती हैं। G.A. Grierson (1851-1941) का A

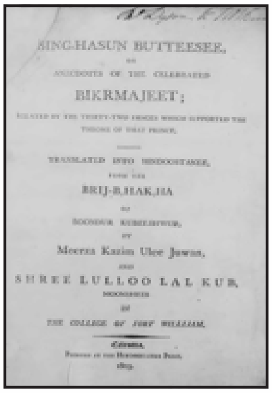

SinghasunButeesee

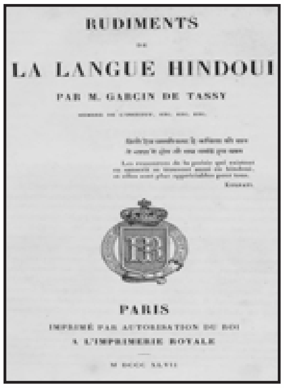

Rudiments La Langue Hindoui

handbook to the Kaithi character भी है, जो 1899 में प्रकाशित किया गया था। यह बहुत ही दुर्लभ ग्रंथों में से एक है। फिर आप को J.T. Thompson के हिंदी शब्दकोश (1870) और John Shakespear का हिंदुस्तानी व्याकरण (1813) भी मिल जाएगा।

अब पत्रिकाओं की झाँकी लें। हमारी लाइब्रेरी में निम्नलिखित शोध पत्रिकाओं की लगभग पूरी जिल्दें हैं (देखिए, फोटो न. 7)।

hindI-patrikAeM-1

hindI-patrikAeM-2

महावीरप्रसाद द्विवेदीजी (1864-1938) द्वारा संपादित सरस्वती, नागरी प्रचारिणी पत्रिका (नागरी प्रचारिणी सभा,काशी), भारतीय

c

साहित्य (हिंदी विद्यापीठ, आगरा), सम्मेलन पत्रिका (हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग) हिंदुस्तानी (हिंदुस्तानी एकेडमी), परिषद् पत्रिका (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्), हिंदी अनुशीलन (भारतीय हिंदी परिषद्, प्रयाग), भाषा (केंद्रीय हिंदी निदेशालय) आदि उपलब्ध हैं।

हिंदी-शिक्षण और हिंदी साहित्य के अध्ययन के लिए पॉपुलर पत्रिकाओं का अचल महत्त्व है। लेकिन ऐसी पत्रिकाओं के अंक पढ़ने के बाद अक्सर बिखर ही जाते हैं। रिसर्च लाइब्रेरी भी उनका उचित ध्यान नहीं रखतीं। पर हमारे यहाँ ऐसा कभी नहीं हो सकता। हमारी लाइब्रेरी में निम्नलिखित पत्रिकाओं की जिल्दें उपलब्ध हैं—चाँद, माधुरी, मनोरंजन, धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, अज्ञेयजी द्वारा संपादित दिनमान, रविवार (कलकत्ता), ज्ञानोदय (भारतीय ज्ञानपीठ), कल्याण (गोरखपुर), कादंबिनी, मुक्ता, सरिता, सारिका, कल्पना (हैदराबाद), हंस (नया संस्करण), आलोचना (राजकमल प्रकाशन) आदि।

इसके अलावा निर्बला सेवक (बिजनौर), प्रताप (कानपुर), जयाजी प्रताप (ग्वालियर) जैसी दुर्लभ पत्रिकाओं की कई जिल्दें भी हैं।

हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में योगदान

हमारी लाइब्रेरी में हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन के लिए बहुत ही मूल्यवान सामग्री भी मौजूद हैं। उदाहरण के लिए, प्रेमचंदजी द्वारा संपादित साप्ताहिक पत्रिका जागरण को लें। हमारे यहाँ इसकी एक जिल्द है। यह पत्रिका इसीलिए महत्त्वपूर्ण है कि इसके 5 अक्तूबर, 1932 के अंक में श्री सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायनजी की कहानी पहले-पहले छपी थी। उस कहानी का शीर्षक है अमर वल्ली। शीर्षक के नीचे लेखक का नाम दिया गया है श्रीयुत अज्ञेय। इसके बाएँ तरफ यह भी लिखा हुआ है, समय आया है, कि इन अद्‌भुत और अज्ञेय लेखक की रचनाएँ हिंदी-जगत के सामने आएँ— जैनेंद्र कुमार। यहाँ अज्ञेय शब्द का प्रयोग विशेषण के रूप में किया गया था, लेखक के उपनाम के रूप में नहीं। इस से अनुमान किया जा सकता है कि अज्ञेय का नामकरण वस्तुत: जैनेंद्रकुमारजी के द्वारा नहीं, बल्कि जागरण के संपादक प्रेमचंदजी के द्वारा ही किया गया था (देखिए, फोटो न. ४)। अगर नए सिरे से आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास लिखना है, तो इस तथ्य को ध्यान में रखना ही पड़ेगा।

पुरानी पुस्तकों की खोज, नई पुस्तकों के संकलन

पुस्तक-संकलन में सबसे बड़ी कठिनाइयाँ विश्व-युद्ध और युद्धोत्तर समय में हमारे सामने खड़ी हो गई थीं। लेकिन उस समय में भी व्यक्तिगत प्रयत्नों द्वारा पुस्तकें जापान में लाई जाती थीं। इधर पचास साल से हम लोग यूरोप, अमेरिका और भारत की पुरानी पुस्तकों की दुकानों से चुन-चुनकर तरह-तरह की पुस्तकें इकट्ठा करते हैं। हर साल हमारी लाइब्रेरी में भारतीय भाषाओं की 3 हज़ार से अधिक पुस्तकें संगृहीत की जाती हैं।

पुस्तकालय संग्रह के आधार पर, तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज का हिंदी विभाग हिंदी भाषा से संबंधित जानकारी साझा करने के लिए एक विश्वव्यापी प्लेटफॉर्म विकसित करने की कोशिश

विशेष संकलनों में उल्लेखनीय हैं; प्रो. गामो की निजी लाइब्रेरी और नवलकिशोर कलेक्शन। प्रो. गामो हिंदुस्तानी विभाग के प्रथम जापानी अध्यापक थे। उनकी लाइब्रेरी में प्रेमचंदजी के उपन्यास गोदान, कर्मभूमि, गबन, गोदान वगैरह के प्रथम संस्करण हैं। 19वीं शताब्दी के विख्यात प्रकाशक मुंशी नवलकिशोरजी (1836-1895) के जमाने में नवलकिशोर प्रेस (लखनऊ) ने 4,000 से अधिक संस्कृत, हिंदी, उर्दू, पारसी और अरबी किताबें प्रकाशित की थीं। उनमें से लगभग 1,000 पुस्तकें हमारे पास ही हैं। ये सब किताबें SARDA (शारदा) कलेक्शन के नाम पर डिजिटैज की गई हैं

जागरण

j Agara N1

अमर-वल्लरी

लेखक—श्रीयुत

j Agara N2

कर रहा है।

यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी का होम पेज और ऑपाक (OPAC)

हमारा पुस्तकालय हिंदी से संबंधित जिस सामग्री को सूचीबद्ध और आर्काइव्ज कर रहा है, उसमें पुस्तकों के अलावा ऐतिहासिक दस्तावेज और मौखिक रिकॉर्डिंग भी शामिल हैं। यह सूचना हमारे बहुभाषी पुस्तकालय-सिस्टम के माध्यम इंटरनेट के जरिए प्रचारित की जा रही है।

> **लाइब्रेरी में हिंदी की सबसे पुरानी पुस्तक है Alphabetum brammhanicum sev indostanum universitatis kasi। असल में यह लैटिन भाषा में लिखी हुई हिंदी व्याकरण ही है, जो 1771 में रोम (इटली) में छपी थी (देखिए, फोटो न. 2)। इसके बाद आएँगी Singhasun butteesee (1805) और General principles of inflection and conjugation in the Bruj B,hak,ha (1811) जो फोर्ट विलियम कॉलेज द्वारा प्रकाशित की गई थीं (देखिए, फोटो न. 3)। लाइब्रेरी में इस कॉलेज की 20 से अधिक किताबें हैं। इनके साथ ही 19वीं शाताब्दी के शुरू में श्रीरामपुर मिशन द्वारा प्रकाशित बाइबिल की अनूदित पुस्तकें भी मौजूद हैं**

आप हमारी लाइब्रेरी के होम पेज और Web Catalogue (OPAC) पर एक बार जरूर नजर डालिए (http://www.tufs.ac.jp/library/index-e.html)। उपर्युक्त दुर्लभ ग्रंथों का डिजिटल डाटा हमारे डाटाबेस *Prometheus* में उपलब्ध है (http://http://repository.tufs.ac.jp/handle/10108/41390)। यहाँ से इसे आवश्यकतानुसार डाउनलोड भी कर सकते हैं।

अंत में

हमें विश्वास है कि हमारा कार्यकलाप हिंदी भाषा के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्त्व को व्यापक रूप से योगदान देगा। इस अवसर पर हम लोग कहना चाहते हैं कि पूरी दुनिया के सभी हिंदी दोस्तों के साथ इन आदर्शों और उद्देश्यों को आगे बढ़ाने और उसमें सहयोग करने ही से हम सम्मानित महसूस करते हैं।

जापान का यह ज्ञान भंडार सिर्फ हिंदी प्रेमियों के लिए ही नहीं, बल्कि दुनिया भर के लोगों के लिए हमेशा खुला ही रहता है और भविष्य में भी खुला ही रहेगा।

हम आशा करते हैं कि हमारी लाइब्रेरी हिंदी भाषा की विकास यात्रा में सार्थक योगदान कर सके। इसके लिए पाठक लोगों से हमारा विनम्र निवेदन है कि भारत संबंधी अध्ययन के भविष्य के लिए पुस्तक संकलन में सहयोग दें। खासकर प्रवासी भारतीय लोगों की रचनाओं की पुस्तकें हमारे यहाँ तक पहुँचाने की कृपा करें।

—प्रो. ताकेशि फुजिइ और श्री क्योसुके आदाची (लेक्चरर),
तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज, जापान
तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज और
भारतीय भाषाओं का अध्ययन-अध्यापन

❑

अपने किए हुए शुभ और अशुभ कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है।

— नारदपुराण

⁂ ⁂ ⁂

भला करनेवाले का भला होता है और बुरा करनेवाले का बुरा।

— सोमदेव

8

इजरायल में हिंदी साहित्य का अध्ययन-अध्यापन—प्राथमिक पग

–डॉ. गेनादी श्लोम्पेर

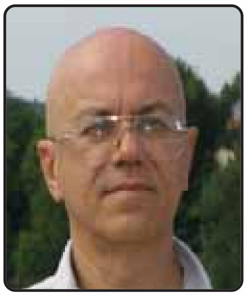

- 1954 में भूतपूर्व सोवियत संघ के नगर ताशकंद में जन्म।
- 1976 में ताशकंद विश्वविद्यालय से हिंदी भाषा और साहित्य में एम.ए की उपाधि।
- 1994 में इजरायल की नागरिकता।
- 2002 में यरुशलम विश्वविद्यालय से हिंदी व्याकरण में डॉक्टरेट।
- आज तक आधारभूत, माध्यमिक और उच्च स्तरीय छात्रों के लिये हिब्रू में हिंदी की छह पाठ्य-पुस्तकें, तीन वार्तालाप की किताबें प्रकाशित। विभिन्न पत्रिकाओं में हिंदी शिक्षण पर आलेख।
- **संप्रति :** तेल-अवीव विश्वविद्यालय के पूर्वी एशिया अध्ययन विभाग में हिंदी प्राध्यापक।

जब भी मैं भारत आता हूँ तो मुझसे सबसे पहले यह प्रश्न पूछा जाता है कि आपका हिंदी के प्रति रुझान कब और कैसे शुरू हुआ? सच तो यह है कि हिंदी से मेरी मुलाकात संयोग से हुई। मुझे स्कूल के बाद विदेशी भाषाएँ सीखकर भाषांतरकार बनने का इरादा था। मुझे यह प्रक्रिया देखना अच्छा लगता था कि विचार शब्दों के माध्यम से एक भाषा से दूसरी भाषा में किस तरह परिवर्तित होते हैं। और मुझे इस बात का कोई फर्क नहीं पड़ता था कि भाषाएँ कौन सी हैं, तो हिंदी का चयन आकस्मिक था। लेकिन ऐसा हुआ कि मैं अपने चयन के बारे में कभी नहीं पछताया। और सिर्फ इसलिए नहीं कि भाषा सुंदर और सुरीली है, कि हिंदी में बात करते समय लगता है कि संगीत गूँजता है, सिर्फ इसलिए भी नहीं कि इसके माध्यम से भावनाएँ व्यक्त करने के कुछ ऐसे साधन मिल जाते हैं जो दूसरी भाषाओं में नहीं मिलते। मुझे हिंदी चुनने से विशेषकर इसलिए संतुष्टि का अनुभव हुआ है कि इसके द्वारा मेरा परिचय एक समृद्ध, अद्वितीय साहित्य से हुआ है।

मगर जब विश्वविद्यालय में मेरी पढ़ाई समाप्त हुई तब से हिंदी साहित्य से मेरा रिश्ता लगातार कमज़ोर होता गया, यहाँ तक कि बिलकुल टूट गया। शुरू-शुरू में मैंने हिंदी, उर्दू और पंजाबी से कई लेखकों की रचनाओं का अनुवाद करके छपवाया। लेकिन कुछ साल बाद यह सिलसिला भी कट गया। विश्वविद्यालय के बाद मैंने जिन जिन संस्थानों में काम किया उन सब में मेरा मुख्य कार्य हिंदी भाषा पढ़ाना ही था और वह भी आधारभूत स्तर पर। पाठों में कभी-कभार ही कुछ साधारण सी लघु कहानियों की नौबत आती थी, बस। यही हाल तेल-अवीव विश्वविद्यालय में भी रहा। यहाँ हिंदी का कोर्स एक अनिवार्य विषय के तौर पर दो साल से जारी रहता है। इन दो सालों के अंदर विद्यार्थी काफी तरक्की करके जब साहित्य पढ़ने के योग्य बन जाते हैं तब कोर्स भी खत्म हो जाता है। लेकिन पिछले साल तीसरे वर्ष के उन छात्रों के लिए, जो हिंदी का गहराई से अध्ययन करना चाहते हैं, एक नया कोर्स चलाया गया, जिसका विषय चुनने में मुझे पूरी स्वतंत्रता मिली। तब मैंने सोचा कि साहित्य से बेहतर कौन सा विषय हो सकता है। लेकिन तीन महीने के कोर्स में हिंदी साहित्य जैसे महासागर को पार नहीं किया जा सकता। इसलिए मैंने इसका सिर्फ एक पहलू चुना, और कोर्स का नाम पड़ा हिंदी कहानी का उद्गम और विकास। मैंने इस कोर्स को खुशी और असमंजस की मिश्रित भावना के साथ आरंभ किया था। खुशी इसलिए कि बहुत साल बाद मुझे फिर हिंदी साहित्य के महासागर में पाँव रखने का अवसर मिला है और असमंजस इसलिए कि हिंदी साहित्य के साथ मेरी यह मुलाकात बहुत साल बाद होनेवाली थी। हम तो दोनों ही बदल गए हैं।

एक-दूसरे को पहचानेंगे कैसे? मैंने तो पिछली सदी के सातवें दशक में अपना प्रशिक्षण पाया था। इसलिए हिंदी साहित्य के बारे में मेरी जानकारी उसी काल तक सीमित रही। इस तरह तीस साल की अवधि मेरी दृष्टि से छुपी रही। फिर इजरायल में इस क्षेत्र में मेरी सहायता करनेवाला कोई नहीं था।

इस सिलसिले में यह बात उल्लेखनीय है कि प्राचीन भारतीय साहित्य का अध्ययन-अध्यापन इजरायल के यरुशलम और तेल-अवीव विश्वविद्यालय में काफी लंबे अरसे से, अर्थात पिछली सदी के सातवें दशक से, किया जाता रहा है। यहाँ मात्र संस्कृत में लिखी रचनाओं का अध्ययन किया जाता रहा है जो भारत के प्राचीन धर्म-दर्शन से संबंधित विभिन्न कोर्सों का अनिवार्य भाग था। वैसे भी इजरायल में भारत के अध्ययन का आरंभ प्राचीन दार्शनिक विचारधाराओं के शोधकार्य से ही हुआ था। और आज भी यही विषय तेल-अवीव और यरुशलम विश्वविद्यालय में कार्यरत अधिकतर शोधकर्ताओं की रुचि का एकमात्र विषय बना रहा है। इसी विषय पर उनकी सब गतिविधियाँ केंद्रित रही हैं और इसी आधार पर हमारे विभाग में 90 प्रतिशत पाठ्यक्रम बना हुआ है। बहुत से प्रतिष्ठित विशेषज्ञ जैसे प्रो. शुल्मन, प्रो. बिदेर्मन, डॉ. ग्रींशपोन, डॉ. बेनतोर, डॉ. रावे भारतीय दर्शन पर सामान्य जानकारी के अतिरिक्त बुद्ध धर्म की विभिन्न धाराओं, न्याय और वैशेषिक, प्राचीन दार्शनिक शंकर की विचारधारा तथा दया कृष्ण जैसे आधुनिक दार्शनिक के विचारों पर व्याख्यान देते हैं। जो छात्र उनके कोर्सों में शामिल होते हैं उनको संस्कृत, तेलुगु, तमिल और तिब्बती भाषाओं में विभिन्न टेक्स्ट पढ़ने पड़ते हैं। यरुशलम विश्वविद्यालय में दक्षिणी भारत की कविता, तेलुगु भाषा में शास्त्रीय कविता, तिब्बत का शास्त्रीय साहित्य, उपनिषद, संस्कृत का थिएटर, संस्कृत का ड्रामा जैसे कोर्स चालू हैं। तेल-अवीव विश्वविद्यालय में महाकथाओं का भारत, बुद्ध धर्म की प्राचीन कविता, बुद्ध धर्म की शिक्षाप्रद कहानियाँ आदि कोर्स पढ़ाए जाते हैं।

विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में आधुनिक भारत का प्रतिनिधित्व इक्के-दुक्के कोर्स ही करते हैं। लेकिन आधुनिक भारत वही विषय है जो पिछले कुछ बरसों के अंदर अधिक-से-अधिक शिक्षार्थियों को आकर्षित करने लगा है। इसी आकर्षण को देखते हुए हिंदी का अध्ययन प्रारंभ किया गया और इसके साथ-ही-साथ आधुनिक भारत के इतिहास, सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था पर नए-नए कोर्स चलाए गए।

इन सब बातों से स्पष्ट होता है कि इजरायली विश्वविद्यालयों में प्राचीन भारतीय साहित्य पढ़ाने की परंपरा काफी पुरानी है, जबकि आधुनिक साहित्य और विशेषकर हिंदी साहित्य का अध्ययन शून्य से शुरू करना पड़ा। इस दिशा में केवल प्राथमिक पग उठाए जाने लगे हैं। मुझे हिंदी साहित्य का कोर्स और उससे संबंधित पाठ्यपुस्तक तैयार करने में काफी पसीना बहाना पड़ा।

लेकिन आज की साहित्यिक आलोचना पढ़ने के बाद मुझे थोड़ा चैन आया। पता चला कि हिंदी कहानी के विकास में जितने भी युग हुए उत्कर्ष का युग, प्रगति और बहुमुखी चेतना का युग, समष्टि चेतना का युग और उनके अंतर्गत जितने भी आंदोलन हुए हैं, जैसे नई कहानी, सचेतन कहानी, अकहानी, समांतर कहानी वे सब पिछली सदी के सातवें दशक तक चलते रहे, और उसी काल तक जो रचनाकार उभरकर आए थे, उन्होंने ही आधुनिक साहित्य की न केवल नींव रखी थी, अपितु इसके विकास की दिशाएँ भी तय कर दी हैं। वास्तव में आधुनिक साहित्य की कोटी उन मापदंडों से मापी जाती है जो पिछली सदी के आरंभ से सातवें दशक की इस अवधि में ही निर्धारित किए गए थे।

श्री अतुल प्रभाकर ने अपने पिता के बारे में बात करते हुए एक बार कहा कि विष्णु प्रभाकर कहा करते थे कि मेरा परिवार बहुत बड़ा परिवार है। मेरे तो अनेक घर हैं। अब तो मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ कि प्रभाकरजी के बारे में जानकारी अपने छात्रों को पहुँचाकर उनके दिलों में उन्हें बसा दूँ। इस तरह इजरायली लोगों के घर भी विष्णु प्रभाकर के घर बन जाएँगे। यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी और हिंदी कहानी की पूरी तसवीर बनेगी।

तब मुझे विश्वास हुआ कि आधुनिक लेखकगण से अपरिचित होने के बावजूद हिंदी साहित्य के बुनियादी सिद्धांतों से मेरा परिचय हो ही चुका था। इस तरह मैंने प्रशांत होकर अधिक आत्म-विश्वास के साथ हिंदी कहानी से संबंधित कोर्स की शुरुआत की। कोर्स के दौरान विद्यार्थी विभिन्न लेखकों के जीवन और रचनाओं के बारे में विस्तृत जानकारी पाते हैं, जिनमें इंशा अल्ला खाँ, गुलेरी, प्रेमचंद, अज्ञेय, यशपाल, मोहन राकेश, कमलेश्वर, हिमांशु जोशी और फणीश्वरनाथ रेणु जैसे सुप्रसिद्ध साहित्यकार सम्मिलित हैं। मैं यह कोशिश करता हूँ कि साहित्य के बारे में पाठ रोचक हों और ऐसा न हो, जैसा कि विष्णु प्रभाकर ने आवारा मसीहा में लिखा था कि बालक शरत का साहित्य से प्रथम परिचय आँसुओं के माध्यम से हुआ। उस समय वह सोच भी नहीं सकता था कि मनुष्य को दु:ख पहुँचाने के अलावा भी साहित्य का कोई उद्देश्य हो सकता है।

पाठों में विद्यार्थी न केवल उन लेखकों के जीवन तथा रचनाओं की चर्चा करते हैं और उनकी कहानियाँ पढ़ते हैं, बल्कि उनकी रचनाओं पर बनी फिल्में भी देखते हैं तथा जहाँ रिकॉर्डिंग उपलब्ध होता है, तो उन्हीं लेखकों के स्वर में उनकी रचनाएँ सुनते हैं। उदाहरण के लिए मैं छात्रों को प्रेमचंद की कहानी बड़े भाई साहब, पूस की रात, फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी तीसरी कसम और कमलेश्वर के उपन्यास काली आँधी पर बनी फिल्में दिखाता हूँ और रिकॉर्डिंग लेकर अज्ञेय की कविताएँ खुद उन्हीं के स्वर में सुनवाता हूँ।

जिन रचनाकारों ने हिंदी कहानी का ढाँचा ढालकर उसे लोकप्रिय विधा बना दिया उनके कुछ प्रतिनिधि आज भी कार्यरत हैं। जैसे हिमांशु जोशी, राजेंद्र यादव। कमलेश्वर का देहांत तो सिर्फ पाँच साल पहले हुआ था, तो पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के साहित्यकारों में ठोस सीमा नहीं रखी जा सकती है। पुरानी पीढ़ी के लेखक जो मूल्य लेकर आए थे वे आज के साहित्य को भी प्रभावित कर रहे हैं, उसके मार्गदर्शक बने रहे हैं। समय के अभाव के कारण मैंने अपने कोर्स में केवल एकाध गिने-चुने साहित्यकारों को सम्मिलित किया है। मुझे हमेशा यह आशा रहती है कि आनेवाले बरसों में घंटों की संख्या बढ़ती जाएगी और मैं हिंदी कहानी से संबंधित इस कोर्स में कुछ और महारथियों को, यहाँ तक कि रामधारी सिंह दिनकर को, सम्मिलित कर लूँगा। दिनकर मूल रूप में कवि थे, और जहाँ तक मुझे मालूम है, उनकी कहानियों का एक ही संग्रह उजली आग प्रकाशित हुआ। लेकिन मेरे विचार में उनकी लघु कहानियों की दार्शनिकता और निष्ठा ने हिंदी कहानी की माला को नए रंगों से सँजोया है।

शिक्षार्थियों को यह कोर्स पसंद आया। इसका अंदाज़ा मैंने इस बात से लगाया है कि छात्रों ने लेखकों की जीवनियों तथा उनकी रचनाओं का अध्ययन बड़ी दिलचस्पी के साथ किया। कोर्स के अंत में मैंने हर छात्र के सामने यह प्रस्ताव रखा कि वह इस कोर्स में प्राप्त जानकारी के आधार पर किसी ऐसे लेखक पर विश्लेषणात्मक आलेख प्रस्तुत करे जो हमारे एक सत्र के कोर्स में सम्मिलित नहीं है, और आलेख के साथ उस लेखक की किसी कहानी का हिब्रू में अनुवाद भी जोड़ दिया जाए। मानता हूँ कि यह काम चुनौती भरा था। छात्रों ने यह काम स्वीकार किया और बड़ी सफलता के साथ पूर्ण किया।

लेकिन अधिक घंटे मिले या न मिले, मैंने एक और लेखक को अगले साल के अपने पाठ्यक्रम में शामिल करने का निश्चय कर ही लिया। और ये हैं विष्णु प्रभाकर। हिंदी साहित्य के किसी भी प्रेमी को मेरे इस निश्चय से आश्चर्य नहीं होगा। शायद ही कोई ऐसा आदमी मिले जो हिंदी साहित्य में विष्णु प्रभाकर के योगदान पर संदेह व्यक्त करे। फिर भी प्रतिष्ठित हिंदी साहित्यकारों की सूची बहुत लंबी है और उनमें से किसी एक को प्राथमिकता देने के पीछे कोई विशेष कारण होना चाहिए। इस कारण को मुझे समझाना पड़ेगा।

13 सितंबर, 2012 को मेरठ के चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय में हिंदी दिवस के मौके पर हिंदी विभाग द्वारा श्री विष्णु प्रभाकर के 100 वर्ष पूर्ण होने पर गोष्ठी आयोजित की गई थी जिसमें भाग लेने का अवसर मुझे भी मिला। गोष्ठी अनेक वरिष्ठ साहित्यकारों, शिक्षकों और शोधार्थियों के सहयोग से बड़ी सफलता के साथ संपन्न हुई। मैंने संगोष्ठी में जो बातें सुनीं, उनसे स्पष्ट तौर पर पता चला कि विष्णु प्रभाकर की कृतियों के प्रति भारतीय लोगों की रुचि और उनका प्यार पहले की तरह ज़ोरदार बना रहा है।

हाँ प्रभाकरजी उन लेखकों में से नहीं थे जिन्होंने हिंदी कहानी में कोई नया आंदोलन चलाया है, लेकिन वे भारतीय भाषाओं के समन्वय के आंदोलन के अगुवा जरूर थे। वे एक ऐसे लेखक हैं जो देश के कोने-कोने में लोकप्रिय रहे हैं, जिनकी रचना आवारा मसीहा ने बंगालियों को हिंदी में पढ़ने के लिए प्रेरित किया।

विष्णु प्रभाकर ने तो खूब कहानियाँ लिखी हैं। उनके अनेक कहानी संग्रह निकले हैं। वे आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रवर्तकों में से एक हैं और साथ-ही-साथ समकालीन लेखकों में से एक। वैसे तो यूँ कहा जा सकता है कि वे चार पीढ़ियों को जोड़ते हैं। उनकी कहानी धरती अब भी घूम रही है जो बहुत साल पहले लिखी गई थी, लेकिन आज भी प्रासंगिक है। उनके उत्कृष्ट लेखन ने उनकी एक अलग पहचान बनाई है और हिंदी कहानी की माला में एक बहुत महत्त्वपूर्ण तथा सुंदर कड़ी जोड़ दी है।

मैं भाषा का अध्यापक हूँ और मेरे लिए साहित्य लक्ष्य नहीं, माध्यम है तथा मैं हर लेखक की रचनाओं को उसकी भाषा की दृष्टि से देखता हूँ। इस दृष्टि से विष्णु प्रभाकर की कृतियाँ अद्भुत हैं। पढ़नेवाला उनकी भाषा और शैली से मुग्ध हो जाता है। गोष्ठी में भाग लेने से मुझे प्रभाकरजी के विशाल व्यक्तित्व को समझने में मदद मिली है। इसलिए मैंने निर्णय लिया है कि अगले साल अतिरिक्त घंटों का इंतजार किए बिना मैं विष्णु प्रभाकर से संबंधित एक अध्याय अपने पाठ्यक्रम में जरूर जोड़ूँगा।

श्री अतुल प्रभाकर ने अपने पिता के बारे में बात करते हुए

एक बार कहा कि विष्णु प्रभाकर कहा करते थे कि मेरा परिवार बहुत बड़ा परिवार है। मेरे तो अनेक घर हैं। अब तो मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ कि प्रभाकरजी के बारे में जानकारी अपने छात्रों को पहुँचाकर उनके दिलों में उन्हें बसा दूँ। इस तरह इजरायली लोगों के घर भी विष्णु प्रभाकर के घर बन जाएँगे। यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी और हिंदी कहानी की पूरी तसवीर बनेगी।

जून 2012 में हिंदी कहानी का कोर्स समाप्त हुआ। अब तो इस कोर्स के पहले परिणाम भी देखे जा सकते हैं। प्रथम तो यह बात उल्लेखनीय है कि शिक्षार्थियों को यह कोर्स पसंद आया। इसका अंदाज़ा मैंने इस बात से लगाया है कि छात्रों ने लेखकों की जीवनियों तथा उनकी रचनाओं का अध्ययन बड़ी दिलचस्पी के साथ किया। कोर्स के अंत में मैंने हर छात्र के सामने यह प्रस्ताव रखा कि वह इस कोर्स में प्राप्त जानकारी के आधार पर किसी ऐसे लेखक पर विश्लेषणात्मक आलेख प्रस्तुत करे जो हमारे एक सत्र के कोर्स में सम्मिलित नहीं है, और आलेख के साथ उस लेखक की किसी कहानी का हिब्रू में अनुवाद भी जोड़ दिया जाए। मानता हूँ कि यह काम चुनौती भरा था। छात्रों ने यह काम स्वीकार किया और बड़ी सफलता के साथ पूर्ण किया।

उदाहरण के लिए मीखाल एर्लीख ने मुझे प्रसिद्ध व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई के जीवन और रचनाओं के बारे में बहुत ही उम्दा काम पेश किया है, जिसके साथ परसाई की कहानी लंका विजय के बाद राम-राज का अनुवाद भी जुड़ा था। एक और छात्रा यहव बेन-शित्रित ने राजेंद्र यादव को और लीताल हिंदी ने सआदत हसन मंटो को अपने शोधकार्य का विषय बनाया। लीताल हिंदी मंटो की कहानियों से इतनी प्रभावित हुई है कि, लगता है, ये कहानियाँ इसके आनेवाले शोध का प्रसंग बन सकती हैं।

मेरा भी एक सपना है कि आधुनिक हिंदी साहित्य का अनुशीलन मेरे कई छात्रों के जीवन का लक्ष्य बन जाए और वे भी मेरी तरह इस कार्य का आनंद ले सकें।

6 अक्तूबर, 2012

—तेल-अवीव विश्वविद्यालय, इजरायल

इ-मेल : genady.shlomper@gmail.com

❑

दंड देने की शक्ति होने पर भी दंड न देना सच्ची क्षमा है।

—महात्मा गांधी

⁂

गलती करना मानवीय है, किंतु क्षमा करना दिव्य है।

—अलेक्जेंडर पोप

⁂

क्रोध से कीर्ति नष्ट होती है और क्रोध स्थिर लक्ष्मी का भी नाशक है।

—मत्स्यपुराण

नॉर्वे में हिंदी

–सुरेश चन्द्र शुक्ल 'शरद आलोक'

किसी भी देश में हिंदी की स्थिति जानने के लिए उस देश की भौगोलिक स्थिति और वहाँ की मूल भाषा तथा संस्कृति के बारे में जान लेना जरूरी है।

नॉर्वे विश्व के सबसे उत्तर भाग में बसा देश है। ''नार वे'' अंग्रेज़ी में इसका अर्थ है—'नार = उत्तर' और 'वे = रास्ता', 'उत्तर का रास्ता'। यहाँ लोगों ने हज़ारों वर्षों में आर्कटिक सागर के लिए मार्ग बनाया। अधिकतर नॉर्वेवासी समुद्र के पास रहते हैं। यह सिलसिला नौ-दस हज़ार वर्ष से चला आ रहा है। उत्तर में सामी लोग रहते हैं, जिनकी अपनी संस्कृति और भाषा है।

हज़ार साल पहले वीकिंग (समुद्री डाकू) विदेशी समुद्री तटों पर आते रहे। अटलांटिक समुद्र बोर्ड पर नॉर्वे ने राज्य किया और आज भी नॉर्वे और आइसलैंड के मध्य समुद्र को 'नॉर्वेजीय समुद्र' कहा जाता है। नॉर्वे का नगर 'हामेरफेस्ट' विश्व का सबसे अधिक उत्तर में बसनेवाला नगर है और यहाँ पर ही नार्थ केप है।

नॉर्वे की सीमा स्वीडन, फिनलैंड और रूस से लगी है। नॉर्वे में 53.000 किलोमीटर सड़कें, 17,300 पुल और 830 सुरंगें हैं। यहाँ का लैंडस्केप देखते नहीं बनता है, नॉर्वे आनेवाले यात्री यहाँ के लैंडस्केप और आइसलैंड के मध्य बने पुलों और सुरंगों का सौंदर्य देखकर खुशी से दाँतों तले अंगुलियाँ दबा लेते हैं। नॉर्वे में छोटी पट्टीवाले 50 एयरपोर्ट हैं। नॉर्वे में अधिकांश कार्गो-सामान की ढुलाई समुद्री-यातायात से होती है। कृषि में दूध, चीज़-पनीर, और मांसाहार पैदा होता है, जिसका निर्यात भी किया जाता है। नॉर्वे विश्व का सबसे बड़ा मछली उत्पादक और मछली निर्यातक देश है। नॉर्वे छोटे-छोटे उद्योगों वाला देश है। यहाँ सस्ता हाइड्रोइलेक्ट्रिक पावर उपलब्ध है। नॉर्वे गैस और कच्चे तेल का भी निर्यातक है। दूसरे विश्वयुद्ध के समय नॉर्वे विश्व का सबसे बड़ा समुद्री-मालवाहक देश था। नॉर्वेजीय लोगों के पास सबसे अधिक पानी के जहाज थे। नॉर्वे विश्व में बड़े मालवाहक पानी के जहाजों वाला देश बना हुआ है। समुद्री-जहाज (यातायात) में नॉर्वे के मानवीय मूल्यों और उच्च स्तर को दुनिया में सराहा जाता है।

नॉर्वे में पार्लियामेंट (संसदीय प्रणाली) को आरंभ हुए सौ वर्ष से अधिक हो चुके हैं। नॉर्वेजीय पार्लियामेंट में 165 सांसद हैं, जिन्हें अनेक राजनैतिक दलों का प्रतिनिधित्व प्राप्त है। 18 वर्ष के नागरिक को वोट देने का अधिकार है। महिलाओं को वोट देने का अधिकार 1913 में मिला। महिलाओं और पुरुषों को समान अधिकार प्राप्त हैं और नॉर्वेजीय पार्लियामेंट में चालीस प्रतिशत से अधिक महिलाओं को देखा जा सकता है।

राजा की कोई स्वतंत्र राजनैतिक भूमिका नहीं है, परंतु देश के प्रतीक के रूप में उपस्थित है। पुलिस और सेना आदि के सभी मामले

- **जन्म :** 10 फरवरी, 1954
- 33 वर्षों से नार्वे में प्रवास।
- **शिक्षा :** पत्रकारिता एवं अर्थशास्त्र (पी-एच.डी.) नार्वेजीय साहित्य में। चुना हुआ स्कैंडिनेवियाई साहित्य। मुद्रण कला।
- नार्वे में पत्रकारिता की शिक्षा प्राप्त करनेवाले पहले भारतीय।
- **संप्रति :** संपादक—'परिचय' (1980-1985), 'स्पाइल-दर्पण' (1987 से प्रकाशित) एवं 'वैश्विका' (1907 से प्रकाशित); सभी पत्रिकाएँ ओस्लो, नार्वे से प्रकाशित।
- **पत्रकार :** आकेर्सआवीस गुरुददालेन, ओस्लो। (नार्वेजीय भाषा का समाचार पत्र)।
- विदेशों में रहनेवाले हिंदी लेखकों में परिचित नाम। सुरेशचंद्र शुक्ल 'शरद आलोक' की विदेशी पृष्ठभूमि पर लिखी रचनाओं से हिंदी कविता को एक नया आयाम मिला है। मानवतावादी रचनाओं के लिए आप जाने जाते हैं।
- **राजनीति :** पूर्व ओस्लो नगर पार्लियामेंट के सदस्य (2004-2007)। वर्तमान में लेबर पार्टी (बिएर्के आरबाईदर पार्टी) में कार्यकारिणी एवं चुनाव समिति के सदस्य (2012-13)।

संसद और संबंधित मंत्रियों की अधिकार-सीमा में आते हैं।

अनेक शताब्दियों के विदेशी शासन के बाद 17 मई, 1814 को नॉर्वे ने अपना संविधान बनाया और लागू किया। 17 मई नॉर्वे का राष्ट्रीय दिवस बन गया। इसे बच्चों के साथ मनाया जाता है। 17 मई स्कूल के बच्चों और युवाओं, स्कूल-बैंड, राष्ट्रध्वजों (झंडों) के साथ राजा के महल के सामने राजधानी ओस्लो में मनाया जाता है। नॉर्वे एक समाज-कल्याण (वेल्फेयर स्टेट) वाला देश है। स्वास्थ्य और सामाजिक सेवाएँ निशुल्क हैं। बच्चों वाले परिवार आर्थिक सहायता प्राप्त करते हैं और हर व्यक्ति को निम्नतम पेंशन का प्रावधान है।

नॉर्वे में दो बच्चों के ठेठ (विशिष्ट) परिवार हैं। बहुत से माता-पिता के केवल एक ही संतान है। बहुत से लोग अकेले रहते हैं।

46 लाख की आबादी वाले नॉर्वे में 40 करोड़ पुस्तकें प्रति वर्ष बिकती हैं।

नॉर्वे में भाषा–

नॉर्वे की भाषा नॉर्वेजीय है : नीनोर्श्क और बुकमोल। सामी लोगों की भाषा सामी है। ऐसा कहा जाता है कि नीनोर्श्क और बुकमोल जर्मन परिवार की भाषा है, जो इंडो-यूरोपीय भाषा से जन्मी है।

नॉर्वे में कोई भी समाचार पत्र अंग्रेज़ी भाषा में नहीं छपता। सभी समाचारपत्र नॉर्वेजीय में छपते हैं।

नॉर्वे में हिंदी पत्रिकाएँ : पिछले चार वर्षों से नॉर्वे में हिंदी की दो पत्रिकाएँ छपती हैं :'स्पाइल-दर्पण' और 'वैश्विका'।

'स्पाइल-दर्पण' द्वैमासिक है और 'वैश्विका' अनियमित है और दोनों ही राजधानी ओस्लो से ही प्रकाशित होती हैं। 'स्पाइल-दर्पण' का प्रकाशन 1988 में आरंभ हुआ, जो आज भी निरंतर छप रहा है।

'स्पाइल-दर्पण' के संपादक ने पत्रिका का शुभारंभ 1988 से किया और आज भी इस पत्रिका का प्रकाशन उन्हीं के द्वारा जारी है। 2008-09 में लखनऊ विश्वविद्यालय से प्रो. योगेंद्र प्रताप सिंह की छात्रा गरिमा तिवारी द्वारा 'स्पाइल-दर्पण' पर एक शोध किया जा चुका है। 'स्पाइल-दर्पण' नॉर्वे से निकलने वाली हिंदी की द्वैमासिक व द्वैभाषिक पत्रिका है। साथ ही पत्रिका ने 2009 से भारत में रंगमंच के क्षेत्र में रंगकर्मियों को सम्मानित करना आरंभ किया है। 29 दिसंबर, 2009 को 'स्पाइल-दर्पण' ने लखनऊ उत्तर प्रदेश में आनंद शर्मा के निर्देशन में खेले जानेवाले सुप्रसिद्ध नाटक 'गुड़िया का घर' का सुरेशचंद्र शुक्ल 'शरद आलोक' द्वारा किए अनुवाद को खेलने वाले सभी रंगकर्मियों को उमानाथ रायबली हॉल में पुरस्कृत और सम्मानित किया गया।

'परिचय' नॉर्वे की ही नहीं बल्कि स्कैनडिनेवियाई देशों (नॉर्वे, स्वीडन, डेनमार्क, फिनलैंड और आइसलैंड) की प्रथम हिंदी पत्रिका थी, जिसका संपादन मैंने हिंदी में 1980 से 1985 तक किया। 'परिचय' हिंदी और पंजाबी भाषा में मूलतः छपती थी, जिसमें अंग्रेज़ी के भी पृष्ठ होते थे। इसका प्रकाशन 1978 में आरंभ हुआ था। पिछले 7 वर्षों से केवल एक ही पत्रिका नॉर्वे से हिंदी में छप रही है और वह है 'स्पाइल-दर्पण'। इंदरजीत पाल ने भी 'प्रवासी' नाम से एक वार्षिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया है।

'वैश्विका' का प्रकाशन 2007 में शुरू हुआ। इसके अलावा अनेक पत्रिकाएँ नॉर्वे से प्रकाशित होती रहीं। 'स्पाइल-दर्पण' का लोकार्पण जोहांसबर्ग, दक्षिण अफ्रीका में संपन्न विश्व हिंदी सम्मलेन में मॉरीशस के कला व संस्कृति मंत्री, माननीय मुकेश्वर चुन्नी, सांसद और लेखक सत्यव्रत चतुर्वेदी तथा भारत की विदेश राज्यमंत्री, माननीय श्रीमती प्रनीत कौर ने संयुक्त रूप से समापन समारोह में किया था।

नॉर्वे में 1980 के पूर्व हिंदी की स्थिति : 26 जनवरी, 1980 को जब मैं नॉर्वे आया था, मैंने सुना था कि बहुत वर्ष पहले कोलकाता से प्रो. बराल नॉर्वे आए थे, जो योगी थे। बाद में उन्होंने एक नॉर्वेजीय युवती से शादी कर ली थी, जिनसे एक लड़की ने जन्म लिया था। यह संभवतः 90 वर्ष पहले की बात होगी। भारतीय घुमक्कड़ स्वभाव के होते हैं। भारतीय किसी-न-किसी रूप में यहाँ आया करते हैं। महेश योगी भी नॉर्वेवासियों में परिचित नाम है। इन लोगों ने नॉर्वेवासियों को भजन और योग के सहारे हिंदी में भजन और संस्कृत में श्लोक सिखाए।

यहाँ भारतीयों का आना सन् 1975 के आसपास शुरू हुआ। इस समय नॉर्वे में 11000 भारतीय नॉर्वे में निवास करते हैं। यहाँ बसे भारतीय भारत के विभिन्न प्रांतों से हैं : पंजाब, उत्तर प्रदेश, बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, केरल, उड़ीसा, झारखंड, मध्य प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान आदि से हैं। जब ये भारतीय आपस में मिलते हैं तो हिंदी बोलना पसंद करते हैं। हिंदी प्रवासियों की संपर्क भाषा है। यहाँ हिंदी का वातावरण नहीं है। मूलतः यहाँ भारतीय आप्रवासियों का आगमन अच्छी नौकरी और वेतन के कारण हुआ है। भाषा, प्रचार, लेखन आदि आप्रवासियों की प्राथमिकताओं में कम ही रहा है। पर जैसे-जैसे समय बीत रहा है, लोगों को समझ में आना शुरू हो गया है कि यदि अपने बच्चों को हिंदी या भारतीय संस्कार न सिखाए गए तो ये बच्चे आज न केवल अपनी संस्कृति से दूर होंगे वरन् अपने परिवार और माता-पिता से भी दूर होंगे और अपने पूर्वजों के देश में संवाद नहीं कर सकेंगे।

यह अनुभव तीव्र हुआ कि भाषा हमें अपनी जड़ों से जोड़ती है और प्रतिक्रिया स्वरूप हिंदी का पठन-पाठन अब बढ़ने लगा है।

नॉर्वे में हिंदी का पठन-पाठन : सन् 1980 में जब मैं नॉर्वे आया तो भारतीय दूतावास में दूतावास की सहायता से हिंदी की कक्षाएँ चलाने लगा, फिर स्कूल में हिंदी मातृभाषा के रूप में पढ़ाई जाने लगी। सन् 1993 में बजट की कटौती में हिंदी और अन्य मातृभाषाओं की शिक्षा प्रतिबंधित हो गई। ऐसे में हिंदी केवल (हिंदी मातृ भाषा वाले छात्रों के शिक्षण में)सहयोग की भाषा बन गई। उदाहरणार्थ, यदि किसी छात्र को कोई विषय न समझ आ रहा हो तो दो अध्यापकों द्वारा, जिसमें मातृभाषा का शिक्षक भी सम्मिलित होता था, उसे वह विषय समझाया जाता ताकि बच्चे को समझने में सुविधा हो।

नॉर्वे की राजधानी में ओस्लो विश्वविद्यालय में हिंदी के पठन-पाठन की व्यवस्था है। जर्मन मूल के प्रोफेसर क्लाउस जोलर विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाते हैं। रुथ स्मिथ अवकाश प्राप्त हो चुकी हैं। फिन थीसेन डेनमार्क और नॉर्वे में हिंदी पढ़ा चुके हैं और वह अब भी विश्वविद्यालय में कभी-कभी हिंदी और मूल रूप से पारसी के अध्यापक हैं। स्वर्गीय क्नुत क्रिस्तियानसेन बहुत वर्षों तक हिंदी और नेपाली पढ़ा चुके हैं।

नॉर्वे के स्कूलों में कोई छात्र या छात्रा अतिरिक्त विषय के रूप में मातृभाषा के अंतर्गत कक्षा नौ या दस में हिंदी की परीक्षा दे सकता है। हिंदी में अच्छे अंक आने से उसके योग अंक का प्रतिशत भी बेहतर होता है जो अच्छे स्कूल और विषयों में प्रवेश लेने में मदद करता है।

ओस्लो में संगीता शुक्ला सीमोनसेन के नेतृत्व में हिंदी स्कूल चलता है, जिसमें कक्षा एक से आठ तक की हिंदी में शिक्षा की व्यवस्था है। संगीता शुक्ला सीमोनसेन ने नौ वर्ष की आयु में दो कविताएँ हिंदी में लिखी थीं और उन्हीं कविताओं को नॉर्वेजीय भाषा में भी लिखा था, जो नॉर्वे की एक पुस्तक में संकलित है। अब वे स्पाइल के नॉर्वेजीय भाषा के बाल और युवा जगत की संपादक हैं। मीना ग्रोवर भी अपने घर पर बच्चों को निजी रूप से हिंदी पढ़ाती हैं। नॉर्वे के स्कूलों में यदि कोई छात्र या छात्रा चाहे तो अतिरिक्त विषय के रूप में मातृभाषा के अंतर्गत कक्षा नौ या दस में हिंदी की परीक्षा दे सकता है। हिंदी में अच्छे अंक आने से उसके योग अंक का प्रतिशत भी बेहतर होता है, जिससे अच्छे स्कूल और विषयों में प्रवेश लेने में मदद मिलती है।

आलेख के लेखक ने स्वयं सोशलिस्ट लेफ्ट पार्टी में हिंदी, पंजाबी और तमिल भाषा को जर्मन, फ्रेंच और स्पेनिश की भाँति स्कूलों में पढ़ाए जाने को लेकर एक प्रस्ताव पारित कराया। अब अन्य राजनैतिक पार्टियाँ भी ऐसा ही करें तो हिंदी भी अन्य अंतर्राष्ट्रीय यूरोपीय भाषाओं की तरह पढ़ी जा सकेगी।

नॉर्वे के अनेक स्कूलों में मातृभाषा या सहयोगी अध्यापक के रूप में हिंदी के अध्यापक कार्य कर रहे हैं।

हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों की प्राप्ति–

नॉर्वे में हिंदी की पत्र-पत्रिकाएँ यहाँ पुस्तकालय से और दुकानों में खरीदने को मिल जाती हैं। ओस्लो के दायकमांस के पुस्तकालय में हिंदी की पुस्तकें आसानी से पढ़ने को मिल जाती हैं। यहाँ पर 'स्पाइल-दर्पण' पत्रिका भी उपलब्ध है।

यहाँ श्रीलंकावासियों के व्यवसायों और एशियन दुकानों पर अक्सर हिंदी की पत्र-पत्रिकाएँ भी मिल जाती हैं।

नॉर्वे में हिंदी की गोष्ठियाँ–

भारतीय-नॉर्वेजीय सूचना और सांस्कृतिक फोरम हर महीने एक गोष्ठी का आयोजन करती है, जिसमें हिंदी में कविता, विचार और कहानियाँ सुनाई जाती हैं। गोष्ठी में साहित्यिक और साहित्येत्तर पृष्ठभूमि से आए लोग भाग लेते हैं। इन गोष्ठियों के माध्यम से लोगों में हिंदी के प्रति समझ बढ़ रही है। एक मंच है, जहाँ अपनी भाषा में विचार प्रकट किए जा सकते हैं। जब लेखक, साहित्यकार या राजनीतिज्ञ भारत से आते हैं तो उन्हें भी गोष्ठियों में आमंत्रित किया जाता है। गोष्ठी को रोचक बनाने के लिए अक्सर संगीत को भी सम्मिलित किया जाता है। महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू, हेनरिक इबसेन, मुंशी प्रेमचंद का जन्मदिन, अंतर्राष्ट्रीय पुस्तक दिवस, मानवता दिवस और त्योहार मनाए जाते हैं।

भारत-नॉर्वे लेखक सेमिनार

भारत-नॉर्वे लेखक सेमिनार का आयोजन वर्ष में एक बार किया जाता है, जिसमें भारत से चार-पाँच हिंदी लेखक यहाँ आते हैं और अपने-अपने लेख प्रस्तुत करते हैं। इसमें नॉर्वेजीय लेखक भी भाग लेते हैं। ओस्लो विश्वविद्यालय और अन्य शैक्षिक सांस्कृतिक संस्थानों को भी आमंत्रित किया जाता है। कार्यक्रम का संचालन हिंदी और नॉर्वेजीय भाषा के माध्यम से होता है।

नॉर्वे में हिंदी रचनाकार–

सुरेशचंद्र शुक्ल 'शरद आलोक'

आप महात्मा गांधी को अपना आदर्श मानते हैं। आपके सात काव्य संग्रह हिंदी में और दो नॉर्वेजीय में प्रकाशित हो चुके हैं। दो

कहानी संग्रह हिंदी में और एक उर्दू में प्रकाशित हो चुका है। आपने दो नाटक लिखे हैं।

आपके चर्चित कविता संग्रहों में 'रजनी', 'नंगे पाँवों का सुख' और 'नीड़ में फँसे पंख' और कहानी संग्रह में 'अर्धरात्रि का सूरज' है। अनुवाद में चर्चित कृति 'गुड़िया का घर' है। आपने नॉर्वेजीय साहित्य का प्रचुर मात्रा में हिंदी में अनुवाद किया है। हेनरिक इबसेन के नाटकों 'गुड़िया का घर', 'मुर्गाबी' और क्नुत हामसुन के उपन्यास 'भूख' तथा नॉर्वे और डेनमार्क के एच.सी. अंदर्सन की लोककथाओं का अनुवाद किया है। अनेक संकलनों का संपादन और अनेक एंथोलॉजियों में आपकी रचनाएँ संगृहीत हैं। आप की कृतियों पर शोध भी हो रहे हैं। आपकी कथाओं पर तीन टेलीफ़िल्में बन चुकी हैं। नॉर्वेजीय लेखक यूनियन, हिंदी अकादमी, दिल्ली और चौथे विश्व हिंदी सम्मलेन, मॉरीशस और छठे विश्व हिंदी सम्मलेन, लंदन, यू.के., अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति और विश्व हिंदी समिति यू.एस.ए., अहिंसम भारतीय मैनचेस्टर और यू.के. हिंदी समिति, लंदन ने आपको पुरस्कृत किया है।

माया भारती

आपने कविताएँ लिखी हैं। आप नॉर्वे से साहित्यिक समाचार आदि लिखती रहती हैं तथा 'स्पाइल-दर्पण' के संपादक मंडल की सदस्या भी हैं। आपकी अनेक रचनाएँ 'परिचय', 'स्पाइल-दर्पण', 'अनुभूति नेट पत्रिका' और 'वैश्विका' में प्रकाशित हो चुकी हैं। आप 'वैश्विका' नाम से ब्लॉग में भी लिखती हैं। नॉर्वे में होनेवाले कार्यक्रमों की सूचनाएँ कई पत्र-पत्रिकाओं में भेजती हैं। सोनांचल साहित्यकार संस्थान, सोनभद्र उत्तर प्रदेश, भारत द्वारा आपको सम्मानित भी किया गया है।

पूर्णिमा चावला

स्वर्गीय पूर्णिमा चावला हिंदी अध्यापिका थीं और कविताएँ भी लिखती थीं। आपका एक कविता-संग्रह 'कभी-कभी लगता है' उनके मरणोपरांत प्रकाशित हुआ। आप एक अनुवादक भी थीं। आपने नॉर्वेजीय कहानियों का अनुवाद किया था, जो पुस्तक के रूप में स्टार पब्लिकेशंस से प्रकाशित हुआ है।

हरचरण चावला

स्वर्गीय श्री हरचरण चावला मूलतः उर्दू में लिखते थे, परंतु इनकी दो हिंदी पुस्तकें मैंने पढ़ी हैं। कहानी संग्रह 'आखिरी कदम के पहले' और 'एलबम यादों की' हिंदी में प्रकाशित हुई थीं। इनकी रचनाएँ उर्दू की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थीं। आपने नॉर्वेजीय अनुवादकों की सहायता से 'नॉर्वेजीय पुस्तक क्लब' से प्रकाशित एक संकलन 'इंडिया फोर्तेल्लर' का संपादन किया, जिसका हिंदी के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

चावलाजी ने भारतीय अनुवादकों सुरजीत, कुर्शीद आलम और अन्य की सहायता से अनुवाद किए और प्रकाशित किए हैं।

इंदर खोसला

इंदर खोसला शौकिया कविताएँ लिखते हैं। इनकी कविता में उर्दू का बाहुल्य है, साथ ही इन्होंने हिंदी में आप बीती पुस्तकें, गद्य में दो पुस्तकें लिखी हैं, 'क्या खोया क्या पाया' और 'मैं चला विदेश'। आपको भारतीय-नॉर्वेजीय सूचना और सांस्कृतिक फोरम, नॉर्वे ने सम्मानित भी किया है।

राजेंद्र प्रसाद शुक्ल

राजेंद्र प्रसाद शुक्ल ने अपनी साइकिल यात्रा पर दो पुस्तकें लिखी थीं। उन्होंने कुछ कविताएँ भी बालकाल में लिखी थीं। शुक्लजी विश्व हिंदू परिषद् के कार्यकर्ता हैं। इन्होंने धार्मिक पत्रिका 'सनातन मंच' पत्रिका का प्रकाशन किया था, जो सनातन मंदिर सभा के तत्त्वावधान में छपती थी। वे 'परिचय' से भी जुड़े रहे।

मीना ग्रोवर

मीना ग्रोवर मूलतः कवयित्री हैं। आप संगीत और योग-साधना भी जानती हैं। हिंदी का अध्यापन भी करती हैं। आप हिंदी की अच्छी जानकार हैं और विश्वविद्यालय में भी हिंदी पढ़ा चुकी हैं। आपकी कविताएँ 'स्पाइल-दर्पण' में छपती रहती हैं।

राय भट्टी

राय भट्टी पंजाबी के एक अच्छे कवि हैं। उनकी कई कविताएँ अनेक एंथोलॉजी में आई हैं। आपकी कविताओं में प्रायः गंभीरता होती है, जो उन्हें विशेषता प्रदान करती है। भट्टीजी को पंजाबी भाषा और साहित्य की अच्छी समझ है। 'स्पाइल-दर्पण' में उनकी कविताएँ प्रकाशित हुई हैं। वे पंजाबी में एक अच्छे मंच संचालक भी हैं। उनको भारतीय-नॉर्वेजीय सूचना और सांस्कृतिक फोरम, नॉर्वे ने सम्मानित भी किया है।

शिखा चंद्रा

शिखा चंद्रा ने कई कविताएँ लिखी हैं। वे एक नृत्य स्कूल का संचालन भी करती हैं। नृत्य के क्षेत्र में शिखा चंद्राजी ने काफी प्रसिद्धि प्राप्त की है।

अरुणा शुक्ला

अरुणा शुक्लाजी की रुचि गद्य लेखन में है। उन्होंने पाँच कहानियाँ लिखी हैं, जो 'परिचय' और 'स्पाइल-दर्पण' में प्रकाशित हुई हैं।

इंदरजीत पाल

इंदरजीत पाल मूलत: पंजाबी में लिखते हैं, परंतु उन्होंने हिंदी में भी कविताएँ लिखी हैं। उनकी कविताओं में उर्दू और पंजाबी भाषा के शब्दों का बाहुल्य है। 'स्पाइल-दर्पण' में उनकी कविताएँ प्रकाशित हुई हैं। आपको भारतीय-नॉर्वेजीय सूचना और सांस्कृतिक फोरम, नॉर्वे ने सम्मानित भी किया है।

मीनाक्षी जौहर

मीनाक्षी जौहर ने बचपन और स्कूल के समय में काफी कविताएँ लिखी हैं।

कैलाश राय

कैलाश राय ने भी बचपन और स्कूल समय में कविता लिखी हैं। दो कविताएँ 'स्पाइल' में छपी हैं। आपने ओस्लो से 'त्रिवेणी' नामक पत्रिका का संपादन और प्रकाशन शुरू किया था। आप नॉर्वे की प्रथम पत्रिका 'परिचय' की संपादक रह चुकी हैं (1979)।

अलका भटनागर

अलका भटनागर ने शौकिया दो-तीन कहानियाँ लिखी हैं। आपकी रचनाएँ 'त्रिवेणी' और 'स्पाइल' में प्रकाशित हुई हैं।

पूनम शर्मा और संगीता शुक्ला सीमोनसेन नॉर्वे की नवोदित रचनाकार हैं। संगीता शुक्ला सीमोनसेन की नौ वर्ष की आयु में दो कविताएँ प्रकाशित हो चुकी हैं और उन्होंने हिंदी स्कूल के लिए पाठ्य पुस्तक लिखी है। पूनम शर्मा की पहली कविता 'स्पाइल-दर्पण' में छपी है। इसके अलावा नॉर्वे में सिलेश कुमार भी अच्छी कविताएँ लिखते हैं। वह दो वर्षों से नॉर्वे में रह रहे हैं।

नॉर्वे से हिंदी ब्लॉगर

नॉर्वे से हिंदी में लिखने वाले ब्लॉगर में माया भारती, अनुराग विद्यार्थी और स्वयं लेखक है। लेखक के हिंदी, नॉर्वेजीय और अंग्रेज़ी में अलग-अलग ब्लॉग हैं।

नेट पत्रिका

नेट पत्रिका www.speil.no नॉर्वे से प्रकाशित हिंदी और नॉर्वेजीय भाषा की एकमात्र संयुक्त नेट पत्रिका है।

—सुरेशचंद्र शुक्ल 'शरद आलोक'
ग्रेवलीनवीन 2जी 0595-ओस्लो, नॉर्वे
इ-मेल : speil.nett@gmail.com

❑

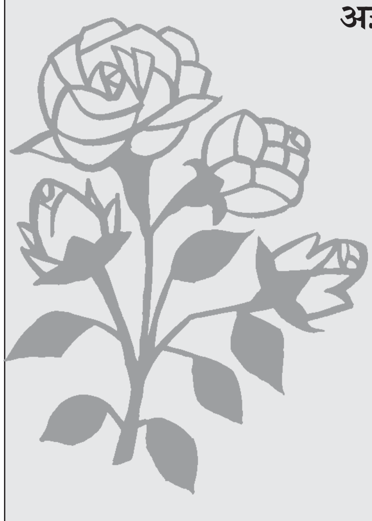

अज्ञान ही पाप है। शेष सारे पाप तो उसकी छाया ही हैं।

—आचार्य रजनीश

अधिकार जताने से अधिकार सिद्ध नहीं होता।

—रवींद्रनाथ ठाकुर

बिना अनुभव के कोरा शाब्दिक ज्ञान अंधा है।

—विवेकानंद

सिंगापुर में हिंदी : एक नई उड़ान

–संध्या सिंह

- **जीवनवृत्त**—स्नातकोत्तर, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से तथा बी.एड. और एम.ए. हिंदी।
- सिंगापुर में पिछले 12–13 वर्षों से हिंदी के क्षेत्र में सक्रिय भूमिका।
- शुरुआत हिंदी सोसाइटी द्वारा एक स्वयंसेवक रूप में उच्च माध्यमिक कक्षाओं को पढ़ाने से की। हिंदी सोसाइटी के द्वारा कई अभ्यास पुस्तिकाओं की रचना में सक्रिय सदस्या रहीं साथ ही संस्था द्वारा वार्षिक रूप से प्रकाशित होनेवाली पत्रिका का संपादन भी किया।
- सन् 2008 से सिंगापुर के एन.पी.एस. अंतर्राष्ट्रीय पाठशाला में हिंदी की विभागाध्यक्ष के रूप में कार्यरत, जहाँ आई.जी.सी.एस.ई. और आई.बी. पाठ्यक्रम को पढ़ाने के साथ ही पूरे विभाग की गतिविधियों का उत्तरदायित्व सँभालती हैं।
- सन् 2009 जनवरी से एन.यू.एस. में लेक्चरर रूप में हिंदी को एक विदेशी भाषा के रूप में पढ़ा रही हैं।

दक्षिण-पूर्व एशिया में बसा यह छोटा सा देश सिंगापुर विश्व के मानचित्र पर भले ही एक बिंदु के समान हो, परंतु अपनी सफल बाज़ार अर्थव्यवस्था के कारण बड़े-बड़े देशों को अपना लोहा मनवा चुका है। सिंगापुरवासियों की असीम मेहनत ने इस देश को प्रगति के इस सोपान पर लाकर खड़ा कर दिया है कि चार दशकों के छोटे से अंतराल में ही सिंगापुर तीसरी दुनिया के गरीब देशों के समूह से निकलकर दुनिया के सबसे धनवान देशों की समानता में आकर स्थापित हो गया है। इस शहर बनाम देश को स्वच्छता का पर्यायवाची भी माना जाता है, यहाँ की साफ-सुथरी सड़कें, बड़े-बड़े हरे-भरे पार्क, शीशे की तरह चमकते भव्य शॉपिंग मॉल सिंगापुर को किसी भी विश्वस्तरीय शहर के सामने बराबरी पर खड़ा कर देते हैं।

इस बात से तो हम सभी अवगत हैं कि सिंगापुर एक बहुप्रजातीय देश है, जिसकी बहुप्रजातीय संस्कृति उसे एक मिसाल के रूप में कायम करती है। सिंगापुर की तीन मुख्य प्रजातियाँ चीनी, मलय और भारतीय हैं। हालाँकि भारत के सब प्रांतों के लोगों ने सिंगापुर को अपना घर बना लिया है, परंतु तमिल भाषी अन्य भारतीयों की संख्या की तुलना में कहीं अधिक हैं, इसीलिए भारतीय भाषाओं में से केवल तमिल को ही सरकारी भाषा का दर्जा दिया गया है, अन्य सरकारी भाषाएँ चीनी, मलय और अंग्रेज़ी हैं। सिंगापुर की सरकार ने धर्मनिरपेक्षवाद और समानता प्रेरित नीतियों में अपनी तटस्थ भूमिका का निर्वाह किया है और एक समानतावादी समाज का निर्माण किया है। इस समानता का सबूत यहाँ चार-चार सरकारी कामकाजी भाषाओं के रूप में मिलता है।

सिंगापुर जिस शहर का नामकरण ही सिंहों के नाम पर हुआ हो, वहाँ देर-सबेर ही सही हिंदी को तो आना ही था। हिंदी भले ही यहाँ की आधिकारिक भाषा न हो, पर इसने अपनी जो पहचान बनाई है, वह काबिले तारीफ है।

सिंगापुर राष्ट्रीय विश्वविद्यालय (एन.यू.एस.) में तो हिंदी का आगमन भले ही बाद में हुआ हो, पर उसके काफी पहले यह यहाँ के प्राथमिक व माध्यमिक विद्यालयों में प्रवेश कर चुकी थी। सिंगापुर में मातृभाषा का अध्ययन आवश्यक है, जिसके कारण हर विद्यार्थी अगर संभव हो तो, अपनी मातृभाषा को चुनकर पढ़ता है, पर विश्व की सारी भाषाएँ तो किसी भी देश में सिखाना जरा अतिशयोक्ति ही होगी, तो यहाँ भी विद्यालयों में सिर्फ तीन भाषाओं चीनी, मलय और तमिल को ही पाठ्यक्रम में शामिल किए जाने के कारण अन्य भारतीय भाषाओं के बच्चों को मज़बूरन इन्हीं में से एक भाषा चुनने के कारण काफी नुकसान उठाना पड़ता था, साथ ही उनकी रुचि भी भाषा-अध्ययन के प्रति विकसित नहीं हो पा रही थी। इन्हीं समस्याओं को देखते हुए स्वर्गीय श्रीमान शिवाकांत तिवारी ने अपने अथक प्रयास से 1989 में सिंगापुर सरकार द्वारा ओ लेवल और पी.एस.एल.ई.

(प्राइमरी छठी) जैसी राष्ट्रीय परीक्षाओं में हिंदी व अन्य चार भारतीय भाषाओं गुजराती, उर्दू, बँगला, पंजाबी को मान्यता दिलवा दी। हालाँकि उस समय हिंदी की कक्षाएँ रविवार को हिंदी सोसाइटी के प्रयास से शिक्षा मंत्रालय द्वारा संचालित एक विद्यालय में लगती थी, जिसके संस्थापक श्रीमान तिवारीजी थे।

धीरे-धीरे हिंदी का जाल इस कदर फैलता गया कि 10-12 बच्चों से शुरू हुई संस्था में हज़ारों बच्चे पढ़ने लगे। हिंदी सोसाइटी के समान ही डी.ए.वी. हिंदी स्कूल भी हिंदी की शिक्षा में अपना सहयोग देने लगा। शनैः-शनैः हिंदी पठन-पाठन का क्षेत्र इतना व्यापक होने लगा कि सन् 2007 में शिक्षा मंत्रालय ने इसे प्रमाणित करके एक नई दिशा दी, हर स्तर पर हिंदी के अंक परीक्षा परिणाम पत्र में जुड़ने लगे हैं, जिससे आज हिंदी सीखनेवाले बच्चे भी अपनी सामान्य कक्षा में प्रथम, द्वितीय आदि स्थान पाने लगे हैं। आज लगभग 100-130 विद्यालयों में मातृभाषा के घंटे में डी.ए.वी. व हिंदी सोसाइटी द्वारा हिंदी शिक्षण का कार्य चल रहा है, जिसका निरीक्षण बोर्ड फॉर टिचिंग ऐंड टेस्टिंग साउथ एशियन लैंग्वेजेज करता है।

सिंगापुर में भारतीय मूल के काफी लोग होने के कारण यहाँ के कई अंतर्राष्ट्रीय विद्यालयों में भी हिंदी शिक्षण का कार्य बड़ी तन्मयता से सुचारु रूप से किया जा रहा है। यहाँ के ज्यादातर अंतर्राष्ट्रीय विद्यालयों में दो या तीन भाषाओं के अध्यापन का कार्य होता है, जिसमें से एक भाषा हिंदी होती है। इन विद्यालयों में हिंदी लेनेवाले छात्रों की संख्या अन्य भाषाओं के मुकाबले कहीं ज्यादा होती है, जो हिंदी की बढ़ती लोकप्रियता को दरशाती है। इन विद्यालयों में एन.पी.एस. अंतर्राष्ट्रीय पाठशाला, ग्लोबल इंडियन स्कूल, डी.पी.एस., युवा भारती, यूनाइटेड वर्ल्ड कॉलेज कुछ नाम हैं। इन विद्यालयों में आई.जी.सी.एस.ई., आई.बी. या सी.बी.एस.ई. पाठ्यक्रम के तहत हिंदी शिक्षण का कार्य जोरों से चल रहा है।

सिंगापुर में भारतीय मूल के काफी लोग होने के कारण यहाँ के कई अंतर्राष्ट्रीय विद्यालयों में भी हिंदी शिक्षण का कार्य बड़ी तन्मयता से सुचारु रूप से किया जा रहा है। यहाँ के ज्यादातर अंतर्राष्ट्रीय विद्यालयों में दो या तीन भाषाओं के अध्यापन का कार्य होता है, जिसमें से एक भाषा हिंदी होती है। इन विद्यालयों में हिंदी लेनेवाले छात्रों की संख्या अन्य भाषाओं के मुकाबले कहीं ज्यादा होती है, जो हिंदी की बढ़ती लोकप्रियता को दरशाती है।

ऐसा नहीं है कि ये विद्यालय हिंदी को सिर्फ एक भाषा के रूप में पढ़ाकर पल्ला झाड़ लेते हैं, बल्कि समय-समय पर भारतीय सांस्कृतिक समारोहों या विश्व हिंदी दिवस जैसे कार्यक्रमों में भी बढ़-चढ़कर भागीदारी निभाते हैं।

हिंदी भले ही यहाँ की आम भाषा न हो पर जिस रूप में उससे जुड़े कार्य हो रहे हैं, वह सराहनीय है। इस छोटे से टापू पर आज लाखों लोग ऐसे मिल जाएँगे जो हिंदी में बातचीत करते दिखाई या सुनाई देंगे। यही नहीं यहाँ का एक क्षेत्र ही लिटिल इंडिया के नाम से जाना जाता है। और तो और यहाँ के कई विज्ञापनों में हिंदी शब्द दिखाई पड़ने लगे हैं। पहले यहाँ भारतीय मतलब दक्षिण भारतीय समझा जाता था पर अब धीरे-धीरे यह सोच बदल गई है।

सिंगापुर राष्ट्रीय विश्वविद्यालय (नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ सिंगापुरः एन.यू.एस.) में हिंदी पठन-पाठन का इतिहास अधिक पुराना नहीं है। यहाँ हिंदी भाषा को एक विश्वविद्यालय के इल्क्टिव कोर्स के रूप में 2007 से ही पढ़ाना शुरू किया गया था, हालाँकि दक्षिण एशियाई पाठ्यक्रम (साउथ एशियन स्टडीज्) एन.यू.एस. में पहले से ही मौजूद था। सिंगापुर में और विशेषकर एन.यू.एस. में भारत और दक्षिण एशिया के प्रति रुचि उस रुझान का प्रतिबिंब है, जिसका प्रचलन विश्वभर के विश्वविद्यालयों और अकादमिक संसार में पिछले दो दशकों में बढ़ा है।

आज भारत को एक उदय होती शक्ति के रूप में देखा जा रहा है और बाज़ारीकरण के इस युग में हिंदुस्तान व हिंदुस्तानियों के प्रभुत्व को कैसे नकारा जा सकता है! फिर सिंगापुर तो बाज़ार व निवेश के लिए ही अपनी पहचान कायम किए हुए है। जहाँ लगभग सभी पश्चिमी देशों के विश्वविद्यालय भारत संबंधी विषयों और भारतीय भाषाओं को अपने पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर रहे हैं, वहाँ एन.यू.एस. भी इस दौड़ में पीछे नहीं रहना चाहता है। दक्षिण एशियाई भाषाओं की सूची में हिंदी का नाम सबसे ऊपर बोलनेवालों की संख्या के कारण तो आता ही है, बल्कि यह तो किसी हद तक यहाँ के लोगों की लिंग्वा फ्रंका (संपर्क भाषा) भी है। जाहिर है, भारत की अगर प्रतिनिधि भाषा को चुना जाए तो वह हिंदी ही होगी। एन.यू.एस. में पारंपरिक कारणों से यहाँ तमिल तो पहले से ही थी, हिंदी के आने से उत्तर भारत को भी प्रतिनिधित्व मिल गया है।

पश्चिमी देशों के विश्वविद्यालयों में हिंदी की बढ़ती लोकप्रियता का एक कारण भारतीय डायस्पोरा भी है, एन.यू.एस. में भी इसी तरह का चलन है। जैसे अमेरिका और यूरोप के विश्वविद्यालयों में वैसे ही एन.यू.एस. में भी हिंदी लेनेवाले मुख्य रूप से दूसरी या तीसरी पीढ़ी के भारतीय होते हैं। बेशक उनके पूर्वज हिंदी बोलनेवाले

न रहे हों, उन्होंने अपने दादा-दादियों, नाना-नानियों से गुजराती, पंजाबी, या फिर विशेषकर सिंगापुर के संदर्भ में, तमिल ही सुनी हो, फिर भी हिंदी से वे अपनी पहचान जरूर जोड़ते हैं। इसका एक बहुत बड़ा कारण बॉलीवुड भी है, दक्षिण एशियाई लोग चाहे कहीं भी रहें, उनके मनोरंजन का सबसे बड़ा स्रोत बॉलीवुड ही होता है। बॉलीवुड की लोकप्रियता की भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता। प्रवासी भारतीय ही नहीं, बल्कि मलय और किसी हद तक चीनी छात्र भी बॉलीवुड की रंगीन दुनिया और थिरकते संगीत से प्रेरित होकर हिंदी सीखने आते हैं। जाहिर है एन.यू.एस. ने भविष्य की इन्हीं संभावनाओं को टटोलते हुए सन् 2007 में अपने विदेशी भाषाओं के केंद्र (सेंटर फॉर लैंग्वेज स्टडीज्) में हिंदी भाषा को विदेशी भाषा के अध्ययन के रूप में जोड़ा।

एन.यू.एस. में हिंदी विभाग की स्थापना व प्रथम संचालन का श्रेय डॉ. पीटर फ्रिडलैंडर को जाता है। सन् 2008 में एन.यू.एस. द्वारा चयन के पश्चात् उन्होंने इस विभाग का कार्यभार सँभाला और फिर जुट गए पाठ्यक्रम विकसित करने में। पाठ्यक्रम के हिसाब से सब कुछ व्यवस्थित करने के पश्चात् सन् 2008 में अगस्त सत्र में पहली बार हिंदी में पहले स्तर की कक्षा शुरू हुई, जिसमें 23 विद्यार्थियों ने अपना नामांकन करवाया। डॉ. फ्रिडलैंडर जो मूल रूप से ब्रितानी हैं और ऑस्ट्रेलियाई नागरिक हैं, उन्होंने अपनी भाषा खासकर हिंदी प्रेम को निखारने के लिए सन् 1977 से सन् 1982 तक भारत भ्रमण के दौरान भारत के वाराणसी शहर में रहकर, वहाँ के स्थानीय लोगों से ही हिंदी सीखी। डॉ. फ्रिडलैंडर ने अपनी हिंदी की पढ़ाई लंदन में शुरू की थी और लंदन विश्वविद्यालय से उन्होंने अपनी पी-एच.डी. भी पूरी की। बौद्ध धर्म और हिंदी भाषा के विशेषज्ञ डॉ. फ्रिडलैंडर का विदेशी भाषा के रूप में हिंदी के अध्यापन का लंबा अनुभव एन.यू.एस. के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण साबित हुआ। चूँकि वे स्वत: विदेशी मूल के हैं अत: एन.यू.एस. में पाठ्यक्रम के संयोजन में उन्होंने इस बात का खास ध्यान रखा कि हिंदी को एक विदेशी भाषा के रूप में सीखते-सिखाते समय किन पहलुओं पर नजर रखनी चाहिए, ताकि भाषा का अध्ययन सहज हो। सन् 2008 के अगस्त सत्र के बाद ही हिंदी की लोकप्रियता यहाँ काफी फैली, कि अगले ही सत्र में हिंदी 1 की दो कक्षाओं का आयोजन करना पड़ा और एक और लेक्चरर की जरूरत भी पड़ी। 2009 के जनवरी सत्र से श्रीमती संध्या सिंह भी एन.यू.एस. के हिंदी विभाग से जुड़ गईं, जो सिंगापुर की नागरिक हैं और एक दशक से भी ज्यादा समय से स्थानीय और अंतर्राष्ट्रीय छात्रों को हिंदी व भारतीय संस्कृति से जोड़ती आ रही हैं, अत: वे अपने साथ स्थानीय अनुभव ले आईं और पाठ्यक्रम में स्थानीय आवश्यकताओं और मानकों को भी ध्यान में रखकर और स्वाभाविकता से हिंदी कक्षाएँ चलाई जाने लगीं। इसके साथ ही हिंदी 1 से शुरू हुए हिंदी पाठ्यक्रम में भी हिंदी 2 और हिंदी 3 पाठ्यक्रम जुड़ते गए, और जल्द ही एक तीसरे हिंदी अध्यापक की आवश्यकता भी पड़ी और ट्यूटर के रूप में श्रीमती साधना पाठक ने भी हिंदी विभाग में अपना कार्यभार सँभाला। पिछले ही सत्र में श्रीमती विनीता कुमारी ने, जो सिंगापुर के हिंदी के विभिन्न सांस्कृतिक केंद्रों में हिंदी पढ़ा चुकी हैं, एन.यू.एस. में चौथे अध्यापक के रूप में काम करना शुरू कर दिया है। छात्रों की संख्या में बढ़ोतरी होना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं थी, बॉलिवुड और वैश्वीकरण के जाल ने हिंदी को एक अलग फलक पर ला खड़ा कर दिया है।

पश्चिमी देशों के विश्वविद्यालयों में हिंदी की बढ़ती लोकप्रियता का एक कारण भारतीय डायस्पोरा भी है, एन.यू.एस. में भी इसी तरह का चलन है। जैसे अमेरिका और यूरोप के विश्वविद्यालयों में वैसे ही एन.यू.एस. में भी हिंदी लेनेवाले मुख्य रूप से दूसरी या तीसरी पीढ़ी के भारतीय होते हैं। बेशक उनके पूर्वज हिंदी बोलनेवाले न रहे हों, उन्होंने अपने दादा-दादियों, नाना-नानियों से गुजराती, पंजाबी, या फिर विशेषकर सिंगापुर के संदर्भ में, तमिल ही सुनी हो, फिर भी हिंदी से वे अपनी पहचान जरूर जोड़ते हैं।

सन् 2010 में डॉ. फ्रिडलैंडर एक सुदृढ़ विभाग की स्थापना करके वापस ऑस्ट्रेलिया चले गए और उस रिक्त पद का कार्यभार सँभाला डॉ. सुनील कुमार भट्ट ने। डॉ. भट्ट एक भाषा वैज्ञानिक हैं और यूरोप और अमेरिका के विश्वविद्यालयों में हिंदी और भारत संबंधी अन्य विषय पढ़ा चुके हैं। उनकी विदेशियों के लिए लिखी हिंदी पाठ्यपुस्तक (Hindi – a complete course for beginners, Living Language, New York) कई विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम का हिस्सा है। वे अपने साथ कई अलग देशों में हो रहे हिंदी शिक्षण की प्रक्रियाएँ भी साथ ले आए, जो इस पाठ्यक्रम का हिस्सा बनती गईं। अपने अंतर्राष्ट्रीय अनुभव के आधार पर उन्होंने एन.यू.एस. के पाठ्यक्रम में कई प्रभावी बदलाव किए, जिसका सकारात्मक असर छात्रों की बढ़ती रुचि में स्पष्ट झलकता है। डॉ. भट्ट ने न सिर्फ पाठ्यक्रम में कई बदलाव किए बल्कि मूल्यांकन में भी कई ऐसे तथ्यों को जोड़ा, जिससे छात्र भाषा को एक नए परिप्रेक्ष्य में देखने लगे। आज डॉ. भट्ट के निर्देशन में यह पाठ्यक्रम न सिर्फ फल-फूल रहा है बल्कि कई नई ऊँचाइयों को भी छू रहा है।

एन.यू.एस. में हिंदी शिक्षण गतिविधियों पर केंद्रित है। व्याकरण

को शुद्ध व्याकरण रूप में सिखाना अब गए जमाने की बात हो गई है, अतः कुछ ऐसे रोचक खेलों के द्वारा व्याकरण प्रस्तुत किया जाता है कि छात्र उसमें इस कदर मशगूल हो जाएँ कि खेल-खेल में कब व्याकरण सीख ली यह एहसास ही नहीं होता और यह ज्ञान ज्यादा स्थायी होता है। इसी प्रकार अनेक गतिविधियाँ चाहे पटकथा लेखन हो, अभिनय हो, भूमिका निर्वहन हो, फ्लैश कार्ड हों या वर्ग पहेली हो, हर तथ्य खेलों के माध्यम से सिखाकर उनके प्रयास को पुख्ता करने की सफल कोशिश की जाती है। हर सत्र में हर छात्र को एक प्रोजेक्ट भी बनाना होता है, जिसमें उनको अपने वास्तविक या काल्पनिक घर, परिवार, दोस्त, मुहल्ले, जीवन साथी, भावी योजनाओं आदि के बारे में पावर प्वाइंट प्रेजेनटेशन करना होता है। इसको छात्र बड़ी दिलचस्पी से करते हैं, क्योंकि उनको अपनी कल्पना और सीखे हुए व्याकरण का समावेश करने का अवसर मिलता है और साथ ही देवनागरी लिपि को कंप्यूटर में इस्तेमाल करना भी सीखते हैं।

जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं कि बॉलीवुड का आकर्षण एक बहुत बड़ा कारण है जो छात्रों को हिंदी कक्षा की ओर खींच लाता है, इसीलिए हिंदी फिल्मों को भी भाषा सिखाने के माध्यम के रूप में भी इस्तेमाल किया जाता है। हिंदी फिल्मों के मशहूर गानों या संवादों को कक्षा में व्याकरण सिखाने के लिए अक्सर लिया जाता है। प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उन्नत देश होने के कारण एन.यू.एस. की सभी कक्षाएँ तकनीकी रूप से संपन्न हैं, इसलिए सिखाने के विविध माध्यमों का प्रयोग करना बहुत ही सहज हो जाता है और हर जानकारी एक ही क्लिक में मिल जाती है।

निकट भविष्य में छात्रों को हिंदी का प्रासंगिक अनुभव दिलाने के लिए इमरशन प्रोग्राम की भी योजना है, जहाँ उनको हिंदी के साथ-साथ भारतीय संस्कृति से व्यावहारिक परिचय पाने का मौका मिलेगा।

एन.यू.एस. में भी समय-समय पर हिंदी फिल्मों को बड़े परदे पर दिखाया जाता है और ऐसे मौकों पर छात्रों की उपस्थित संख्या को देखकर हिंदी प्रेमियों के दिल गद्गद हो जाते हैं। सिर्फ फिल्में ही नहीं होली, दीवाली जैसे त्योहारों का आयोजन भी यहाँ होता रहता है और उनमें छात्रों की भागीदारी सराहनीय रही है। सिंगापुर में कहीं भी होली का आयोजन हो, वहाँ सबसे ज्यादा भीड़ अगर किसी वर्ग की दिखाई देती है, तो वह छात्रों की होती है। सिर्फ हिंदुस्तानी ही नहीं चीनी, मलय सभी जातियों के छात्र बड़े ही खुले दिल से इनमें भाग लेते हैं और भारतीय संस्कृति के इस अनूठे त्योहार के रंग में रँगने के बाद धीरे-धीरे भाषा की ओर भी बढ़ने लगते हैं।

इस छोटे से द्वीप सिंगापुर में हिंदी भाषा के प्रसार-प्रचार के लिए हो रहे कार्य भले ही अभी अपनी युवावस्था में हों, पर नए सोपान चढ़ते हुए जिस ओर अग्रसर होते दिखाई दे रहे हैं, अवश्य ही किसी बुलंद मुकाम को हासिल करने की सुनहरी कड़ी के रूप में हैं। इस छोटे से द्वीप सिंगापुर में भले ही साहित्य के क्षेत्र में अद्‌भुत घटनाएँ घटती हुई न दिखाई दे रही हों पर विदेशी भाषा व द्वितीय भाषा के रूप में संस्थाओं व स्वयंसेवियों द्वारा जो काम हो रहा है, वह निस्संदेह प्रशंसनीय है। हिंदी भाषा के विकास को देखकर कहा जा सकता है कि यहाँ हिंदी का भविष्य उज्ज्वल ही नजर आता है, जो न सिर्फ जड़ से उखड़े हुए हिंदुस्तानियों को जोड़े रखने का माध्यम है बल्कि विदेशियों के बढ़ते रुझान और भारत की बढ़ती शक्ति का लोहा मनवाते हुए, सबको आकर्षित करते हुए अपनी समकालीनता का भी परिचय दे रही है।

बॉलीवुड का आकर्षण एक बहुत बड़ा कारण है जो छात्रों को हिंदी कक्षा की ओर खींच लाता है, इसीलिए हिंदी फिल्मों को भी भाषा सिखाने के माध्यम के रूप में भी इस्तेमाल किया जाता है। हिंदी फिल्मों के मशहूर गानों या संवादों को कक्षा में व्याकरण सिखाने के लिए अक्सर लिया जाता है। प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उन्नत देश होने के कारण एन.यू.एस. की सभी कक्षाएँ तकनीकी रूप से संपन्न हैं, इसलिए सिखाने के विविध माध्यमों का प्रयोग करना बहुत ही सहज हो जाता है और हर जानकारी एक ही क्लिक में मिल जाती है।

—ब्लॉक 913#12-254
जुरॉग वेस्ट स्ट्रीट-91
सिंगापुर-640913
इ-मेल : sandhyasingh077@gmail.com

आभार

❑

11

रेडियो जापान की हिंदी सेवा : एक परिचय

–मुनीश शर्मा

- **जन्म :** 14 मई, 1970 गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश।
- **शिक्षा :** अंग्रेज़ी साहित्य में स्नातकोत्तर।
- **अनुभव :** दो वर्ष व्याख्याता एवं 14 वर्ष तक विदेश प्रसारण सेवा के हिंदी प्रभाग में अनुवादक एवं उद्घोषक।
- **संप्रति :** एन.एच.के. वर्ल्ड रेडियो जापान में हिंदी विशेषज्ञ के पद पर कार्यरत।
- **रुचियाँ :** सैर-सपाटा और ब्लॉग लेखन।

उगते सूरज के देश जापान के भारत से सांस्कृतिक रिश्ते तो सदियों पुराने हैं, लेकिन अब राजनैतिक और आर्थिक रूप से भी जापान भारत के करीब आ रहा है और दोनों संस्कृतियों को करीब लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है एनएचके की हिंदी सेवा। निप्पोन होसो क्योकाइ या कहिए एनएचके जापान की लोक प्रसारण सेवा है और 76 वर्ष से अधिक से इसका विदेश प्रसारण प्रभाग सक्रिय है। फिलहाल सत्रह विदेशी भाषाओं में प्रसारण किया जा रहा है। जिनमें अरबी, स्वाहिली, फ्रेंच, अंग्रेजी, स्पेनिश, पुर्तगाली और चीनी के साथ हिंदी भी शामिल है। 1 जून, 1940 को एनएचके वर्ल्ड रेडियो जापान की हिंदी सेवा की शुरुआत के साथ हिंदी श्रोताओं से जो रिश्ता जुड़ा था, वह कुछ अपरिहार्य कारणों से बीच में बाधित अवश्य हुआ, लेकिन खत्म नहीं हुआ और स्नेह की डोर से आज भी बँधा है। जापान समय के मुताबिक रात साढ़े ग्यारह बजे से सवा बारह बजे तक हिंदी में समाचार और कार्यक्रमों का प्रसारण होता है और सवेरे साढ़े दस से ग्यारह बजे तक केवल कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। न सिर्फ शॉर्ट वेव रेडियो प्रसारण बल्कि इंटरनेट पर मौजूद कार्यक्रमों के जरिए भी हिंदी सेवा के श्रोता जापान से प्रसारित हो रही इस रेडियो सेवा से जुड़े हुए हैं।

जापान की संस्कृति, खान-पान, ज्ञान-विज्ञान, सूचना-प्रौद्योगिकी, वाणिज्य, दर्शनीय स्थलों की सैर तथा गीत-संगीत के कार्यक्रमों के माध्यम से हिंदी प्रेमियों को जापान के और करीब लाने की ये कोशिश जापान से भारतवंशियों के रिश्तों को और मज़बूत बना रही है। मूलत: यह रेडियो सेवा है, लेकिन वेबसाइट पर सप्ताह भर तक एनएचके हिंदी सेवा के कार्यक्रमों को सुना जा सकता है। यदि आप सर्च बार में एनएचके हिंदी का नाम डालें तो आसानी से जापान से होने वाले हिंदी प्रसारण तक पहुँच सकते हैं। मूल सभा होती है रात्रिकालीन सभा और इसी में प्रसारित कार्यक्रमों को सवेरे पुन: प्रसारित किया जाता है, लेकिन हर रोज़ विविध विषयों पर नवीनतम कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं।

सोमवार को प्रसारित होने वाला बेहद लोकप्रिय कार्यक्रम है—सवालों में जापान, जिसमें दुनिया भर में फैले एनएचके श्रोताओं की जापान संबंधी जिज्ञासाओं का समाधान किया जाता है। जितने रोचक सवाल होते हैं जवाब भी उतने ही मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक होते हैं। पेश है सवालों की एक बानगी—यह तो हम जानते हैं कि जापान में लोगों की आयु लंबी होती है लेकिन जापान के किस हिस्से में सबसे लंबी आयु होती है और जापानी सेवानिवृत्ति के बाद भला करते क्या हैं ? क्या सड़क के दाईं तरफ गाड़ी चलाने का कोई रिश्ता सामुराइयों की दाईं तरफ तलवार टाँगने की आदत से है ? क्या जापानी लोग गरमी के प्रकोप से बीमार हो जाते हैं ? क्या जापान में सचमुच कैपस्यूल होटल होते हैं और ये भला क्या होते हैं ? क्या जापान में पहले पुरुष भी लंबे बाल रखा करते थे ? वगैरह। इसी दिन होता है कार्यक्रम सरल जापानी जिसमें वार्तालाप के माध्यम से जापानी भाषा को बड़े सरल अंदाज़ में सिखाया जाता है और इसके तमाम पाठ एनएचके हिंदी की वेबसाइट पर मौजूद रहते हैं। जापानी दुनिया की कठिनतम भाषाओं में गिनी जाती है, लेकिन सरल जापानी के पाठों में नाटकीय स्थितियों और अभिनय के माध्यम से भाषा ज्ञान कराया जाता है। हिंदी के माध्यम से

जापानी भाषा सीखने का एक बेजोड़ कार्यक्रम है सरल जापानी।

प्रौद्योगिकी में नवीनतम उपलब्धियों के बारे में जानने और कारोबारी प्रबंधन के जापानी नुस्खे सीखने का दिन है मंगलवार और इस दिन तमाम जानकारियाँ दी जाती हैं यथा संभव सरल हिंदी में। जापान ने निज भाषा में अनुसंधान के बल पर प्रौद्योगिकी में अपना सिक्का जमाया है इसलिए इस बात पर विशेष रूप से गौर किया जाता है कि हिंदी भाषी श्रोताओं को भी उनकी अपनी भाषा में नई-से-नई जानकारी दी जाए। बात चाहे दुनिया की सबसे तीव्रगामी रेलगाड़ियों में शुमार शिंकांसेन की हो या सबसे तेज़ गति से बहुमंजिला इमारतों में चढ़ते-उतरते एलिवेटरों की, टीवी प्रसारण में डिजिटल क्रांति हो या फिर कृत्रिम मानव कोशिकाओं के निर्माण में मिल रही कामयाबी की, एनएचके वर्ल्ड रेडियो जापान की हिंदी सेवा हिंदी प्रेमियों के लिए नवीनतम जानकारियाँ लेकर सदैव तत्पर है। इन दिनों पैसा कमाने के लिए कारोबारी क्या-क्या जुगत भिड़ा रहे हैं, यह भी बताया जाता है मंगलवार के इस कार्यक्रम में। यदि आपको ये क्षेत्र लगते हैं नीरस तो कहानियों का पिटारा भी खोला जाता है इसी दिन। कहानियों का पिटारा जापानी लोककथाओं का साप्ताहिक कार्यक्रम है, जिसमें ऐसी भी कई कहानियाँ होती हैं जिन्हें हम पंचतंत्र के माध्यम से या लोककथाओं के तौर पर भारत में भी सुनते आए हैं और जो शायद बौद्ध धर्म के माध्यम से जापान पहुँची होंगी।

बात चाहे दुनिया की सबसे तीव्रगामी रेलगाड़ियों में शुमार शिंकांसेन की हो या सबसे तेज़ गति से बहुमंजिला इमारतों में चढ़ते-उतरते एलिवेटरों की, टीवी प्रसारण में डिजिटल क्रांति हो या फिर कृत्रिम मानव कोशिकाओं के निर्माण में मिल रही कामयाबी की, एनएचके वर्ल्ड रेडियो जापान की हिंदी सेवा हिंदी प्रेमियों के लिए नवीनतम जानकारियाँ लेकर सदैव तत्पर है।

बुधवार को प्रसारित किया जाता है जापान दर्पण, जिसमें विभिन्न क्षेत्रों में जापान की प्रगति और उसकी समस्याओं दोनों का लेखा-जोखा होता है। इसमें सुमो अखाड़ों की मौजूदा हालत का जिक्र हो सकता है। जापान में बड़ी समस्या में खाली पड़े मकानों की समस्या उठाई जा सकती है, बुजुर्गों के सामने मौजूद चुनौतियों की चर्चा हो सकती है और ये भी जानने को मिल सकता है कि जापान में कौन से कवि बेहद लोकप्रिय हैं और उनकी लोकप्रियता के क्या कारण हैं?

बृहस्पतिवार का दिन भी रहता है जापान दर्पण के नाम जिसमें विदेशियों से जापानियों के रिश्तों को रेखांकित किया जाता है। आम आदमियों को केंद्र में रखकर बात की जाती है और ये जानने की कोशिश की जाती है कि आपस में मिल-जुलकर दुनिया की समस्याओं से कैसे निपटा जा सकता है। मानव कल्याण के लिए दुनिया भर में सक्रिय जापानी गैर-सरकारी संगठन हों या फिर व्यक्तिगत रूप से जन-कल्याण में लगे जापानी हों ऐसी सफलताओं का जिक्र इस कार्यक्रम में रहता है, जो कुल मिलाकर किसी भी इनसान को आज की दुनिया बेहतर बनाने के लिए प्रेरित करती हैं।

शुक्रवार को बारी-बारी से पेश किए जाते हैं दो कार्यक्रम— अद्‌भुत जापान में आपका स्वागत है और आओ पकाएँ जापानी खाना। यूँ तो सारा ही जापान बेहद खूबसूरत है, लेकिन अद्‌भुत जापान में आपका स्वागत है कार्यक्रम में खास तौर से सैर कराई जाती है उन जगहों की जिनकी खूबियों से दुनिया आम तौर पर परिचित नहीं है। इसके अलावा ऐसी बातें भी आप जान सकते हैं जैसे तोक्यो और ओसाका शहर की संस्कृतियों में क्या अंतर हैं। रोप्पोंगि का आधुनिक कला संग्रहालय हो या मीठी मछलियों के लिए मशहूर बिवा झील, फिनलैंड की याद दिलाता मात्सुयामा हो या सुमो पहलवानों का बसेरा र्योगोकु या फिर प्राकृतिक पहाड़ी सुंदरता के लिए मशहूर निक्को और हाकोने, तोत्तोरि के रेत के टीबे हों या दानवों के बसेरे के तौर पर मशहूर ताकामात्सु इन सभी की झलक आप कार्यक्रम के प्रसारण के बाद एनएचके वर्ल्ड रेडियो जापान की हिंदी की वेबसाइट पर भी स्थायी रूप से देख सकते हैं और हर पखवाड़े इसमें नई-नई जगहें बराबर जुड़ती जा रही हैं। हाल ही में इसी सिलसिले में मध्य जापान के गिफू प्रिफेक्चर में स्थित गुजो हाचिमान जाने का मौका मिला जहाँ श्राद्ध पक्ष के दौरान जापानी रातभर खुले आकाश तले नृत्य करते हैं। कमाल का नजारा था। तेज़ बारिश के बावजूद रातभर खुले आसमान के नीचे अपने पूर्वजों की प्रसन्नता के लिए जापानियों को लयबद्ध नाचते देखना एक अविस्मरणीय अनुभव रहा। पखवाड़े में एक दफा प्रसारित होने वाले इस कार्यक्रम में सरल हिंदी में जो जानकारी सैर-सपाटे के शौकीनों को मिलती है वो किसी अन्य माध्यम से मिलनी कठिन है।

पाक-कला के शौकीनों के लिए आओ पकाएँ जापानी खाना कार्यक्रम में हर पखवाड़े जापानी रसोई के राज खोलती हैं सुश्री आकिको वातानाबेजी। जापान में अधिकांश भोजन मांसाहारी है, लेकिन शाकाहारियों की पसंद का भी पूरा ध्यान रखा जाता है इस कार्यक्रम में। भारत में आमतौर पर व्रत के दिनों में खाए जाने वाले कुट्टू के आटे के बने सोबा नूडल जापान में आम भोजन का हिस्सा हैं और इसी तरह तिल का प्रयोग भी यहाँ के भोजन में खूब होता है। इस तरह की दिलचस्प बातों के अलावा भी बहुत सी जानकारियाँ हैं इस कार्यक्रम में जो हिंदी में किसी अन्य माध्यम से शायद सुलभ नहीं हैं, इसलिए खाने के अलावा संस्कृति के अध्येताओं के लिए भी ये कार्यक्रम उपयोगी कहा जा सकता है।

जापान के समकालीन और लोकसंगीत के भावों को हिंदी में जानने के शौकीनों के लिए शनिवार को सुरबहार और आओ सीखें जापानी गीत कार्यक्रम पेश किए जाते हैं। जापान में किसी भी विषय पर कविताएँ और गीत मिल जाएँगे, लेकिन उनके अर्थ समझने के जिज्ञासुओं के लिए महत्त्वपूर्ण हैं शनिवार की संगीत सभाएँ। जापान के एंका गीत हों या आधुनिक हिप-हॉप किस्म के सभी तरह का जापानी संगीत आप सुन ही नहीं समझ भी सकते हैं एनएचके की हिंदी सेवा के माध्यम से।

जापान की अपनी विशेष पॉप कल्चर भी है जिसमें हाराजुकु के अजीबो-गरीब पोशाकोंवाले नौजवानों के समुदाय हैं तो माँगा कॉमिक्स की भी एक अलग ही दुनिया है। बड़े-बड़े उम्रदराज जापानी रेलगाड़ियों में माँगा चित्रकथाएँ पढ़ते आमतौर पर दिख जाएँगे। इसके अलावा एनिमे यानी परदे पर और टीवी पर नजर आनेवाली सवाक् चित्रकथाओं का भी एक अलग ही रहस्यमय संसार है। कौन है दोराएमोन जिसका जन्मदिन तो आएगा 100 वर्ष बाद लेकिन जिसे हाल ही में कावासाकी नगरी के मानद नागरिक की उपाधि से नवाजा गया है और आनपानमान, पोकेमॉन निंजा हात्तोरि तथा नारुतो जैसे बच्चों के लोकप्रिय कार्टून किरदारों के बनने की कहानियाँ क्या हैं ऐसी तमाम जानकारियाँ होती हैं इंद्रधनुष में, जो शनिवार को ही प्रसारित किया जाता है।

कहानियों का पिटारा जापानी लोककथाओं का साप्ताहिक कार्यक्रम है, जिसमें ऐसी भी कई कहानियाँ होती हैं जिन्हें हम पंचतंत्र के माध्यम से या लोककथाओं के तौर पर भारत में भी सुनते आए हैं और जो शायद बौद्ध धर्म के माध्यम से जापान पहुँची होंगी।

मीडिया वॉच हिंदी के माध्यम से कंप्यूटर और मीडिया जगत में आ रहे बदलावों की नवीनतम जानकारियाँ देनेवाला अनूठा कार्यक्रम है जो महीने में एक बार शनिवार को प्रसारित होता है। टेबलेट कंप्यूटर के इस्तेमाल से किसान क्या हासिल कर सकते हैं और स्मार्ट फोन में बढ़ती एप्स की भूमिका कितनी व्यावहारिक है और कितनी महज दिमागपच्ची इसे हिंदी में बताने की ईमानदार कोशिश भी इस कार्यक्रम के जरिए हो रही है।

चैरी के देश से एक ऐसा कार्यक्रम जिसमें श्रोताओं के सुझावों और शिकायतों को लिया जाता है और हर रविवार को प्रसारित होने वाले कार्यक्रम में भारत के अनेक श्रोताओं के पत्र बराबर शामिल किए जाते हैं। भारत के अलावा मॉरीशस के श्रोता भी इंटरनेट के माध्यम से इन कार्यक्रमों का बराबर आनंद ले रहे हैं ऐसा मॉरीशसवासी श्रोता विद्यानंद रामदयालजी के रेडियो श्रोता क्लब और कुछ अन्य श्रोताओं के पत्रों के माध्यम से भी पता चलता है।

पूर्वी एशिया समेत दुनिया भर के महत्त्वपूर्ण घटना क्रम को समाचार बुलेटिन में स्थान दिया जाता है जिसमें सामान्य समाचारों के अलावा सामयिक वार्ता सप्ताह के पाँच दिन प्रसारित की जाती है। सामयिक वार्ता के लिए विश्वविद्यालय के प्रतिष्ठित विद्वानों के अलावा खाँटी पत्रकारों को भी अनुबंधित किया जाता है और विषय पर अच्छी पकड़वाले सेवानिवृत्त अफसरों को भी।

इन तमाम नियमित कार्यक्रमों के अलावा सबरस ऐसा कार्यक्रम है जिसमें जापान में भारतीय समुदाय द्वारा जन्माष्टमी, दीवाली, दशहरा मनाए जाने से लेकर मंदिर के उद्घाटन, यज्ञ-हवन या फिर जापानी पर्वों के जुलूसों तक का आँखों देखा हाल शामिल किया जाता है। आधुनिक अट्टालिकाओं के फैशनेबल इलाके शिबुया की सड़कों पर कब गाड़ियाँ कर दी जाती हैं बंद और उतर आता है पुराना जापान तथा भारतीय एवं जापानी समुदाय मिलकर कैसे हर साल 18 अगस्त को मनाते हैं सुभाषचंद्र बोस का स्मृति पर्व और 100 वर्ष से अधिक हिंदी के अध्ययन-अध्यापन में तोक्यो विदेशी भाषा विश्वविद्यालय की गतिविधियाँ क्या हैं आदि तमाम दिलचस्प बातों को सँजोए रहता है सबरस। रेडियो पर प्रसारण के बाद ये कार्यक्रम वेबसाइट पर सप्ताह भर मौजूद रहते हैं और आप इनका आनंद अपनी सुविधा के मुताबिक ले सकते हैं, तो फिर सोचना क्या बस सर्च बार में लिखिए एनएचके हिंदी और पहुँच जाइए वेबसाइट पर जहाँ तमाम जरूरी जानकारियों की कड़ियाँ भी मौजूद हैं आपके लिए। कुल मिलाकर एनएचके की हिंदी सेवा अपने ज्ञानवर्द्धक एवं मनोरंजक कार्यक्रमों के माध्यम से हिंदी भाषा की अभिवृद्धि में एक अहम भूमिका अदा कर रही है।

—विशेषज्ञ-हिंदी भाषा प्रसारण सेवा
एन.एच.के. वर्ल्ड रेडियो, जापान मल्टीलिंग्वल प्रोग्राम डिविजन
इंटरनेशनल प्लालिंग ऐंड ब्रोडकास्टिंग डिविजन
जापान ब्रोडकास्टिंग डिविजन, 1-2-2, जिन्नन शिबुया,
टोक्यो, जापान-8001-150
इ-मेल : munish@intl.nhk.or.jp

❑

12

विदेशों में हिंदी साहित्य का सर्वेक्षण एवं मूल्यांकन

–इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ

- **जन्म :** 9 सितंबर, 1935।
- **स्थान :** रिव्येर जु रांपार मॉरीशस।
- पढ़ाई की असुविधा के कारण 25 वर्ष की आयु में प्रथम बार कॉलेज में पढ़ने गए। शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय में छात्राध्यापक के रूप में प्रविष्ट हुए। पदोन्नति पाकर डिप्यूटी हेड टीचर पद से सेवा-निवृत हुए।
- मॉरीशस में हिंदी लेखक संघ के साथ जुड़कर साहित्य लेखन के प्रचार-प्रसार में ऐतिहासिक योगदान।
- 50 वर्षों से हिंदी साहित्य सृजन में लगे हुए हैं।
- 'बाल सखा' पत्रिका के प्रधान संपादक हैं और रेडियो पर पाक्षिक साहित्यिक कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं।
- **संप्रति :** हिंदी लेखक संघ के मान्य प्रधान।

विश्व भाषा हिंदी

हिंदी कभी भारत की भी प्रांतीय भाषा थी। वह राष्ट्रभाषा बनी और आज तो वह विश्व भाषा बन रही है तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी प्रतिष्ठापित हो गई है। भले वह राष्ट्रसंघ में वैधानिक तौर पर प्रायोगिक भाषा के रूप में स्थापित नहीं हुई है पर वहाँ प्रयुक्त हो चुकी है। विश्व में हिंदी बोलनेवालों की संख्या 550 मिलियन (55 करोड़) हो गई है। हिंदी सिर्फ बोलने की नहीं प्रचुर मात्रा में लिखने की भी भाषा है। हिंदी का सशक्त साहित्य सृजन हुआ है।

विदेशों में हिंदी

जब हम विदेशों यानी कि भारत के बाहर के देशों में हिंदी की बातें करते हैं तो गर्व से आकलन करते हैं कि विश्व के ऐसे 137 देश हैं जहाँ हिंदी बोली या समझी जाती हैं और 46 देशों में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है। यहाँ हम भारत की भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी का एक कथन उद्धृत करते हैं—

''हिंदी विश्व की महान तथा सशक्त भाषाओं में से एक है। यह करोड़ों की मातृभाषा है और करोड़ों लोग ऐसे हैं जो इसे दूसरी भाषा के रूप में बोलते हैं। संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग हरेक क्षेत्र में तेज़ी से बढ़ रहा है। वाणिज्य-व्यापार तथा राजनीति में इस भाषा का पहले से अधिक प्रयोग किया जा रहा है। हमारे स्वतंत्रता-संग्राम के दौरान और आज़ादी के बाद भी भारत में तथा दूसरे देशों में भी हिंदी भाषा की अभिवृद्धि हुई है एवं उसके साहित्य का बहुत विकास हुआ है। हमारे देश के लोग कई पीढ़ियों पहले गए और विदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में विद्वान लोग हिंदी का अध्ययन करते हैं।''

आज संसार के 30 देशों के 110 विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। जैसे अर्जेंटिना, ऑस्ट्रेलिया, बेल्जियम, बल्गारिया, फ्रांस, कनाडा, चीन, नीदरलैंड, चेकोस्लोवाकिया, डेनमार्क, जर्मनी, श्रीलंका, हंगरी, इटली, जापान, मैक्सिको, नेपाल, न्यूजीलैंड, नॉर्वे, पोलैंड, कोरिया, रुमानिया, स्वीडन, यू.के., अमेरिका, रूस, फिनलैंड यूगोस्लाविया आदि देशों में।

आप्रवासी हिंदी साहित्य

विदेशों में हिंदी साहित्य का सृजन हुआ है। मौलिकता की दृष्टि से अवलोकन करेंगे तो दो स्तरों पर रखा जा सकता है। पहले स्तर का साहित्य उन साहित्यकारों द्वारा रचा गया है व रचा जा रहा है जिनका जन्म उन्हीं देशों में हुआ है अर्थात वे साहित्यकार जो आप्रवासियों के वंशज हैं जैसे मॉरीशस, फीजी, सूरीनाम, त्रिनीदाद, गुयाना, दक्षिण अफ्रीका में जन्मे।

हमारे पूर्वज जो भारत भूमि छोड़कर आप्रवासी के रूप में आए वे शिक्षित नहीं थे या ये भी कह दें वे अर्द्धशिक्षित थे। उन्हें हिंदी आती नहीं थी। उनका हिंदी ज्ञान न्यून था। अशिक्षित वर्ग को शिक्षित वर्ग में परिणत होना लंबी प्रक्रिया थी। प्रांतीय भाषाएँ व बोलियाँ जैसे भोजपुरी वे बोलते थे, क्योंकि अधिकतर वे बिहार, उत्तर प्रदेश

से आए थे। भारत के लोग जो अन्य प्रांतों से आए थे उनके संपर्क में आने से वे भी भोजपुरी बोलने में अभ्यस्त हो गए। भोजपुरी और हिंदी में कितना अंतर है? देखा जाए तो बहुत अंतर भी नहीं है। भोजपुरी और हिंदी देवनागरी में ही लिखी जाती है। हिंदी में भोजपुरी व भोजपुरी में हिंदी शब्दों का एक-दूसरे में बाहुल्य है। विदेशों में भोजपुरी बोलनेवाले बड़ी सरलता से हिंदी पढ़ने-लिखने लगे। हाँ, यह सही है कि पढ़ने-लिखने की सुविधा व व्यवस्था नहीं थी और हिंदी के विद्वान भी तो थे नहीं। जिनको थोड़ा-बहुत अक्षर ज्ञान था, वही गुरु बने और अपने बच्चों को हिंदी ज्ञान देने, साक्षर बनाने में पूर्णरूप से समर्पित हुए।

विदेश से लेखक, कवि आ जाते तो वे स्थानीय लेखकों, कवियों के प्रेरणा-स्रोत बनते जैसे मॉरीशस में पं. लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी 'रसपुंज' जी की मॉरीशस में प्रकाशित पहला काव्य शताब्दी सरोज (1935) मील का पत्थर बना। उनसे प्रेरणा पाकर मॉरीशस में उत्पन्न श्री ब्रजेंद्रकुमार भगत, श्री जयनारायण राय की पुस्तकें प्रकाशित होने लगीं। प्रारंभिक काल में नाटककारों द्वारा लिखे नाटकों का मंचन तथा गायकों, भजनीकों द्वारा धर्मोपदेश व नवजागरण की आवाजें बुलंद होती थीं पर प्रकाशन की असुविधाओं के कारण उन सब लिखे नाटकों तथा गीतों, भजनों का संकलन पुस्तक रूप में न हुआ। श्रव्य काव्य तथा दृश्य काव्य तक ही सीमित रह गया। यही बात अन्य आप्रवासी देशों के लेखकों, कवियों के साथ हुआ। हाँ, जब आप्रवासी साहित्य के मुद्दे को सामने लाना चाहते हैं और उनका सर्वेक्षण और मूल्यांकन करना चाहते हैं तो पहले स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि विदेश में जो साहित्य मूल भारतीय वंशज द्वारा प्रणयन हुआ और जो साहित्य बाद में भारत से आए हुए साहित्यकारों द्वारा सृजित हुआ उनमें क्या अंतर है।

मूल आप्रवासी भारतीयों के बारे में हमने ऊपर संकेत कर दिया है। यहाँ हम उन भारतीयों की ओर इशारा कर रहे हैं जो दासता प्रथा के बाद गिरमिट के रूप में नहीं प्रोफेशनल के रूप में भारतीय विदेशों में गए। वे शिक्षित थे, उनमें कई लेखक-कवि थे। उन्होंने भी विदेशों में हिंदी साहित्य के सृजन में अपना अमूल्य योगदान दिया। जैसे इंग्लैंड, अमेरिका, कनाडा, नॉर्वे, न्यूजीलैंड, जापान, डेनमार्क, यूगोस्लाविया आदि देशों में। वे वहाँ के जन्मे नहीं थे, भारत से वहाँ प्राध्यापक, डॉक्टर, इंजीनियर के रूप में विशेषकर अपने प्रोफेशन हेतु गए थे। उनमें कितनों का साहित्यिक ज्ञान था, सृजनात्मक लेखन व लेखन शिल्प से वे अवगत थे। इन दूसरी-तीसरी पीढ़ी के भारतीय पहली पीढ़ी यानी कि गिरमिटे मज़दूरों की उनकी भोगी हुई पीड़ा-वेदना को उतना महसूस न कर सके जितना कि उन मज़दूर भारतीयों ने की। इसीलिए उनके लिखे साहित्य में जो उत्पीड़न, छटपटाहट है वैसा सृजनात्मक लेखन बाद में लिखा जाना दुर्लभ रहा है। हाँ, प्रयास तो अवश्य हुआ है पीड़ा की स्याही से लिखा नहीं गया है। इसीलिए तो आज उन पूर्वजों की अस्मिता, उनकी अवहेलना, दु:ख-दर्द, उनके तराबोर शब्दों से सनी मिट्टी की गंध का मूल्यांकन अतीव वांछनीय है और उस साहित्य का पुनरावलोकन और संचय कर हिंदी साहित्य में मुखरित करना है।

विदेशों में सशक्त साहित्य का निर्माण

भारत में शताब्दियों से हिंदी साहित्य का सृजन हो रहा है। वहाँ बड़े-बड़े, दिग्गज साहित्यकार हुए हैं। विदेशों में मुश्किल से डेढ़ सौ वर्ष से साहित्य सृजन हो रहा है। रातोंरात कोई लेखक व कवि नहीं बन जाता। लेखक व कवि बनने के लिए बहुत परिश्रम करना पड़ता है, बहुत पढ़ना पड़ता है, लिखने में अभ्यस्त होने पर तब जाकर लेखन में अभिव्यक्ति आती है। लेखन शिल्प, कला से अवगत होना पड़ता है तब जाकर अच्छे लेखक, कवि बनते हैं। शायद ही कोई जन्मजात कवि व लेखक पैदा होता है। ऐसी स्थिति में अशिक्षित मज़दूरों के वंशजों को साहित्यकार बनने में लंबा समय लगा। प्रश्न उठता है कि विदेशों में आगे चलकर अनेक लेखक व कवि हुए और अनेक साहित्यिक विद्वानों जैसे कविता, कहानी, निबंध, नाटक, उपन्यास आदि में उनकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुईं। जैसे मॉरीशस में ही लगभग 350 तक पुस्तकें छप चुकी हैं। क्या ये विधागत रचनाएँ साहित्यिक मापदंड के अनुरूप है? क्या इनमें साहित्यिक तत्त्व हैं? हमारे लेखक-कवि लेखन कला में प्रशिक्षित नहीं थे। रचनाएँ तो कीं, पर क्या उन रचनाओं को साहित्य में स्थान मिल सकता है? साहित्यिक रचनाओं का भी स्तर देखा जाता है। एक लेखक कविता व कहानी की पुस्तक लिख देता है। समीक्षक देखता है कि उस कविता व कहानी में क्या अपेक्षणीय साहित्यिक गुण हैं? इस तरह हम देखते हैं कि साहित्यिक प्रतिमानों के अनुरूप अनेक प्रकाशित पुस्तकें खरी नहीं उतरती हैं पर बहुत सी ऐसी रचनाएँ भी हुई हैं जिनमें साहित्यिकता का पुट होने से साहित्यिक उपलब्धि से वंचित नहीं हैं। यहाँ मुझे एक बात याद आ गई। सन् 1961 में मॉरीशस हिंदी लेखक संघ की स्थापना के अवसर पर एक भारतीय विद्वान, आचार्य बालमुकुंद द्विवेदी ने कहा था—''भले आज मॉरीशस का हिंदी साहित्य अपने शैशव काल में है, देखना वह दिन आएगा जब कि मॉरीशस के हिंदी लेखक-कवि भारत के लेखकों, कवियों के समस्तर की रचनाएँ कर पाएँगे।''

आज पं. द्विवेदीजी की भविष्यवाणी में कोई अतिशयोक्ति नजर नहीं आ रही है। भले अभी हम उस स्तर पर पहुँच नहीं पाए हैं, पर हमारा सृजनात्मक लेखन अंतर्राष्ट्रीय स्तर का होता नजर आ

रहा है। भारत के भी समीक्षक विदेशों में हो रही हिंदी संरचना की भूरि-भूरि प्रशंसा करते अघाते नहीं हैं। मॉरीशस में ही नहीं फीजी, सूरीनाम में भी सशक्त रचनाएँ हुई हैं। पत्र-पत्रिकाएँ लेखकों को पैदा करने का सबसे उत्तम साधन रहा है। भारत हो या अन्य देश लेखकों, कवियों ने पहले पहल पत्र-पत्रिकाओं में अपनी लेखन प्रतिभा आजमाकर साहित्य में पदार्पण किया था। विदेशों में सबसे पहले इंग्लैंड में सन् 1883 में 'हिंदोस्थान' शीर्षक से हिंदी पत्रिका श्री कालाकांकर नरेश के संपादन में निकली थी और विदेशों में अब तक 158 तक हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ छप चुकी हैं जिनमें सबसे अधिक मॉरीशस में कुल 53 हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ निकल चुकी हैं और वर्तमान में ये 10 पत्र-पत्रिकाएँ निकलती हैं—आर्योदय, वसंत, पंकज, सुमन, बाल सखा, रिमझिम, आक्रोश, दर्पण, इंद्रधनुष और विश्व हिंदी समाचार। सच कहा जाए तो पत्र-पत्रिकाओं को साहित्यकारों का प्रादुर्भाव करने में सबसे अधिक श्रेय जाता है उन सभी बहुल हिंदी पाठक देशों का जहाँ से हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ निकलती हैं। हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ केवल लेखन में ही नहीं हिंदी पठन में भी अविरल अभिरुचि पैदा करती हैं। और साहित्यिक गतिविधियों से पाठकों तथा समीक्षकों को अवगत कराती हैं।

आज देश-विदेश के समीक्षक हिंदी साहित्य सृजन का सर्वेक्षण एवं मूल्यांकन कर रहे हैं। आश्चर्य होता है अमेरिका, कनाडा, इंग्लैंड आदि देशों में हो रही उत्कृष्ट साहित्यिक रचनाओं को पढ़कर कि उनका स्तर इतना ऊँचा हो गया है। उच्च कोटि के साहित्यिकार उत्पन्न हो रहे हैं। समीक्षकों का मानना है कि मॉरीशस में हिंदी साहित्य लेखन का स्थान सर्वोच्च है। कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास विधाओं में दमदार साहित्य लिखा जा रहा है।

भारतोत्तर देशों में जो हिंदी साहित्य का सृजन हो रहा है उसका सर्वेक्षण एवं मूल्यांकन करना आवश्यक है। यह माना जा रहा है कि मॉरीशस, सूरीनाम, फीजी, इंग्लैंड, अमेरिका, कनाडा देशों में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों के माध्यम से अच्छा-खासा हिंदी साहित्य का सृजन हुआ है। हिंदी के इस प्रौढ़ साहित्य का प्रारूप प्रस्तुत करना है। हिंदी मात्र भारत की नहीं विश्व की भाषा बन गई है। इसकी वैश्विक मान्यता को उजागर करना है।

विश्व समन्वयिक हिंदी साहित्य

विश्व के कई देशों में जो हिंदी का साहित्य लिखा गया है और जो लिखा जा रहा है, देश-विदेश के समीक्षक उसमें बड़ी दिलचस्पी दिखा रहे हैं। उसका मूल्यांकन कर रहे हैं और इसकी आवश्यकता भी है। हिंदी विश्व भाषा बन रही है। राष्ट्रसंघ की प्रायोगिक भाषा बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। ऐसी स्थिति में हिंदी को कमज़ोर नहीं, दमदार साहित्यवाली भाषा का प्रारूप भी तो प्रस्तुत करना है।

समीक्षकों द्वारा विशेषकर विदेशों में जैसे मॉरीशस, सूरीनाम, फीजी, कनाडा, इंग्लैंड, अमेरिका आदि देशों में जो साहित्य रचा गया या रचा जा रहा है, उनका सर्वेक्षण एवं मूल्यांकन किया जाए और साहित्य की अलग-अलग विधाओं जैसे कविता, कहानी, उपन्यास, समालोचना, पत्रकारिता, साक्षात्कार, जीवनी आदि का समीक्षात्मक मूल्यांकन किया जाए। यह इसलिए कि पता चल जाए कि हिंदी साहित्य किस स्तर पर पहुँचा है।

एक महत्त्वपूर्ण बात कि विदेशों में जो हिंदी साहित्य लिखा गया है भारत के हिंदी साहित्य से पृथक न माना जाए। यहाँ मैं एक बात का उल्लेख करना चाहूँगा। सन् 1971 में मॉरीशस में स्थित हिंदी परिषद् ने 'प्रवासी स्वर' शीर्षक से एक कविता-संग्रह का प्रकाशन किया था। उन दिनों मॉरीशस में भारत से साहित्यकार श्री जैनजी आए हुए थे। पुस्तक के लोकार्पण के अवसर पर संघ के प्रधान श्री सोमदत बखोरीजी ने उन्हें पुस्तक की एक प्रति भेंट की तो देखकर जैनजी ने कहा कि पुस्तक का यह शीर्षक 'प्रवासी स्वर' अनुपयुक्त है। भारत के बाहर के देशों में जो हिंदी साहित्य लिखा जा रहा है उसे भारत के हिंदी साहित्य से पृथक न करें। हिंदी का साहित्य समन्वयिक हो। एक-दूसरे से मिला हुआ अर्थात मॉरीशस, फीजी, कनाडा आदि देशों में लिखा गया हिंदी साहित्य भारत के हिंदी साहित्य का एक अंग है। उन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं मानना चाहिए। देश-विदेश में लिखे जा रहे हिंदी साहित्य को अब साथ छापना भी चाहिए। हर विधा के चयनित स्तरीय रचनाओं को एक साथ पुस्तक में प्रकाशित करना चाहिए। पाठ्य-पुस्तकों में देश-विदेश के लेखकों, कवियों की रचनाओं को संकलित करना चाहिए। यह एक अच्छा लक्षण देखा जा रहा है कि विदेशों के कुछ लेखकों, कवियों की रचनाएँ व पुस्तकें भारत के विश्वविद्यालयों के पाठ्य-पुस्तकों के रूप में निर्धारित हैं। भारत के साहित्यकारों की पुस्तकें तो विदेशों में पाठ्य-पुस्तकों के रूप में निर्धारित होती ही हैं। अब समय आ गया है कि देश-विदेश के साहित्यकारों की रचनाएँ साथ छपें और पाठ्य-पुस्तकों के रूप में प्रयुक्त हों। यह एक अत्योक्तम है कि देश-विदेश के हिंदी साहित्य तथा साहित्यकारों की रचनाओं को एक साथ मिलाया जाए और एक सामूहिक दर्जा दिया जाए। इस दिशा में वेबसाइट पर महत्त्वपूर्ण कार्य होना आरंभ हो गया है। भारत तथा भारतोत्तर देशों में लिखित हिंदी साहित्य को

विश्व भर के पाठकों के समक्ष उजागर करने के उद्देश्य से इंटरनेट पर लाया गया है, जैसे–विश्व कविता–कोश। विश्व हिंदी सचिवालय इस दिशा में कार्यरत है।

निष्कर्ष

भारतोत्तर देशों में जो हिंदी साहित्य का सृजन हो रहा है उसका सर्वेक्षण एवं मूल्यांकन करना आवश्यक है। यह माना जा रहा है कि मॉरीशस, सूरीनाम, फीजी, इंग्लैंड, अमेरिका, कनाडा देशों में हिंदी पत्र–पत्रिकाओं, पुस्तकों के माध्यम से अच्छा–खासा हिंदी साहित्य का सृजन हुआ है। हिंदी के इस प्रौढ़ साहित्य का प्रारूप प्रस्तुत करना है। हिंदी मात्र भारत की नहीं विश्व की भाषा बन गई है। इसकी वैश्विक मान्यता को उजागर करना है।

विदेशों में सृजित हिंदी साहित्य भारत के हिंदी साहित्य से पृथक नहीं। इसका समन्वयिक रूप अर्थात मिला–जुला साथ प्रकाशित करना है। भारत तथा भारतोत्तर के साहित्यकारों की रचनाओं को छापना है। ऐसी पाठ्य–पुस्तकें तैयार की जाएँ, जिनमें सभी देशों की चयनित सशक्त रचनाएँ साथ प्रकाशित हों। विदेशों के साहित्यकारों को प्रोत्साहन मिलेगा और वे अधिक स्तरीय रचनाएँ करने में सक्षम होंगे। साहित्यिक विचारधाराओं के संगम से अटूट साहित्यिक सेतु का निर्माण भी होगा।

—मान्य प्रधान
हिंदी लेखक संघ, मॉरीशस शेनफेल रोड
रिव्येर जु रामपार

❑

अपनी इंद्रियाँ जिसके वश में हैं, उसकी बुद्धि स्थिर है।

— श्रीमद्‌भगवद्‌गीता

ईर्ष्या करनेवाले दूसरों को कष्ट देते हैं, पर अपने को तो महाकष्ट देते हैं।

— विलियम पेन

उत्सव आपस में प्रीति बढ़ाने के लिए मनाए जाते हैं।

— प्रेमचंद

पं. नरदेव वेदालंकार

–विश्व हिंदी सचिवालय

हिंदी के विश्व भाषा रूप को स्थापित करने व उसे भारत की सीमाओं से अलग देशों में एक जीवंत भाषा का रूप देने का श्रेय जिन महान् विद्वानों व हिंदी सेवियों को जाता है, उनमें दक्षिण अफ्रीका में हिंदी के सर्वप्रसिद्ध सेवक व अथक प्रचारक पंडित नरदेव वेदालंकार का नाम श्रद्धा से लिया जाता है। भारत, भारतीयता और भारतीय भाषाओं के प्रति अपने अदम्य प्रेम के बल पर पं. वेदालंकार ने दक्षिण अफ्रीका में, हिंदी भाषा के प्रचार के लिए जो विशेष योगदान दिया है, उसी पर प्रकाश डालने के विनम्र प्रयास के फलस्वरूप यह आलेख प्रस्तुत किया जा रहा है।

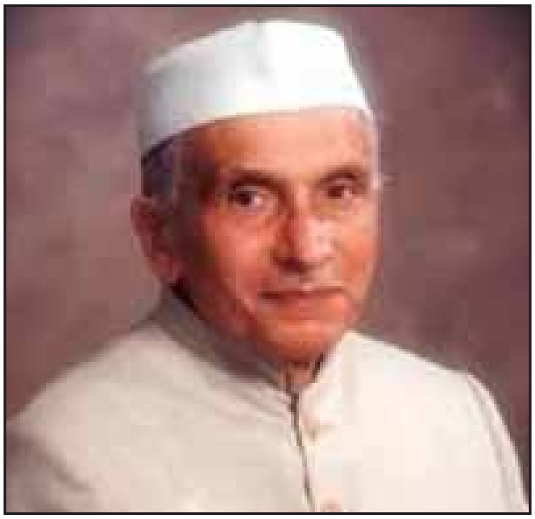

पं. नरदेव वेदालंकार

व्यक्तित्व

पं. नरदेवजी वेदालंकार के बचपन का नाम नानूभाई नरोत्तमभाई था। हरिद्वार के गुरुकुल काँगड़ी से स्नातक की पढ़ाई की और वहीं से उन्हें नरदेवभाई 'वेदालंकार' नाम से जाना जाने लगा। दक्षिण अफ्रीका में लोग उन्हें 'पंडितजी' नाम से संबोधित करते थे। उनके सहकर्मी उन्हें भाईजी बुलाते थे। यहाँ तक कि उनके बच्चे भी उन्हें 'भाईजी' कहते थे। इतनी घनिष्ठता उनमें थी।

वेदालंकारजी का जन्म 17 नवंबर, 1913 में सूरत (भारत) के टुंडी गाँव में हुआ था। उनके पिता श्री नरोत्तमभाई शंकरजी मुनीम थे और उनकी माँ का नाम जमनाबेहन था। माता-पिता से अधिक लगाव के कारण इन्हें छोड़कर बोर्डिंग स्कूल जाना, पंडितजी के जीवन की प्रारंभिक कठिन परीक्षाओं में से एक था। पंडितजी जब गुरुकुल में शिक्षा ग्रहण कर रहे थे, तभी इनकी माता का देहांत हो गया।

स्नातक करने के पश्चात् इन्होंने हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए गांधीजी द्वारा स्थापित वर्धा 'हिंदी प्रचार समिति' से प्रशिक्षण हासिल किया। इसके बाद वे सूरत स्थित प्रचारक मंडल में अंशकालिक रूप से 80 अध्यापकों के पर्यवेक्षक बने। गुरुकुल से स्नातक करने के बावजूद उन्हें अधिक वेतन नहीं मिल पाता था। इसका कारण यह था कि ब्रिटिश राज्य में भारत के इन गुरुकुलों को ब्रिटिश-विरोधी समझा जाता था और इनको मान्यता नहीं मिलती थी।

1944 में पंडितजी का विवाह श्रीमती जयवंती से हुआ। दंपत्ती को 7 संतानों का सुख प्राप्त हुआ। सभी बच्चों ने अपने अपने क्षेत्रों में सफलता हासिल की है। समाज के उत्थान के लिए कार्य करनेवाले पंडित नरदेवजी वेदालंकार ने अपने परिवार को भी उपयुक्त समय दिया। उनके बच्चों की स्मृतियाँ इस बात का प्रमाण देती हैं कि वे एक अच्छे पति और पिता भी थे। उन्होंने परामर्शदाता के रूप में बच्चों को मार्गदर्शन देने, प्रोत्साहित, प्रेरित और उनका समर्थन करने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी। यदि कोई समस्या होती थी तो ध्यानपूर्वक सुनने, समझने और परखने के पश्चात् उनका समाधान करते थे। वे सप्ताह भर व्यस्त रहते थे। दिन में गुजराती और शाम को हिंदी पढ़ाते थे। कभी-कभार केवल शुक्रवार को ही उन्हें थोड़ा आराम मिल पाता था। प्रतियोगिताओं में भाग लेने के लिए वे बच्चों को प्रोत्साहित करते थे। वेद मंत्रों, गीता के श्लोकों और उनके द्वारा लिखित नाटकों के पठन अध्ययन में वे सहायता करते थे। साप्ताहिक हवन भी वे सपरिवार किया करते थे।

पंडितजी को दो चीज़ें अत्यधिक पसंद थीं—जब भी समय मिले, पठन कार्य करना और लेखन कार्य करना। एक बार जब वे लिखने बैठ जाते थे तो किसी भी प्रकार की बाधा या अशांति पसंद नहीं करते थे। कभी-कभी अगर रात को परिवार का कोई सदस्य जागता तो पंडितजी को लेखन कार्य में व्यस्त पाता। उनके बच्चे हमेशा सोचते रहते थे कि 'कागज़ और कलम के बीच कौन सी जंग छिड़ रही है'। लेकिन जब वे बड़े हुए तो इन्हीं महत्त्वपूर्ण और दिलचस्प पुस्तकों (हिंदूत्व के आध्यात्मिक ज्ञान, शास्त्र नवनीतम) का अध्ययन किया।

दक्षिण अफ्रीका प्रवास और शिक्षण

पंडितजी ने भले ही हिंदी जगत में अपना पहला कदम वर्धा में रखा था, लेकिन नियति ने उनकी कर्मभूमि के रूप में दक्षिण अफ्रीका की धरती निश्चित कर रखी थी। 1947 में जब भारत को स्वतंत्रता मिली तो पंडितजी दक्षिण अफ्रीका के लिए रवाना हुए, जहाँ डरबन स्थित सूरत, हिंदू शिक्षा संस्थान ने उन्हें गुजराती शिक्षक के रूप में नियुक्त किया। 40 वर्षों तक उन्होंने पूरी लगन के साथ इस संस्थान में सेवा की। उन्होंने पाठ्यक्रम, परीक्षाएँ तथा पुस्तकें भी तैयार कीं। खास बात यह है कि बच्चों में सदाचार को बढ़ावा देने हेतु उन्होंने 'धर्म शिक्षा' नामक धार्मिक पुस्तक भी लिखी।

छात्रों को पढ़ाने का उनका अलग ही तरीका होता था, जिसे बच्चे बहुत पसंद करते थे। गंभीर होते हुए बच्चों का ध्यान आकर्षित करना वे अच्छी तरह जानते थे। उनके कार्यों में श्री एल.बी. पटेल, श्री गोवण मणि, श्री बी. रामावतार, श्री डी.जी. सत्यदेवा और श्री परमेसर का सहयोग भी हमेशा रहा। इसके साथ ही उनके कार्यों पर गहरी छाप छोड़ने वाले थे, श्री सुखराज चोताई, श्री प्रेमदत्त भगवानदीन और श्री शिशुपाल रामभरोसे। इन सभी ने निष्काम रूप से शिक्षण, अनुवाद, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में इनका साथ दिया।

पंडितजी का भाषा, धर्म और संस्कृति आंदोलन

1. हिंदी शिक्षा संघ स्थापना

दक्षिण अफ्रीका में पंडितजी के आगमन से पूर्व ही हिंदी प्रचलित थी, पर बहुत ही कम पैमाने पर और अकादमिक दृष्टिकोण से बहुत कार्य बाकी था। पंडितजी ने भारतीयों की इस कमी की पूर्ति के लिए कार्य किए और हिंदी भाषा के उत्थान में भरपूर योगदान दिया।

1947 में दक्षिण अफ्रीका आने पर पंडित वेदालंकार को लगा कि यहाँ हिंदी के प्रचार-प्रसार की आवश्यकता है। अपने विचारों को कार्यान्वित करने के लिए पंडितजी ने दो हिंदू समाज की दो प्रतिनिधि संस्थाओं, आर्य प्रतिनिधि सभा एवं सनातन धर्म सभा के सहयोग से हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए दक्षिण अफ्रीका हिंदी शिक्षा संघ की स्थापना की।

'हिंदी शिक्षा संघ' की स्थापना से पूर्व दक्षिण अफ्रीका में हिंदी के प्रचार-प्रसार तथा पोषण का दायित्व धार्मिक संस्थाओं का ही था। जब गिरमिटिया मज़दूरों का पहला समूह दक्षिण अफ्रीका पहुँचा तो वे अपने साथ भोजपुरी भाषा लेकर आए, लेकिन उनमें खड़ी बोली सीखने की इच्छा हमेशा से रही। वस्तुतः अपने धर्म, परंपरा तथा संस्कृति की रक्षा के लिए धार्मिक, सांस्कृतिक संस्थाओं तथा व्यक्तिगत रूप से लोगों ने हिंदी का प्रचार किया।

परंतु भाषा प्रचार के कार्य में ही पूर्ण रूप से समर्पित संस्था की आवश्यकता को समझते हुए 25 अप्रैल, 1948 को पंडितजी ने आर्य प्रतिनिधि सभा एवं सनातन धर्म सभा के सहयोग से हिंदी भाषियों के साथ एक बैठक बुलाई, जहाँ मातृ भाषा की स्थिति समस्याओं और संभावित समाधानों पर विचार-विमर्श किया गया। इसी बैठक के दौरान हिंदी शिक्षा संघ (दक्षिण अफ्रीका) का शुभारंभ हुआ था और पंडित वेदालंकार इस संघ के प्रथम प्रधान बने। आगामी 27 वर्षों तक वे संघ में सेवारत रहते हुए, दक्षिण अफ्रीका में हिंदी के इतिहास का स्वर्णिम अध्याय रचने वाले थे। कार्य आरंभ करने में विलंब न करते हुए संघ की स्थापना होने पर इसने 17 अक्तूबर, 1948 में ही हिंदी साक्षरता सम्मेलन का आयोजन किया था, जिसमें देश की 35 हिंदी पाठशालाओं ने भाग लिया था।

हिंदी शिक्षा संघ की स्थापना के पीछे ध्येय था, दक्षिण अफ्रीका में हिंदी शिक्षा को व्यवस्थित रूप प्रदान करना तथा हिंदी के प्रचार-प्रसार से जुड़ी संस्थाओं का मार्गदर्शन करना। संघ का प्रमुख लक्ष्य व उद्देश्य है—

- सभी क्षेत्रों में, विशेषकर लिखित व मौखिक रूप में हिंदी शिक्षण का प्रचार-प्रसार करना।
- उत्तर भारतीय संगीत, नृत्य, नाटक और कला के विशेष संदर्भ में भारतीय संस्कृति व परंपराओं का प्रचार-प्रसार तथा उनके प्रति भारतीय मूल के लोगों को सचेत करना।
- हिंदी साहित्य और हिंदी धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन को बढ़ावा देना।

संघ के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पंडितजी ने हर-संभव प्रयास किया और दक्षिण अफ्रीका में उस समय हिंदी में परीक्षा प्रणाली के अभाव में पंडित वेदालंकार राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा आयोजित परीक्षाओं में भाग लेने के लिए छात्रों को तैयार करने में अग्रणी रहे। पाठ्यक्रम तैयार करना और कार्यशालाओं का आयोजन करना उनके मुख्य कार्यों में से है। वे उन सभी संस्थाओं के बीच संपर्क अधिकारी के रूप में कार्यरत रहते जहाँ पर हिंदी की परीक्षा के लिए छात्रों को तैयार किया जाता है। डरबन, पीटरमेरित्सबर्ग, स्टेंजर, पोर्ट शेप्सटर्न तथा जोहांसबर्ग प्रमुख केंद्र हैं। बाद में आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने छात्रों के लिए पाठ्य पुस्तकें तैयार

कीं, जिसका प्रकाशन संघ ने किया। 1983 तक 5000 से अधिक छात्रों ने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की परीक्षाएँ दीं।

हिंदी प्रचार समिति के साथ-साथ शिक्षण में अनुभव होने पर हिंदी शिक्षा संघ ने भी अपनी परीक्षाएँ स्वयं आयोजित करना शुरू किया। बाद में 'हिंदी शिक्षा संघ' ने स्वयं अपनी परीक्षाओं का दायित्व उठाया, जिससे परीक्षार्थियों की संख्या में काफी वृद्धि हुई। 1984 से 1997 के बीच 7000 से अधिक छात्रों ने संघ की स्थानीय परीक्षाओं में भाग लिया।

समय के साथ संघ के कई छात्रों को क्वा-जुलु नेटल शिक्षा विभाग की मुख्य पाठशालाओं में हिंदी शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया। इन छात्रों में अनेकों ने उस समय डरबन वेस्टविल विश्वविद्यालय में उच्च स्तर पर हिंदी तथा संस्कृत की पढ़ाई जारी रखी।

आज हिंदी शिक्षा संघ दक्षिण अफ्रीका का ऐसा अकेला गैर-सरकारी संगठन है, जो इस देश में व्यवस्थित रूप से हिंदी का प्रचार-प्रसार कर रहा है। संघ की गतिविधियों पर स्वतंत्र आलेख ही नहीं वरन् संपूर्ण ग्रंथ लिखा जा सकता है। संक्षिप्त में इस संस्था के कार्य के महत्त्व का मापदंड इसी तथ्य से प्राप्त हो जाता है कि दक्षिण अफ्रीका में 9वें विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन में यह भारत सरकार की प्रमुख सहयोगी संस्था बनी। संस्था को इस शिखर तक लाने का श्रेय पंडितजी तथा उनके शिष्यों, अनुयायियों की प्रतिबद्धता व अथक परिश्रम को ही जाता है।

2. शिक्षक प्रशिक्षण

जब हिंदी शिक्षा संघ को यह अनुभव हुआ कि हिंदी शिक्षण प्रणाली को अधिक सुदृढ़ व स्तरीय बनाने के लिए सतत प्रयासरत रहना अनिवार्य है, तब संघ ने शिक्षक प्रशिक्षण के कार्यक्रम स्थापित किए और कक्षाएँ आरंभ हुई, जिसके लिए प्रशिक्षक के रूप में एक बार फिर पंडित वेदालंकार का अनुभव प्रमुख साधन बना।

शिक्षकों का प्रशिक्षण संघ की स्थापना के समय से ही उसका प्रमुख ध्येय रहा है। पंडित वेदालंकार शिक्षक प्रशिक्षण योजना तथा नित्य संगोष्ठियों का आयोजन करते रहते। इसका मुख्य कारण शिक्षकों को हिंदी शिक्षण के नवीन उपकरणों से अवगत कराना है।

पंडितजी हिंदी भाषा से संबद्ध पेपर का प्रस्तुतिकरण भी करते। पंडित वेदालंकार ने लोगों को हिंदी सिखाने के लिए स्वयं पाठ्यक्रम तैयार किए तथा पाठ्य पुस्तकें लिखीं।

3. वैदिक पुरोहित मंडल का गठन

दक्षिण अफ्रीका में पंडितजी का अभियान भाषा, धर्म और संस्कृति के तीन स्तंभों पर आधारित था। भाषा के क्षेत्र में कार्य के समानांतर उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में भी हिंदू समुदाय के लिए जो कार्य किए, उनके लिए पंडित वेदालंकार आदर्श माने जाते हैं। धर्म के क्षेत्र में उनके सराहनीय कार्य ही उनके आचार्य, लेखक तथा दार्शनिक होने का सटीक प्रमाण है।

एक सक्रिय वैदिक पुरोहित होने के नाते पंडितजी के मन में लंबे समय से यह विचार था कि आर्य प्रतिनिधि सभा के अंतर्गत ही एक ऐसी समिति का गठन किया जाए जो हिंदू समुदाय में धर्म के क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे सके। इसकी प्रथम चर्चा वे सन् 1950 में करने लगे थे। समय के साथ इस प्रकार की संस्था की आवश्यकता का महत्त्व बढ़ता गया, जिसके परिणामस्वरूप 1954 में पंडितजी ने अपने विचारों को कार्यान्वित करने का निश्चय किया और 51 जुलाई, 1954 को वैदिक पुरोहित मंडल की स्थापना की गई। पंडितजी को इसका पहला अध्यक्ष नियुक्त किया गया। वैदिक पुरोहित मंडल के सहयोग से ही पंडित वेदालंकार ने वैदिक पुरोहितों का प्रशिक्षण व्यवस्थित रूप से आरंभ किया और इसके माध्यम से आर्य समाज के सिद्धांतों को एक सुदृढ़ नींव प्राप्त हुई।

यहाँ भी धर्म के साथ भाषा के कार्य को समानांतर रूप से स्थापित किया गया। हिंदी के प्रचार-प्रसार में सहयोग प्रदान करना, पंडित वेदालंकार द्वारा गठित वैदिक पुरोहित मंडल के प्रमुख लक्ष्य एवं उद्देश्यों में एक है।

4. प्रतियोगिताएँ, सम्मान व अन्य गतिविधियाँ

पंडित के अनुसार, युवकों के मध्य हिंदी के प्रचार कार्य को प्रतिस्पर्धा से संबल मिलता है। 1951 में पंडितजी के मार्गदर्शन में संघ ने हिंदी भाषा के प्रचार के लिए एक हिंदी वाद-विवाद योजना का आरंभ किया। संघ ने 20 वर्षों तक 1971 तक इस प्रतियोगिता के आयोजन को जारी रखा। तत्पश्चात् 20 वर्षों के बाद 1991 में इसका आयोजन फिर से आरंभ हुआ।

1992 में संघ ने हिंदी भाषा के प्रचार में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देने हेतु निबंध प्रतियोगिता की शुरुआत की। यह प्रतियोगिता हिंदी छात्रों में लेखन प्रतिभा की वृद्धि में अत्यंत सहायक सिद्ध हुई।

अपनी सांस्कृतिक धरोहर के प्रति जागरूकता पैदा करने हेतु संघ ने अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं गतिविधियों का आयोजन शुरू किया। इस संदर्भ में वार्षिक हिंदी एस्टडफॉड, संगीत तथा नृत्य प्रस्तुति तथा कार्यशालाओं का आयोजन प्रमुख है।

हिंदी एस्टडफॉड

पंडित वेदालंकार का मानना है कि भाषा को कला के रूप में अभिव्यक्त करना चाहिए, ताकि यह हमारे दैनिक जीवन का अंग बन जाए। 1951 में संघ ने हिंदी भाषा प्रचार के लिए बच्चों तथा वयस्कों के लिए हिंदी एस्टडफॉड योजना का आरंभ किया।

1984 में हिंदी शिक्षा संघ ने संघ के प्रति सेवारत रहने तथा दक्षिण अफ्रीका में हिंदी के प्रचार में सेवारत लोगों के लिए 'रत्न

सम्मान' की भी शुरुआत की। गुजराती समुदाय में एकता लाने वाली गुजराती कलाकार-सम्मान की स्थापना में भी उनका योगदान महत्त्वपूर्ण है।

प्रसारण

विश्व भर में भारतीय भाषाओं के प्रचार में कार्यरत संस्थाओं में सहिंदी शिक्षा संघ वह पहली संस्था है, जिसने स्वायत्त रूप से प्रसारण में कदम रखा। अक्तूबर 1998 में 4-1 महीने के रेडियो प्रसारण की एक पहली शृंखला का लोकार्पण हुआ। कठिन संघर्ष व परिश्रम के बाद, अगस्त 2002 में चार वर्ष का लाइसेंस प्राप्त हो पाया। हिंद वाणी (www.hindvani.co.za) रेडियो मनोरंजन के माध्यम से हिंदी का प्रचार करने में अत्यंत सहायक सिद्ध हुआ है। आज यह स्टेशन 130 से अधिक स्वयंसेवकों के परिश्रम से चल रहा है। इस रेडियो स्टेशन से 50 प्रतिशत से भी अधिक हिंदी भाषा में तथा स्थानीय संगीत का प्रसारण किया जाता है। हाल ही के आंकड़ों के अनुसार, हिंद वाणी के श्रोताओं की संख्या लगभग 70,000 तक है तथा निकट भविष्य में 1,00,000 तक पहुँचने की पूर्ण संभावना है।

हिंदी के प्रचार के लिए पंडित नरदेव वेदालंकार ने जो बीज बोया था, वह एक स्वस्थ पेड़ बन गया है और इसका पोषण भी अच्छी तरह हुआ है। यह हृष्ट-पुष्ट पेड़ अपनी शाखाएँ दक्षिण अफ्रीका के कई भागों में फैला चुका है। इस कार्य के लिए न केवल दक्षिण अफ्रीका में हिंदी के विद्वान व सेवक पंडितजी को स्मरण करते हैं बल्कि अफ्रीकी महाद्वीप में हिंदी की स्थापना और प्रचार के लिए उनके योगदान को अफ्रीका, भारत और विश्व भर में याद किया जाता है।

क्वा जुलु नेटल में वरिष्ठ प्राध्यापक व दक्षिण अफ्रीका में हिंदी के प्रसिद्ध विद्वान प्रो. रामभजन सीताराम ने पंडितजी के साथ चालीस वर्ष पूर्व एक छात्र के रूप में अपने अनुभवों को इस रूप में व्यक्त किया है—

''मैंने पंडित नरदेवजी वेदालंकार को 1962 से शिक्षक तथा विद्वान के रूप में जाना है, जब एम.एल. सुलतान तकनीकी कॉलेज में मैंने उनकी हिंदी प्रारंभिक कक्षाओं में भाग लिया। तब से उनके बारे में मेरे मस्तिष्क में एक ही विचार बना रहा 'विद्या विनयम ददाति' अर्थात ज्ञान विनम्रता प्रदान करती है। पंडितजी के व्यक्तित्व में सत्य ज्ञान था और विनम्रता भी।''

आर्य सभा मॉरीशस के उप-प्रधान, श्री राजनारायण गति का कहना है—

''पंडित नरदेवजी वेदालंकार कभी न मिटनेवाली स्मृति है और मेरे जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण क्षण है। मेरी भेंट पंडितजी से 1984 में दक्षिण अफ्रीका की यात्रा के दौरान हुई थी। उनका मुसकराता हुआ व्यक्तित्व, शांत स्वभाव तथा विनम्र वाणी ने मुझे मंत्र-मुग्ध कर दिया था।''

गुजराती हिंदू परिषद् के अध्यक्ष, डॉ. पी. एल. पटेल, पंडितजी को नेताओं के बीच राजकुमार के रूप में देखते हैं। डॉ. पी.एल. पटेल का मानना है कि पंडितजी एक सच्चे कर्मयोगी थे। वास्तव में उन्हें एक निष्काम कर्मयोगी कहना ही उचित रहेगा तथा यह उनके प्रति सर्वश्रेष्ठ श्रद्धांजलि भी होगी। वे वैदिक हिंदू शास्त्रों के ज्ञाता थे। तीन भाषाओं में उनकी दक्षता थी—गुजराती, हिंदी तथा संस्कृत।

पंडित नरदेवजी वेदालंकार ने दक्षिण अफ्रीका में हिंदी भाषा के उन्नयन में कठिन परिश्रम किया है और उनका कार्य सार्थक सिद्ध हुआ है।

पंडित नरदेवजी वेदालंकार एक विनम्र स्वभाव वाले पुरुष थे। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यही थी कि वे जितने ज्ञानी थे, उतने ही विनम्र भी। वे भाषा (हिंदी, गुजराती तथा संस्कृत) के माध्यम से हिंदू धर्म का प्रचार करते थे। उन्हीं के मार्गदर्शन से दक्षिण अफ्रीका में गुजराती भाषा फल-फूल पाई और हिंदी भाषा कई गुना बेहतर होती गई।

क्वा माशु, इनांदा (Kwa Mashu, Inanda) के एडवर्ड मालिंगा का मानना है कि पंडितजी अत्यंत विनम्र स्वभाव के तथा श्रेष्ठ विद्वान थे। उनको वेदों का सत्य ज्ञान था।

वे जिसके भी सान्निध्य में आते, अपने विराट व्यक्तित्व से उनके मन को अवश्य ही छू लेते थे। वे स्त्री-पुरुष समानता के पक्षधर भी थे। सभी को शिक्षा प्रदान करना और उनके चारित्रिक, मानसिक उत्थान के लिए ही वे तत्पर रहे। नम्रता से भरे पं. नरदेवजी वेदालंकारजी का व्यक्तित्व एकदम साफ था और हिंदू धर्म के साथ हिंदी-गुजराती भाषाओं के उत्थान में अपना पूरा जीवन व्यतीत कर लिया।

ऐसे ओजस्वी और महान् व्यक्तित्व को दक्षिण अफ्रिका की माटी हमेशा याद रखेगी और यह व्यक्तित्व सदैव सभी को प्रेरित करता रहेगा।

—विश्व हिंदी सचिवालय

प्रस्तुत आलेख विश्व हिंदी सम्मेलन 2012 के अवसर पर हिंदी शिक्षा संघ द्वारा प्रकाशित 'स्मारिका' तथा 2007 में अपनी 95वीं वर्षगाँठ के अवसर पर आर्य युवक संघ ग्वाटेंग द्वारा प्रकाशित (श्रद्धांजलि : पूज्य पंडित नरदेवजी वेदालंकार) 'स्मारिका' में प्रकाशित आलेखों के आधार पर विश्व हिंदी सचिवालय द्वारा लिखा गया है।

दोनों स्मारिकाओं के प्रति सचिवालय का आभार।

आभारत—**उषा शुक्ला और उषा देसाई**

❑

मॉरीशस में हिंदी भाषा के शिक्षण व उन्नयन में राष्ट्रपिता सर शिवसागर रामगुलाम का योगदान

–तीना जगू-मोहेश

जब हम विश्व की महान हस्तियों के बारे में विचारते हैं, जिनमें महात्मा गांधी, रवींद्रनाथ ठाकुर, नेल्सन मंडेला आदि उल्लेखनीय हैं तो इन महान आत्माओं में अनायास ही सर शिवसागर रामगुलाम का नाम आ ही जाता है। इसका क्या कारण हो सकता है ?

हिंद महासागर में स्थित इस छोटे से टापू मॉरीशस में तो सर्वप्रथम डच, फिर फ्रेंच; तदुपरांत अंग्रेज़ों का साम्राज्य था, फिर इसमें हिंदी भाषा की नींव रखना तो बीसवीं सदी से पूर्व एक अविचारणीय प्रश्न ही था। लेकिन हिंदी का इतनी त्वरित गति से विकास होना तथा वर्तमान मॉरीशस में हिंदी भाषा को इस ऊँचाई के शिखर पर पहुँचा पाने का श्रेय हमारे राष्ट्रपिता सर शिवसागर रामगुलाम को ही जाता है। उन्होंने अपनी विवेकशीलता व दूरदर्शिता का ही प्रमाण दिया है।

18 सितंबर, 1900 में जनमे डॉ. रामगुलाम का आविर्भाव हमारे मॉरीशस देश के लिए एक ऐतिहासिक घटना है, क्योंकि वे न केवल हमारे देश को स्वतंत्रता दिलाने में सफल हुए, अपितु हमारी हिंदी भाषा के शिक्षण व उनके उन्नयन में भी उनका योगदान अतुलनीय है।

उनका विद्यार्थी जीवन तो अत्यंत संघर्षपूर्ण रहा। प्राथमिक शिक्षा के उपरांत छात्रवृत्ति प्राप्त करके उन्होंने माध्यमिक शिक्षा ग्रहण की। उसके बाद उन्होंने इंग्लैंड में जाकर डॉक्टरी सीखी, लेकिन ऐसा अवसर तो बिरले ही सब मॉरीशसवासियों को उपलब्ध था। मॉरीशस में मात्र कुछेक ही परिवार के बच्चों को पढ़ने का मौका प्राप्त होता था।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए सर शिवसागर रामगुलाम परदुखकातरता की भावना से आपूरित हुए। जब वे भारतीय आप्रवासियों के आगमन के शती-समारोहों के कुछ पूर्व 1935 में स्वदेश लौटे तब ही से उनका देश-निर्माण का कार्य आरंभ हो गया था। उनका स्वप्न था—'मॉरीशस को एक उन्नत राष्ट्र बनाना।' शिक्षित व्यक्ति ही शिक्षा के महत्त्व से अवगत होता है तथा राष्ट्र के निर्माण में शिक्षा की भूमिका से परिचित होता है। इसी हेतु डॉ. रामगुलाम का प्रथम लक्ष्य मॉरीशसवासियों को शिक्षित कराना रहा।

अथर्ववेद के एक मंत्र में कहा गया है—

'विद्या ददाति विनयम्'

विद्या से सुशीलता प्राप्त होती है। एक सुसंस्कृत व्यक्ति के रूप में सर शिवसागर रामगुलाम हमारी मॉरीशसीय धरती में उभरे तथा मॉरीशसवासियों के हितैषी के रूप में प्रस्तुत हुए।

हिंदी भाषा के प्रति जागरूकता पैदा करने

- **जन्म :** 17 अप्रैल, 1981।
- **जन्मस्थान :** शर्मे-ग्रेनियें।
- **परिवार :** 2004 में हेमकंठ मोहेश के साथ विवाह, 2005 में उपासना देवी मोहेश और 2007 में उन्नति देवी का जन्म
- **शिक्षा :** बी.ए. (हिंदी) और एम.ए. (हिंदी), महात्मा गांधी संस्थान से।
- **रुचि :** अध्ययन-अध्यापन, समाजसेवा, लेखन।
- **संप्रति :** प्राथमिक पाठशाला में अध्यापिका।
- **अनुसंधान :** हिंदी कहानियों में विकलांगता का चित्रण।
- **पुरस्कार :** • बी.ए. में प्रथम आने पर सम्मानित (अक्तूबर 2010)। • विश्व हिंदी सचिवालय द्वारा आयोजित निबंध प्रतियोगिता में तृतीय पुरस्कार (जनवरी 2011)। • महात्मा गांधी संस्थान द्वारा आयोजित—

♦ श्रुतिलेख प्रतियोगिता में प्रथम स्थान (अगस्त 2011)। ♦ भाषण प्रतियोगिता में द्वितीय स्थान (अगस्त 2012)। ♦ हिंदी निबंध प्रतियोगिता में प्रथम स्थान (अक्तूबर 2012)।

के लिए पत्रकारिता एक सशक्त साधन के रूप में उनके सामने उपस्थित हुई, जिसका सर शिवसागर रामगुलाम ने भरपूर प्रयोग किया। मॉरीशसवासियों ने अनेक पत्र-पत्रिकाओं का निर्माण किया, जिससे देश के लोग अपनी भाषा के पठन-पाठन में लग पाएँ। लेकिन इनका पथ तो इतना संघर्षमय रहा कि कुछ पत्रिकाएँ कुछ ही अंकों के अस्तित्व के उपरांत लुप्त हो गईं।

15 मार्च, 1909 में मणिलाल डॉक्टर द्वारा 'हिंदुस्तानी' की स्थापना हुई। 1912 में खान नादीर द्वारा 'इंडो मॉरीशियन' चली। ये दोनों पत्रिकाएँ 1914 में बंद हो गईं। श्रीमान नादीर ने धीरतापूर्वक हार नहीं मानी और उन्होंने कई पत्रिकाओं का प्रकाशन किया, लेकिन अर्थ के अभाव के कारण वे अपने प्रयास में असफल सिद्ध हुए। 1920 से 1924 तक 'मॉरीशस इंडियन टाइम्स' ने देश की राजनीति में अच्छा कार्य किया। पं. काशीनाथ किष्टो ने 1924 में 'मॉरीशस आर्य पत्रिका' और 1929 में 'आर्यवीर' को कार्यशील किया, जो हिंदी भाषा की वृद्धि में सहायक सिद्ध हुआ। रामकुमार गजाधर ने एक दशक तक (1923-1933) मॉरीशस मित्र का प्रकाशन किया। इनमें केवल 'एडवांस' और 'मॉरीशस टाइम्स' अच्छा कर सके। डॉ. रामगुलाम ने 'जनता' की स्थापना 1948 में की। यह हिंदी का प्रथम पत्र था, जो 1958 से 1982 तक प्रकाशित होता रहा। हिंदी पत्रकारिता में सर शिवसागर रामगुलाम का सहयोग अविस्मरणीय है।

1940 में डॉ. रामगुलाम ने 'एडवांस' दैनिक समाचार पत्र की स्थापना की और यह उनकी एक महान उपलब्धि थी। वे 'थंब मार्क टू' उपनाम से लिखते गए। ऐसे में अशिक्षित मॉरीशसवासी किस भाँति इन लेखों का पठन कर पाते। इसीलिए शिक्षा अर्जित करना उनकी परम आवश्यकता हो गई। अपनी भाषा व संस्कृति के उत्थान हेतु उन्होंने अपने अमूल्य विचार प्रस्तुत किए। डॉ. रामगुलाम ने 27 मई, 1941 में अपने वक्तव्य प्रस्तुत किए, जिसमें उनका कथन है—

''मैं चाहता हूँ कि प्राथमिक स्कूलों में सरकार भारतीय भाषाओं को वर्तमान दर्जे की अपेक्षा एक बेहतर स्थान दे। मैं सोचता हूँ कि यह किसी भी प्रकार से उचित नहीं कि इस देश में हम भारतीय वंशज जीवन स्तर में इस कदर पिछड़ जाएँ कि जब हमारे बच्चे बड़े हों तो वे अपनी ही भाषाएँ बोलने-समझने में असमर्थ हों।''

अतः हम कह सकते हैं कि सर शिवसागर रामगुलाम हिंदी के शिक्षण के लिए प्रेरणा का स्रोत रहे हैं।

सन् 1940 में वे पोर्ट लुई के नगर पालिका के सदस्य निर्वाचित हो गए और इसी वर्ष सरकार ने उनको विधान परिषद् का सदस्य मनोनीत कर दिया, जिसके बल पर उन्होंने अनेक सुधार कार्य किए, जिसमें हिंदी शिक्षण तथा संस्कृति भी सम्मिलित थी।

सन् 1941 में डॉ. रामगुलाम ने सरकारी काउंसिल में अपने शिक्षा संबंधी वक्तव्य से सबको प्रभावित कर दिया। उन्होंने शिक्षा निर्देशक पर इतना दबाव डाला कि लॉर्ड महोदय को घोषणा करनी पड़ी कि भारतीय भाषाओं की पढ़ाई बरकरार रखी जाएगी। चूँकि कहा जाता है—

'भाषा गई तो संस्कृति गई'

इसी विचारधारा का मनन करते हुए डॉ. रामगुलाम ने भाषा के माध्यम से इस बहु-सांस्कृतिक राष्ट्र में आपसी मेल-जोल की भावना को अंकुरित, पल्लवित व फलित होने के लिए प्रोत्साहित किया।

विश्वयुद्ध के बाद जब सरकार ने संविधान सुधार समिति का गठन किया, तब डॉ. रामगुलाम ने अपने संविधान संबंधी उच्चस्तरीय वक्तव्यों एवं हस्ताक्षरों से यह प्रमाणित कर दिया कि उनकी टक्कर का नेता संसद में और कोई नहीं। अतः उपनिवेश सचिव को विवश होकर 'सहज शिक्षा मताधिकार' मॉरीशस को देना पड़ा।

प्राथमिक पाठशालाओं में हिंदी के शिक्षण को बढ़ावा देने हेतु सर शिवसागर लिखते हैं—

''हम पाठ्यक्रम में फ्रेंच को हटाने की माँग नहीं कर रहे हैं। हम संवैधानिक तरीके से भारतीय भाषाओं की इस देश में पुनर्प्रतिष्ठा करना चाहते हैं, उसका आत्म-सम्मान वापस दिलाना चाहते हैं, ताकि हम अपने पूर्वजों की उन आकांक्षाओं से वंचित न हों, जो हमारे साहित्य और कला में व्यक्त हैं और जिस पर बहुत से राष्ट्र ईर्ष्या करते हैं।''

इसी ध्येय से डॉ. रामगुलाम ने जगह-जगह पर बैठकाएँ खोलने की प्रेरणा दी, जहाँ पर बच्चे शाम को हिंदी की पढ़ाई कर पाएँ।

सर शिवसागर रामगुलाम का मानना था कि यदि हमें देश की प्रगति में हाथ-से-हाथ मिलाकर चलना है तो हमारी हिंदी भाषा व संस्कृति को भी फ्रांसीसी भाषा के समक्ष होकर बिना भेदभाव के पलने-पनपने का अवसर प्राप्त करना चाहिए। सत्ताधारी फ्रेंच भाषी से टक्कर लेते हुए सर शिवसागर रामगुलाम निर्भीकतापूर्वक देशवासियों को आश्वस्त करते रहे और वे जनता को सलाह देते रहे कि भले ही हम अपनी हिंदी भाषा को सामने लाने के लिए प्रयासशील हो रहे हैं, लेकिन हमें कदाचित अन्य भाषा के प्रति घृणा भाव नहीं रखना चाहिए। वे कहते थे—

''किसी दूसरे के धर्म, भाषा और संस्कृति की आलोचना मत करो, उसके साथ छेड़छाड़ न करो।''

इस हृदयस्पर्शी संवाद से डॉ. रामगुलाम के प्रति मॉरीशसवासियों का उनके प्रति सम्मान और भी बढ़ गया और उनके प्रति अटूट आस्था थी कि वे ही एक ऐसे मसीहा बनेंगे, जो उन्हें उनकी भाषा के

उत्थान में सहयोग देंगे।

लेकिन ध्यातव्य बात यह है कि इस निर्माण कार्य में सर शिवसागर रामगुलाम का मार्ग निष्कंटक नहीं रहा। उन्हें बारंबार निरुत्साह किया गया उदाहरणार्थ, 2001 के नोबेल विजेता वी.एस. नैपोल 'संडे टाइम्स मैगजीन' में 16 जुलाई, 1972 में लिखते हैं— 'मॉरीशस मनुष्यों का एक सघन जंगल है'। साथ ही 1960 में प्रो. मीड का मत था—''मॉरीशस में आर्थिक विविधीकरण और औद्योगिक विकास की कोई उम्मीद नहीं थी।''

इसे सर शिवसागर रामगुलाम ने चुनौती के रूप में स्वीकारा तथा अपने कार्य में कार्यरत रहे। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि यदि मॉरीशस प्रगति कर पाएगा तो उसका आधार मात्र शिक्षा व बहु-सांस्कृतिक एकता ही है और कुछ नहीं।

डॉ. रामगुलाम एक कुशल अंतर्राष्ट्रीय राजनेता के रूप में उभरते गए। उन्होंने विदेश यात्राएँ करके इंग्लैंड, फ्रांस, भारत, अमरीका, रूस, चीन तथा अनेक अफ्रीकी, यूरोपीय और एशियाई देशों से कूटनीतिक संबंध स्थापित किए। उन्हीं की पहल पर मॉरीशस राष्ट्रकुल, संयुक्त राष्ट्र संघ, अफ्रीकी एकता संगठन, गुटनिरपेक्ष संगठन तथा यूरोप के साझा बाज़ार आदि संगठनों में प्रवेश कर पाया, जिससे देश के विकास में भारी सहायता मिली।

वे 25 अक्तूबर, 1968 को यूनेस्को से सम्मिलित हुए, जिससे मॉरीशस को हर सुविधाएँ उपलब्ध कराई गईं, जिससे मॉरीशसीय शिक्षा व्यवस्था स्थापित हो सके। शिक्षा पर उन्होंने अधिक बल दिया। बेंजामिन फ्रॉक्ले का यह कथन है—'ज्ञान में निवेश करना ही सबसे अच्छा सिद्ध होता है।' तथा नेल्सन मंडेला का मत है— 'शिक्षा ही वह सशक्त साधन है, जिससे आप दुनिया को बदल सकते हैं।'

हमारे अनुसार इसी विचारधारा को आत्मसात् करते हुए वे इस संघर्षमयी पथ पर प्रशस्त होते गए। शिक्षा पर बल देते हुए वे हिंदी भाषा के पठन-पाठन के बारे में भी विचारते गए।

डॉ. रामगुलाम ने 1976 में मुफ्त शिक्षा का ऐलान करके दुनिया को चकित किया। नि:शुल्क शिक्षा के द्वारा डॉ. रामगुलाम ने अपने देश की भावी पीढ़ी को आनेवाले संघर्षों की चुनौतियों से जूझने का साहस प्रदान किया। उन्होंने दृढ़ संकल्प के साथ शिक्षा-पद्धति के निर्माण की योजना बनाई। इस कार्य में सर खैर जगतसिंह का योगदान विस्मृत नहीं किया जा सकता है। स्कूलों तथा अध्यापकों की वृद्धि, भारतीय भाषाओं की पढ़ाई, स्कूलों में दूध की व्यवस्था, स्कूली बच्चों के लिए जूते, मॉरीशस विश्वविद्यालय तथा महात्मा गांधी संस्थान की स्थापना, अफ्रीकी भाषाओं के लिए स्कूलों का निर्माण, मुफ्त माध्यमिक तथा विश्वविद्यालयीय शिक्षा प्रणाली आदि। निर्धन विद्यार्थियों को माध्यमिक शिक्षा का खर्च सरकार की ओर से मिलने का प्रबंध भी किया। उन्होंने अपनी सूझ-बूझ से माध्यमिक कक्षाओं के छात्र-छात्राओं के लिए मुफ्त पुस्तकें उपलब्ध करवाईं। स्कूल व कालेज के विद्यार्थियों के लिए काफी संख्या में छात्रवृत्ति का प्रबंध भी किया।

'मॉरीशस इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन' की नींव की स्थापना जब हुई तब उनका यह कथन रहा—

''मैं अध्यापन के व्यवसाय व मॉरीशस के शिक्षा संस्थान से यही आशा करता हूँ कि वे हमारे इच्छुक परिवर्तन को ला पाएँ। हम आशा रखते हैं कि हमारे विद्यालय, हमारे नवयुवकों को ऐसे प्रशिक्षण दें कि वे हर उस अवसर का लाभ उठा पाएँ, ताकि वे अपनी विवेकशील बुद्धि का विकास कर पाएँ।''

आज महात्मा गांधी संस्थान द्वारा हिंदी की पढ़ाई विश्वविद्यालयीय स्तर पर हो रही है और प्राथमिक पाठशालाओं के हिंदी अध्यापकों के प्रशिक्षण का भी उत्तरदायित्व इसी संस्था को जाता है। हम निस्संकोच होकर कह सकते हैं कि हिंदी के शिक्षण में कोई कसर नहीं छोड़ी जा रही है। मॉरीशस में भारत से प्रो. रामप्रकाश का आगमन हिंदी शिक्षकों के लिए वरदान सिद्ध हुआ। उन्होंने शिक्षकों को ऐसे प्रशिक्षण दिए कि आज हम गर्व के साथ कह सकते हैं कि हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है। हिंदी भाषा के उन्नयन में डॉ. सर शिवसागर रामगुलाम का प्रोत्साहन सराहनीय है। वे अपने सार्वजनिक भाषणों में अक्सर कहा करते थे, ''जिस दिन हिंदी यहाँ से जुदा हो जाएगी, हमारे यहाँ रहने का कोई मतलब नहीं रहेगा। इसलिए मैं आप सबसे हिंदी बोलने और उसको प्रचारित करने की अपील करता हूँ।''

1976 में दूसरे विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर हिंदी के महान लेखक मॉरीशस आए थे। उस अवसर पर श्रीमती इंदिरा गांधी ने घोषणा की—

'चाचा रामगुलाम भारतीय संस्कृति के महानतम प्रवक्ता तथा एशिया के सबसे बड़े राजनेता हैं।'

आज तो मॉरीशस को एक 'साइबर आईलैंड' नाम से विभूषित किया जाता है। इसकी परिकल्पना तो डॉ. रामगुलाम ने ही की, जिसे उनके सुपुत्र डॉ. नवीनचंद्र रामगुलाम बड़े ही सिद्धहस्त ढंग से अपने पिता के सपनों को साकार कर रहे हैं। हिंदी भाषा का भी प्रयोग वर्तमान समय में प्रौद्योगिकी के अंतर्गत उभर रहा है।

अंतत: कहा जा सकता है कि सर शिवसागर रामगुलाम एक अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व थे, जिन्होंने अपने और अपने देश के लिए अंतर्राष्ट्रीय मान्यता, अपार आदर और गहन श्रद्धा अर्जित की। मॉरीशस इस बात के लिए उनका ऋणी है कि आज समस्त अंतर्राष्ट्रीय

संगठनों में और विश्व में पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण तक हमारी आवाज ध्यान से सुनी जाती है। इस सफलता का एकमात्र आधार हमारे देश की बहु-सांस्कृतिक एकता व शिक्षा प्रणाली का गठन है, जिसमें सर शिवसागर रामगुलाम की दूरदर्शिता व योगदान सराहनीय व अविस्मरणीय है। हिंदी भाषा की वर्तमान स्थिति पर अपनी दृष्टि फेरते हुए हम यह निस्संकोच होकर कह सकते हैं कि वे इसके शिक्षण व उन्नयन के जटिल अभियान में सफल हुए हैं। बच्चे और युवक उन्हें 'चाचा' तथा 'राष्ट्रपिता' कहकर पुकारते हैं। यह मॉरीशसवासियों के उनके प्रति असीम प्रेम का परिचायक है। बहुमुखी प्रतिभा संपन्न डॉ. रामगुलाम ने मॉरीशस के लिए वही किया है, जो महात्मा गांधी तथा नेहरू ने भारत के लिए किया है। इसी हेतु हम उनके प्रति नतमस्तक हैं।

मॉरीशसीय कवि जनार्दन कालीचरण की कविता 'यादों की सौगात' में सिद्धहस्त रचनाकार ने डॉ. शिवसागर रामगुलाम के बारे में लिखा है, जिसका एक अंश उल्लेखनीय है—

'जन-जन के अज्ञान की निद्रा तोड़कर
उनके वोटों के विमान में बैठकर
राजसभा में जाकर अपना कमाल दिखाया
प्रधानमंत्री बनकर देश को आज़ादी का दान दिलाया;
चौरंगे झंडे से देश का सम्मान किया
दुनिया में उसके नाम का मान बढ़ाया,
उसने देश की जनता को साथ जोड़ा,
गरीबों से कभी मुख न मोड़ा
राष्ट्र भर में बिजली की जोत फैलाकर
वृद्ध विधवाओं को जीने की पेंशन का स्रोत दिलाकर
अस्पताल-डिस्पेंसरी बनवाकर
स्कूल-कॉलेजों में भारतीय भाषाएँ पहुँचाकर
राष्ट्र को उन्नति का नया मार्ग दिखाकर
और शिक्षा को शुल्क की जंजीर से मुक्त कर
जन-जन के मन में ज्ञान का प्रकाश फैलाया
और देशभर में राष्ट्रपिता का नाम पाया;
जब तक रहेंगे दुनिया में नारी-नर
शिवसागर रामगुलाम नाम रहेगा अमर
यह कुछ साल पहले की बात है। यह यादों की शुभ सौगात है॥'

—तीना जगू मोहेश
गालेआ नंबर 2
कास्तेल, मॉरीशस
इ-मेल : teenamohesh@hotmail.com

❑

महापुरुष जो उपकार करते हैं, उसका प्रतिफल नहीं चाहते।

— संत तिरुवल्लुवर

एकता का किला बड़ा दृढ़ है। इसके भीतर रहकर कोई प्राणी दुःख नहीं भोगता।

— अज्ञात

कृतज्ञता मित्रता को चिरस्थायी रखती है और नए मित्र बनाती है।

— कहावत

महाकवि प्रो. हरि शंकर आदेशजी—एक महर्षि

–आशा मोर

त्रिनिदाद में हिंदी और संगीत का शिलान्यास करनेवाले महापुरुष प्रवासी भारत रत्न महाकवि प्रो. आदेशजी को यदि हम महर्षि कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। प्रो. हरि शंकर आदेशजी हिंदी के अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त साहित्यकार हैं। वे प्रवासी साहित्यकारों में अग्रणीय स्थान रखते हैं। साहित्य, संगीत एवं दर्शन की त्रिवेणी के प्रतिरूप महाकवि आदेशजी का जन्म तो भारत में 7 अगस्त, सन् 1936 में हुआ, परंतु उनकी कर्मभूमि बना त्रिनिदाद। बाद में यह विस्तार कनाडा और अमेरिका में भी फैल गया। पर महाकवि आदेशजी की आत्मा में हमेशा भारत ही बसता है। कोई कहीं भी रहे, कहीं भी अपनी कर्मभूमि बना ले, पर उसका मन, उसकी आत्मा सदैव अपने देश में ही बसती है।

प्रो. हरिशंकर आदेशजी

महाकवि आदेशजी ने लिखा है—

जब जब ईश्वर मुझे जन्म दें
भारत में हो उदय प्राण रवि,
चाहे अस्त कहीं पर कर दें।
एक और कविता में
तन रहते हैं भले यहाँ, पर प्राण वहीं रहता है

त्रिनिदाद में सभी उन्हें गुरुजी तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला आदेशजी को गुरु माता से संबोधित करते हैं। गुरुजी एक बहुत ही आस्तिक प्रवृति के, माँ सरस्वती के उपासक हैं। एक विराट व्यक्तित्व के धनी होते हुए भी उनका व्यवहार एकदम सरल है।

भारत सरकार ने गुरुजी को यहाँ सन् 1966 में भारतीय उच्चायुक्त में सांस्कृतिक पद पर नियुक्त किया था। उस समय यह देश कुछ वर्ष पहले ही स्वतंत्र हुआ था और यहाँ के लोग दिशा ढूँढ़ रहे थे। गुरुजी ने उन्हें दिशा निर्धारित करने में उनकी सहायता की।

यहाँ जो भी लोग थे, सब आपस में बँटे हुए थे। गुरुजी ने उन्हें एक ऐसा मंच, एक ऐसा विद्यालय दिया, जहाँ सब आ सकें। सब एक साथ बिना किसी ऊँच-नीच के, बिना किसी भेद-भाव के एक साथ शिक्षा ग्रहण कर सकें।

गुरुजी ने बहुत ही व्यवस्थित रूप से इसकी शुरुआत की। इसके लिए उन्होंने भारतीय विद्या संस्थान की स्थापना की, और यहाँ पर संगीत, हिंदी तथा संस्कृत की शिक्षा देनी प्रारंभ की। उस समय यहाँ हिंदी की किताबें उपलब्ध नहीं थीं। इसलिए उन्होंने हिंदी की किताबें लिखना शुरू किया। गुरुजी ने जितना इस देश के लिए, हिंदी व संगीत के क्षेत्र में किया, उतना आज तक किसी दूसरे व्यक्ति ने नहीं किया।

गुरुजी ने हमेशा मौन रहकर कार्य किया है। वे हमेशा नेपथ्य में रहकर अपना कार्य करते रहे। आज उन्हीं की लगन और मेहनत का फल है कि हिंदी आज त्रिनिदाद में विश्वविद्यालय की कक्षाओं तक पहुँच गई है। गुरुजी के द्वारा 20 विद्यालय चलाए जाते हैं। अब तक लगभग 55,000 विद्यार्थी उनके संस्थान में शिक्षा पा चुके हैं। सिर्फ त्रिनिदाद में ही नहीं बल्कि इस संस्थान की शाखाएँ, इंग्लैंड, कनाडा, अमेरिका सभी जगह हैं। पर मुख्य कार्यालय आदेश आश्रम त्रिनिदाद में ही है। भारतीय विद्या संस्थान में आरंभ से लेकर स्नातकोत्तर स्तर तक की शिक्षा पूर्णतया नि:शुल्क दी जाती है। संस्था को कोई अनुदान नहीं मिलता। यह स्वयं-सेवी संस्था है।

त्रिनिदाद में आदेश आश्रम के अतिरिक्त और भी कई विद्यालय गुरुजी के द्वारा चलाए जाते हैं जैसे, शिक्षा निकेतन, जीवन ज्योति, जो कि सैंफरनांडो में है। गुरुदेव प्रो. हरि शंकर आदेश शिक्षा निकेतन पिनाल तथा त्रिनिदादेश्वर महादेव विद्यालय जो कि पिनाल में है, यह सब गुरुजी की इमारतें हैं। कुछ अन्य विद्यालय दूसरे व्यक्तियों की इमारतों में भी चलाए जाते है। इन सभी संस्थाओं में शिक्षा नि:शुल्क प्रदान की जाती है। सभी शिक्षक भी नि:शुल्क ही पढ़ाते हैं। इन सभी विद्यालयों में हिंदी, संगीत व संस्कृत की शिक्षा बिना

- **जन्म :** 25 अक्तूबर, 1960, झाँसी, उत्तर प्रदेश, भारत में।
- **शिक्षा :** बी.एस.सी., जीव विज्ञान।
- **कार्यक्षेत्र :** पूर्व कर्मचारी, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, झाँसी। हिंदी में कविताएँ एवं लघु कथाएँ लिखने में रुचि। विभिन्न पत्रिकाओं में, कविताएँ एवं लघुकथाएँ प्रकाशित।
- **संप्रति :** मैनेजिंग डायरेक्टर सैंट क्लेयर एम.आर.आई. सेंटर, त्रिनिडाड और टोबेगो

किसी भेदभाव के दी जाती है।

संगीत में भी गायन व वादन दोनों सिखाए जाते हैं। वादन में तबला, हारमोनियम, सितार, सभी तरह के वाद्य यंत्रों की शिक्षा दी जाती है। इन सभी शिक्षकों को भी गुरुजी ने ही सिखाकर तैयार किया है। गुरुजी के यहाँ आने से पहले कोई सा, रे, ग, म, प भी नहीं जानता था। पर लोगों में गाने के प्रति रुचि बहुत थी। गुरुजी ने संगीत की सही शिक्षा देनी प्रारंभ की। साथ-ही-साथ हिंदी अनिवार्य विषय रखा। आज उनके प्रयासों का ही फल है की संगीत शिक्षा विद्यालयों तक पहुँच गई है। गुरुजी का मुख्य उद्देश्य सदैव हिंदी का प्रचार-प्रसार रहा। कुछ विद्यार्थियों को जिनको संगीत में विशेष रुचि थी, उनको संगीत माध्यम बनाकर हिंदी सिखाई। उनकी कक्षाओं में हिंदी साहित्य सरोवर, हिंदी प्रवेश, साहित्य भूषण, सभी परीक्षाएँ होती हैं, तथा उनको लंदन की परीक्षाओं में भी शामिल किया गया है। एडवांस लेवल की परीक्षाएँ भी करवाईं तथा संस्कृत भी पढ़ाई। संगीत अभी तक स्नातक तक था। पर अब स्नातकोत्तर की कक्षाएँ भी शुरू हो गई हैं। जब मैं गुरुजी से साक्षात्कार के लिए मिली थी तो गुरुजी ने कहा था कि जो पौधा उन्होंने लगाया, आज वो लहलहा रहा है, फल-फूल रहा है, बस यही देखकर उनके मन को आनंद प्राप्त होता है। हिंदी के लिए गुरुजी का प्रेम अगाध और अनंत है। श्री अटल बिहारी वाजपेयीजी जब प्रधानमंत्री बने तब गुरुजी ने उन्हें पत्र लिखा, पंक्तियाँ कुछ इस तरह से थीं—

तुम्हें बधाई बंधु अटलजी, सफल विजय अभियान की,
आशा है अब स्थिति सुधरेगी, पूरे हिंदुस्तान की।
हिंदी का कवि बना प्रधानमंत्री है, भारतवर्ष का,
इससे बढ़ क्या और विषय हो सकता हमको हर्ष का,
आशा है अब रक्षा होगी, हिंदी के सम्मान की।

गुरुजी ने बताया आजकल उनके दो-तीन घंटे तो पत्र व्यवहार में निकल जाते हैं। वे सभी के पत्रों का जवाब कविता के रूप में ही देते हैं। एक पुस्तक के रूप में उनके पत्रों का संकलन भी प्रकाशित हुआ है। गुरुजी ने कहा—

कविता ही मेरा जीवन, मेरा जीवन ही कविता,

मैं परिभाषा कविता की, मेरी परिभाषा कविता।

यह उन्होंने सन् 1950 में लिखा था और इसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

गुरुजी ने लगभग 300 से भी अधिक पुस्तकें लिखी हैं। एक लंबी सूची है। जो इंटरनेट पर देखी जा सकती है। गुरुजी का सर्वप्रथम महाकाव्य अनुराग है। जिसमें उन्होंने सामाजिक विषमताओं का उल्लेख किया है। गुरुजी का दूसरा महाकाव्य शकुंतला है। जिसमें उन्होंने शकुंतला कि गरिमा का व्याख्यान किया है कि वह एक अबला नहीं अपितु सबला नारी थीं। यह एक सौंदर्य रस प्रधान काव्य है। गुरुजी का तीसरा महाकाव्य महारानी दमयंती है। जो कि दांपत्य जीवन पर रोशनी डालता है। गुरुजी का चौथा बहुत ही महत्त्वपूर्ण महाकाव्य निर्वाण है। जिसमें उन्होंने महात्मा बुद्ध के बारे में लिखा है। लोगों की धारणा के अनुसार महात्मा बुद्ध एक नास्तिक थे। पर यह सच नहीं है। इस महाकाव्य में उन्होंने वैदिक सिद्धांत के बारे में बताया। गुरुजी ने अपने महाकाव्य में महात्मा बुद्धजी का चित्रण कुछ अलग ही प्रकार से किया है। आजकल वे एक और महाकाव्य लिख रहे हैं, जिसका नाम रघुवंश शिरोमणि है। जो प्रभु राम को समर्पित है। उनके लिखे हुए काव्यों पर कई व्यक्तियों ने शोध भी किया है। जब मैंने गुरुजी से पूछा कि आपको अपना कौन सा ग्रंथ सर्वप्रिय है, या यूँ कहें कि कौन सा ग्रंथ आपको आपकी आत्मा के निकटतम लगता है, तो गुरुजी ने कहा—मुझे तो सभी ग्रंथ अच्छे लगते हैं, ये तो सरस्वती माता का वरदान हैं, किसी में कुछ है, किसी में कुछ है। ये सब मेरे मानस-पुत्र हैं। गुरुजी ने कहा कि कुछ लोगों का मानना है कि महाकाव्य का युग समाप्त हो गया। पर वे ऐसा नहीं समझते। उनके अनुसार, महाकाव्य का युग कभी समाप्त नहीं होता। महाकाव्य स्थायी स्तंभ की तरह होते हैं। अन्य पुस्तकें लोग भूल जाते हैं।

आज उन्हीं की लगन और मेहनत का फल है कि हिंदी आज त्रिनिदाद में विश्वविद्यालय की कक्षाओं तक पहुँच गई है। गुरुजी के द्वारा 20 विद्यालय चलाए जाते हैं। अब तक लगभग 55,000 विद्यार्थी उनके संस्थान में शिक्षा पा चुके हैं। सिर्फ त्रिनिदाद में ही नहीं बल्कि इस संस्थान की शाखाएँ, इंग्लैंड, कनाडा, अमेरिका सभी जगह हैं।

लेकिन महाकाव्य सभी को हमेशा याद रहते हैं। गुरुजी के महाकाव्यों में एक आत्मा है जिसमें उन्होंने वैश्वीकरण का उल्लेख किया है। उनमें एक उद्देश्य है, जो सार्वभौमिक है। गुरुजी के अनुसार—

यह विश्व ही परिवार हो,
सब के लिए सम प्यार हो॥

यही उनकी अभिलाषा है। महाकाव्यों के अतिरिक्त गुरुजी ने कई सप्तशतियाँ हिंदी साहित्य को दी हैं। निर्मल सप्तशती, आदेश सप्तशती, जीवन सप्तशती, जमुना सप्तशती, विवेक सप्तशती, पत्नी सप्तशती, सुरभि सप्तशती आदि।

महाकवि आदेशजी भारतीय संस्कृति के उपासक हैं। उनके महाकाव्यों में, उनके ग्रंथों में, उनकी कविताओं में, सभी जगह आपको भारत माता की वंदना ही मिलेगी।

उनकी भारत माता की वंदनाओं की पूरी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, जिनके नाम हैं 'जय भारत माता' तथा 'प्रवासी की पाती भारत माता'। गुरुजी के शब्दों में ही—

"संसार में इनसानियत की शान है भारत।
मेरा जिगर है और मेरी जान है भारत।
'आदेश' तहे दिल से मैं करता हूँ इबादत,
है मेरा देवता, मेरा भगवान है भारत॥"

[प्रवासी की पाती भारत माता के नाम से उद्धृत]

गुरुजी कई पत्रिकाएँ भी निकालते हैं। 'ज्योति' पत्रिका त्रैमासिक है। इसमें हिंदी के अतिरिक्त कुछ खंड अंग्रेज़ी के भी हैं। हिंदी की नई पत्रिका 'प्रगति' आरंभ की है। 'जीवन ज्योति' पत्रिका इंटरनेट पर निकालते हैं। अभी त्रिनिदाद से 'उभरते क्षितिज' नामक नया संकलन भी निकाल रहे हैं।

मैंने गुरुजी से पूछा कि आपने इतना परिश्रम त्रिनिदाद में हिंदी सिखाने के लिए किया। आपको क्या लगता है, यहाँ हिंदी की स्थिति अब कैसी है। यहाँ पर लोग अभी भी हिंदी बोल नहीं पाते हैं। उसके लिए किस तरह के प्रयास की अभी और आवश्यकता है। तो गुरुजी ने कहा, बोलना तो अभ्यास पर है। इन्हें प्रोत्साहन देना होगा। इनके लिए वातावरण तैयार करना होगा। ये लोग मिलने पर आपस में हिंदी में बात करें। शुद्ध-अशुद्ध सभी तरह के व्याकरण के साथ बात करें। तो इनके अंदर बोलने का एक विश्वास भी जाग्रत् होगा। हम इसकी भी व्यवस्था कर रहे हैं। हम लोग अच्छी हिंदी बोलते हैं। हिंदुस्तान में लोग हिंदी बोलते हैं तो उसमें अस्सी प्रतिशत इंगलिश के शब्द होते हैं। हमारे विद्यार्थी हिंदी बहुत अच्छी नहीं बोलते हैं। लेकिन कुछ विद्यार्थी जो बोल लेते हैं, वो बहुत अच्छी बोल लेते हैं। एक विद्यार्थी ने कनाडा में किसी से बात की तो उन्होंने कहा—आप बनारस के लगते हो। तब विद्यार्थी ने कहा—नहीं, मैं त्रिनिदाद का हूँ। गुरुजी ने कहा कि, एक और मुख्य बात है कि हिंदी के लिए व्यवसाय का आकर्षण पैदा किया जाए, जिससे कि जो हिंदी बोलनेवाले हैं उन्हें नौकरी मिले, तब वह हिंदी पढ़ने और बोलने में और भी ज्यादा रुचि लेंगे। जैसा कि पहले हुआ, इनके माता-पिता ने इन्हें अंग्रेज़ी पढ़ाई, जिससे कि इन्हें नौकरी मिल सके। अभी हिंदी अध्यापक की नौकरी मिलने की संभावना हो गई है।

गुरुजी को पूरे विश्व ने बहुत सारे सम्मानों से नवाजा है। उसकी भी एक लंबी सूची है, जिसे कि इंटरनेट पर देखा जा सकता है। लेकिन फिर भी मैं कुछ सम्मानों कि चर्चा करना चाहूँगी। त्रिनिदाद में गुरुजी को हमिंग वर्ड गोल्ड मेडल दिया गया। यह त्रिनिदाद और टोबेगो की सरकार का राष्ट्रीय सम्मान है, जो यहाँ के राष्ट्रपति द्वारा दिया जाता है। भारतवर्ष में भी गुरुजी को पद्मभूषण डॉ. मोटूरी सत्यनारायण सम्मान से मंडित किया गया, यह सम्मान भी भारत के राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित किया जाता है।

जब मैंने गुरुजी से पूछा कि आपको इतने सम्मान दिए गए। किसी सम्मान से ऐसा हुआ हो जिससे आपका मन आत्मविभोर हो गया हो, तो गुरुजी ने कहा, सभी सम्मान अच्छे लगते हैं। लेकिन उनका उल्लास क्षणिक होता है। देर तक नहीं रहता है।

अभी एक सम्मान जिसने मुझे बहुत आनंदित किया, वह है, इंटरनेशनल बायोग्राफिक सेंटर कैंब्रिज से लिविंग लैजेंड का। यूनिवर्सिटी ने सभी देशों में से कुल 13 लाख लोगों में से सौ लोगों को चुना और उसमें भी 20 लोगों को विशेष रूप से सम्मानित किया, उसमें भी उनका नाम पहला है।

जब मैं चलने लगी तो गुरुजी ने मुझसे पूछा, आप पीती हैं, तो मैंने कहा 'नहीं'। तब गुरुजी ने अपनी एक पुस्तक 'मदिरालय' मुझे अपने हस्ताक्षर व आशीष के साथ भेंट स्वरूप दी और कहा कि, फिर तुम्हें यह पसंद आएगी। मेरा मन गद्गद हो गया। अगले दिन जब मैं इस पुस्तक को पढ़ने बैठी तो उसको बिना समाप्त किए अपनी जगह से उठ नहीं सकी। मैंने श्री हरिवंशराय बच्चनजी की मधुशाला भी पढ़ी हुई है। मदिरालय, मधुशाला को चुनौती देता हुआ अपने आप में एक अनूठा काव्य है। मेरे विचार में तो इस काव्य की एक प्रति हर घर में होनी चाहिए, जो कि समय-समय पर हमारे नवयुवाओं को, जो कि इस गर्त में दिन प्रतिदिन गिरते जा रहे हैं, इस ओर जाने से रोकती रहे और उन्हें सही दिशा में जाने के लिए प्रेरित करती रहे।

मेरा तो महाकवि आदेशजी से यह आग्रह होगा कि वे इसका अनुवाद अंग्रेज़ी में भी करें और विश्व के कोने-कोने में इस पुस्तक का प्रचार-प्रसार हो। इस पुस्तक की एक-एक पंक्ति गूढ़ अर्थ से

भरी हुई है तथा पीनेवालों पर सीधा प्रहार करती है। यदि कोई व्यक्ति एक बार साफ मन से इस पुस्तक को पढ़ ले तो दोबारा कभी जाम हाथ में न उठाए। इस काव्य की भाषा भी सरल है। जिसे साधारण हिंदी समझनेवाला भी समझ सकता है। कुछ पंक्तियाँ इस तरह से हैं—

कविता, जग जीवन मंदिर को,
मधुशाला की संज्ञा देना,
यह पाप करा सकता कवि से
इस जग में केवल मदिरालय॥

कुछ और पंक्तियाँ इस तरह से हैं—
क्या शांति दे सकेंगे, जिनमें
आँसू का हो खारापन लय।
क्या धैर्य बँधाएँगे जग को
कर देते जो चेतना विलय।

गुरुजी ने कहा कि यह तो कुछ संतोष के क्षण थे इसलिए उन्होंने मुझे यह सब बताया, अन्यथा उन्हें स्वयं भी याद नहीं कि कब क्या लिखा है। आजकल वे जिस रजिस्टर पर लिख रहे थे वह उनका 88वाँ रजिस्टर था।

आजकल गुरुजी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। नाक में ऑक्सीजन की नली लगी रहती है। चलने में तकलीफ होती है। अमेरिका में कई यूनिवर्सिटी में हिंदी सिखाई जाती है, पर अमेरिकन यूनिवर्सिटी ऑफ हिंदू नॉलिज, फ्लॉरिडा यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिका जहाँ हिंदी साहित्य, संस्कृत, साहित्य, भारतीय दर्शन तथा भारतीय संगीत [गायन, वादन, नृत्य] के साथ हिंदू धर्मशास्त्र की शिक्षा भी दी जाएगी। एसोशिएट डिग्री के अतिरिक्त बी.ए., एम.ए. तथा पी-एच.डी. तक की शिक्षा का प्रावधान है। गुरुजी को वहाँ का चांसलर बनाया गया है और वह अगले हफ्ते अपना कार्यभार सँभालने के लिए जानेवाले हैं। मैं खुशकिस्मत थी कि गुरुजी इस समय त्रिनिदाद में थे और उन्होंने अपने व्यस्त कार्यक्रम में से समय निकालकर मुझे दिया। मैं गुरुजी की तहे दिल से आभारी हूँ। तथा गुरुजी के चरणों में नमन करती हूँ।

—सेंट क्लेर एम.आर.आई. सेंटर
11, हेवलॉक स्ट्रीट, सेंट क्लेर पोर्ट ऑफ स्पेन
त्रिनिडाड एवं टोबेगो
इ-मेल : asha.mor1@gmail.com

❑

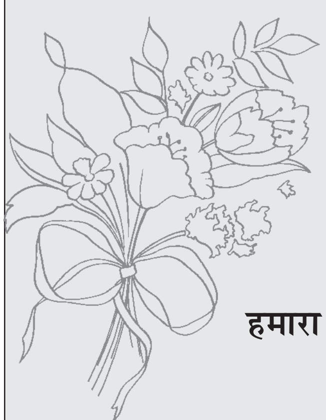

गलतियों की सबसे बड़ी औषधि है उनको भूल जाना।

— साइरस

हमारा गौरव कभी न गिरने में नहीं है, अपितु गिरकर हर बार उठने में है।

— कन्फ्यूशस

जिस कुल में स्त्री-पुरुष परस्पर एक-दूसरे से संतुष्ट रहते हैं, उसका कल्याण अवश्य होता है।

— अज्ञात

हिंदी का दूर देश का एक बेटा : ओदोलेन स्मेकल

–कुमार परिमलेंदु सिन्हा

- **जन्म स्थान :** लौरिया, पश्चिम चंपारण, बिहार में।
- **जन्म तिथि :** 21 सितंबर, 1965।

पटना विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर।

देश-विदेश की अनेक प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं, ई-पत्रिकाओं में कविताएँ तथा साहित्यिक, सांस्कृतिक, बैंकिंग एवं आर्थिक विषयों पर आलेख प्रकाशित। 'उदास रातों का सफर' (कविता संग्रह) तथा 'नई कविता में इतिहास बोध' (आलोचना) शीघ्र प्रकाश्य।

- **संप्रति :** भारतीय रिजर्व बैंक में अधिकारी के रूप में कार्यरत।

बहुत पहले की बात है। लगभग चौबीस/पचीस साल पहले। पटना विश्वविद्यालय में पटना कॉलेज का कॉमन रूम। हिंदी विभाग के छात्रों के हुजूम के साथ ही पटना के बहुत सारे साहित्यकारों-संस्कृतिकर्मियों का अच्छा जमावड़ा। फूल मालाओं से सजे सुंदर मंच पर कुछ ही क्षणों में एक विलायती चेहरा (वस्तुत: यह शब्द मैं प्रयोग करना नहीं चाहता, क्योंकि इस विलायती चेहरे के भीतर छिपी आत्मा किसी भी भारतीय से ज्यादा भारतीय लगती रही है मुझे), लंबे चौड़े कद-काठी का, दप-दप श्वेत आभा से दमकता, मेरी कल्पना के किसी देवदूत सा सुंदर-स्निग्ध एक व्यक्ति उपस्थित होता है। कार्यक्रम के संचालक और हिंदी के हमारे प्राध्यापक डॉ. रामवचन राय द्वारा उनका परिचय देते हुए हमें बताया जाता है कि ये चेकोस्लोवाकिया (उस समय यह एक ही देश हुआ करता था) के प्राहा यूनिवर्सिटी में हिंदी भाषा और साहित्य के प्राध्यापक हैं। यह सब कुछ हमारे लिए, जो हिंदी का मतलब सिर्फ सूर, कबीर, तुलसी और निराला, पंत, अज्ञेय या फिर प्रेमचंद, नामवर सिंह, रामविलास शर्मा और मुक्तिबोध समझता था, एक मधुर सपने से गुजरते हुए कुछ अनमोल पा जाने के सुखद एहसास से कम न था। भारतीय संस्कृति और हिंदी के प्रति असीम प्रेम से ओतप्रोत स्निग्ध स्वरों में फूटती हुई मधुर कविताएँ या फिर छोटे से उस संबोधन में आत्मीयता की वह मिठास, सारा कुछ मिलकर हिंदी साहित्य के मेरे नए-नए विद्यार्थी मन में एक भीनी-भीनी खुशबू की तरह समा गया। आज जब श्री ओदोलेन स्मेकल के बारे में कुछ लिखने के लिए बैठा हूँ तो वह पुरानी खुशबू बहुत कुछ उस खुशबू से मिलती-जुलती सी लग रही है जो अपने स्नेहमय पिता की यादों से जुड़ी, अपने घर-आँगन, खेत-खलिहान और पेड़-पौधों-माटी की अनगिनत यादों से जुड़ी सोंधी खुशबू की तरह मेरे जेहन में कब से छाई रही है।

हाँ, जीवन की आपाधापी में या यूँ कहें कि भारत और इंडिया के बीच की गहराती खाइयों के बीच जहरीले फन लहराते आतंकवाद और घृणा, अविश्वास, स्वार्थ, छल और हिंसा से भरे इस राजनीतिक-सामाजिक समय से मुठभेड़ करते हुए जब भी क्षत-विक्षत हो जाता हूँ, तो एक छोटी सी कविता (रघुवीर सहाय की मानिंद) पढ़ने को जी मचलता है और तब हिंदी के बहुत सारे कवियों के बीच ओदोलेन स्मेकल भी अपनी मिश्री घुली स्निग्ध मुसकान लिये निर्दोष-निश्छल मीठी-मीठी भावप्रवण कविताओं के साथ बरबस ही सामने उपस्थित हो जाते हैं।

भारत से बहुत दूर-सुदूर चेकोस्लोवाकिया में हिंदी का अलख जगाते, अपनी रागात्मक रचनात्मकता से हिंदी को समृद्ध करते हुए ओदोलेन स्मेकल एक भाषा-वैज्ञानिक, कुशल अनुवादक और सुधी समीक्षक होने के साथ ही भारत और हिंदी के प्रति विशेष अनुराग को सहज-सरल भाषा में व्यक्त करनेवाले भावुक कवि भी हैं।

यह कल्पना ही कि कोई विदेशी कवि हिंदी में कविताएँ लिखकर देश-विदेश में हिंदी साहित्य को संवेदना के एक नए आलोक से आलोकित कर रहा है, सामान्य हिंदी-मन में सहज ही एक सुखद एहसास का संचार कर जाता है। ओदोलेन स्मेकल की कविताएँ सुनने-पढ़ने के बाद कुछ ऐसी ही अनुभूति होती है।

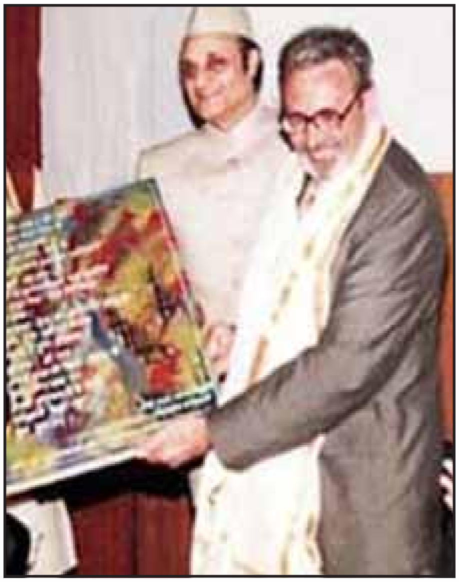

डॉ. ओदोलेन स्मेकल का जन्म 18 अगस्त, 1928 को चेकोस्लोवाकिया के ओलोमोउत्स नगर में हुआ था। उनका विवाह हेलेना से हुआ है। यह सुखद संयोग है कि श्रीमती हेलेना भी भारत नृजाति विज्ञान की विशेषज्ञा हैं तथा भारतीय सभ्यता और संस्कृति में गहरी दिलचस्पी रखती हैं। भारत और हिंदी के प्रति श्री ओदोलेन का अगाध प्रेम इस बात में झलकता है कि उन्होंने अपनी दो संतानों के नाम भी भारतीय रखा है—बेटी का नाम इंदिरा और बेटा का नाम अरुण। भारत और हिंदी से बेहद प्यार करनेवाले डॉ. स्मेकल 17 जून, 1998 को हमें छोड़कर चले गए। हिंदी के इस समर्पित पुत्र का निधन प्राहा में हुआ।

ग्रियर्सन पुरस्कार के साथ ही अनेक विशिष्ट सम्मानों और पुरस्कारों से सम्मानित श्री ओदोलेन ने चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राहा के चार्ल्स विश्वविद्यालय से हिंदी में एम.ए. किया तथा वहीं से पी-एच.डी. की डिग्री प्राप्त की। उसके बाद प्राहा विश्वविद्यालय में हिंदी के प्राध्यापक नियुक्त किए गए। तीस वर्षों तक प्राध्यापक के पद पर हिंदी भाषा और साहित्य का अध्यापन करने के बाद वे कई वर्षों तक भारत-विद्या-विभागाध्यक्ष भी रहे।

ओदोलेन स्मेकल ने हिंदी साहित्य की अनेक प्रसिद्ध रचनाओं

का चेक भाषा में सुंदर अनुवाद किया है। इनमें प्रमुख हैं—प्रेमचंद का गोदान (1957), आधुनिक हिंदी कविता का संकलन (1975), भारतीय लोक कथाएँ (1967, 1974)। इनका प्रसिद्ध काव्य संग्रह 'हमारा हरित नीम' भावप्रवण कविताओं का संग्रह है। भारतीय संस्कृति तथा समाज के संबंध में इनके गंभीर निबंधों का एक संग्रह 'भारत के नवरूप' भी प्रकाशित हुआ है।

इन्होंने हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए दस से भी अधिक हिंदी की पाठ्य-पुस्तकें प्राहा विश्वविद्यालय से प्रकाशित कराईं। इनमें मुख्य हैं—हिंदी वार्तालाप (1968), हिंदी पाठमाला (1968), हिंदी भाषा (1956), हिंदी क्रियाएँ (1970, 1971) आदि। इन्होंने केंद्रीय हिंदी निदेशालय के सहयोग से हिंदी-चेक तथा चेक-हिंदी शब्दकोश का भी निर्माण किया।

चेकोस्लोवाकिया के यूरोपीय परिवेश में जन्मे ओदोलेन के

मन-प्राणों में भारत का वह गाँव, भारत के लोग, यहाँ की संस्कृति और परंपराओं की स्मृतियाँ रची-बसी हैं। भारत के प्रति मातृत्व भाव रखनेवाले ओदोलेन के कवि-मन में भारत के सदियों पुराने इतिहास से लेकर आज के आधुनिक भारत तक, अन्नपूर्णा की सुनहले बर्फों से ढकी चोटियों से लेकर कन्याकुमारी के लहराते समुद्र तक न जाने कितनी यादें पसरी हैं—

प्राचीन
पर नवीन भी
मेरी भारत माता
कालविहीन पीढ़ियों की
अन्नपूर्णा से कन्याकुमारी तक
शिवलिंगपूर्ण ! (करोड़ों की जननी कविता से)

भारतीय संस्कृति के प्रतीक पुरुष राम का चरित्र फादर कामिल बुल्के की तरह ही ओदोलेन को भी बहुत भाता है। ओदोलेन ने अपनी कविताओं में राम के आदर्श चरित्र में मनुष्यता के उदात्त रूप का दर्शन करने के साथ ही उनमें मनुष्य जीवन के संघर्षों और दु:ख-सुख के बीच एक योद्धा, अपने समय की विडंबनाओं से मुठभेड़ करते एक सामान्य आदमी के शक्तिशाली रूप को देखा है। 'राम ओ राम ! तेरी कल्पना अभिराम' कविता की ये पंक्तियाँ राम के प्रति उनके उस अनुराग की कोमल अभिव्यक्ति के साथ ही

वर्तमान युग की विसंगतियों से चिंतित एक जागरूक कलाकर्मी द्वारा नया संसार रचने के लिए परिवर्तन की तीव्र आकांक्षा को भी व्यक्त करती हैं—

राम! ओ राम! श्रीराम!
तृण-तृण तरु-तरु में
रूपायित तेरा नाम
तृण-तृण, तरु-तरु में
अवतरित तेरी कल्पना अभिराम
पर, सुन ओ राम!
देशों में, जगत में खो गई शांति
खो गया सेवा-भाव निष्काम
ओ राम!
सुन देश का उत्कंठित आह्वान
जिसे पुनः चाहिए क्रांति
लड़ना है पुनः संग्राम
ओ राम!
श्रीराम!
अपनी प्रजा की शिरा-शिरा में
पुनीत गंगा जल भर
अपनी कुसुमावती के लिए
पराक्रमी योद्धा सा
पुनः पुनः लड़।

राम के प्रति रागात्मक अनुभूतियों और सामान्य बेरोज़गार व्यक्ति की वेदना के बीच एक भावुक कवि का द्वंद्व ओदोलेन की इन पंक्तियों में सहज ही उभरता है—

सारे यहाँ सुखी
जिनको मिल गया काज
और जो दु:खी
उनमें राम ही सरताज (रामराज से)।

ओदोलेन का कोमल मन भारत के प्रति आत्मा के स्तर पर जुड़ा हुआ है और यही कारण है कि जब कवि भारत छोड़ता है तो भारत के विछोह की तड़प, जुदाई की एक कशिश उसके अंतर्मन में पीड़ा की एक लहर सी छोड़ जाती है। शेष भारत देखने,उसे महसूस करने की उसकी अतृप्त अभिलाषा उसे विकल कर देती है—

अब केवल थोड़े से पुष्प
तप्त कमल स्पर्श
और मधुर नमस्कार
शेष किसी और समय
काश!
अगली बार। (अनंत क्षितिज के देश मेरे से)

हिंदी ओदोलेन के लिए जीने का मकसद है। हिंदी के प्रति उनका प्रेम उनकी सर्जनात्मकता को नए आयामों से तो जोड़ता ही है, हिंदी के विकास, उसके संघर्षों से भी श्री ओदोलेन का कोमल मन अपने आपको बहुत संजीदगी से जुड़ा हुआ पाता है। यही कारण है कि भारत में ही हिंदी को उचित स्थान न मिलने का दु:ख उन्हें सताता रहता है। मार्मिक व्यंग्य से भरी इन पंक्तियों में हिंदी के प्रति कवि के उस दु:ख को सहज ही महसूस किया जा सकता है—

निष्प्राण हो गया वह सार्वभौम प्राणी
विदेशी बोली में प्रवीण
निज माता की वाणी को
तुतलाता
लँगडे-लूले तोते के समान
(मरीचिका भारत की)।

भारत से बहुत दूर-सुदूर चेकोस्लोवाकिया में हिंदी का अलख जगाते, अपनी रागात्मक रचनात्मकता से हिंदी को समृद्ध करते हुए ओदोलेन स्मेकल एक भाषा-वैज्ञानिक, कुशल अनुवादक और सुधी समीक्षक होने के साथ ही भारत और हिंदी के प्रति विशेष अनुराग को सहज-सरल भाषा में व्यक्त करनेवाले भावुक कवि भी हैं।

हिंदी उनकी मातृभाषा नहीं है, लेकिन ओदोलेन इसे अपने सपनों की भाषा, अपने जीवन और कर्म की भाषा समझते हैं। हिंदी भाषा और साहित्य उनके लिए जीने की प्रेरणा है, उनकी आत्मा की शक्ति है। कवि का मन हिंदी के प्रति अपने असीम प्रेम को बिना लाग लपेट के भावप्रवण शब्दों में सामने रख देता है—

हिंदी ज्ञान,
मेरे लिए अमृत रस पान
जितनी बार उसे पीता हूँ, लगता है
उतनी बार पुनः जीता हूँ।

हिंदी के विषय में कुछ कहते हुए ओदोलेन स्मेकल सहज ही भावुक हो उठते हैं—"हिंदी ज्ञान मेरा प्राण है, हिंदी मेरे लिए वह कर्मभाषा है जिसमें वार्तालाप करने और कविताएँ लिखने में परम सुख अनुभव करता हूँ। इस वाणी में ओज व तेज़ ही नहीं, असंख्य उषाओं की असंख्य अरुणिमाएँ भी सन्निहित हैं।" यह एक साहित्यकार के साथ ही एक हिंदी सेवी संवेदनशील लेखक के मन को व्यक्त करती हुई ऐसी पंक्तियाँ हैं, जिनमें हिंदी और हिंदी सर्जना के प्रति एक गहरी विश्वसनीयता की झलक मिलती है।

ओदोलेन एक भावुक कवि के साथ ही एक जागरूक और संवेदनशील साहित्यकार तथा युग-चेतना के प्रति सजग कलाकार भी हैं। वे एक साहित्यकार के नाते समाज के प्रति अपने दायित्वों

को भी बखूबी जानते हैं। सामाजिक सरोकारों से जुड़ी ओदोलेन की कविताएँ समाज के अंतिम छोर पर जिंदगी के मायने तलाशते, सामाजिक-आर्थिक विसंगतियों के चक्र में पिसते उस मनुष्य की पीड़ा भी बड़ी तल्खी से व्यक्त होती है, जो सारी मनुष्यता के सामने एक बड़ा सा प्रश्नचिह्न बनकर सदा उपस्थित रहा है। दोस्तोव्यस्की के कथन—''मानव लगाव ही किसी साहित्यकार की कसौटी है।'' को आत्मसात करता ओदोलेन का कवि मन मनुष्य के पक्ष में मज़बूती से खड़ा होकर अपनी रचनाधर्मिता की प्रतिबद्धताओं को स्वर देता दिखाई देता है—

लिख दूँगा हज़ारों कविताएँ
उन नन्हें हाथों पर
जो स्लेट के बदले
तवे, बरतन, सुराही
माँजते चमकाते हैं।

मेहनतकश भारतीय नारी की तसवीर ओदोलेन के भावुक मन में आशा की सुरभित बयार का संचार कर जाती है। ओदोलेन की ये पंक्तियाँ महाकवि निराला की 'वह तोड़ती पत्थर' की पत्थर तोड़नेवाली उस श्रमिक युवती की सहज ही याद दिलाती है—

वह भारत की नारी
जिसके पसीने से
खिल उठे भारत में
कमल जैसे भवन (गीता का गायन से)

अपनी इन छोटी-छोटी कविताओं के भीतर ओदोलेन ने जीवन और संस्कृति के अनेक रंग डाले हैं, जो किसी भी भाषा की सर्जनात्मक शक्ति को समृद्ध करते हैं। कविता की ताकत से ओदोलेन बखूबी परिचित हैं। इसीलिए वे कविता को अपनी अभिव्यक्ति का प्रमुख हथियार बनाते हैं—उनके भीतर उस बेचैन कवि की छटपटाहट, स्वयं को व्यक्त करने के लिए शब्दों की तलाश करते उस कलाकार की कशिश और भाषा के सरलतम रूप में एक भोले-भाले बच्चे की अटपटी-तुतली वाणी की मिश्री घुली उस मिठास को सहज ही महसूस किया जा सकता है। हिंदी दूर देश के अपने इस प्यारे से, भोले-भाले बेटे को पाकर गौरवान्वित है।

हिंदी के विषय में कुछ कहते हुए ओदोलेन स्मेकल सहज ही भावुक हो उठते हैं—''हिंदी ज्ञान मेरा प्राण है, हिंदी मेरे लिए वह कर्मभाषा है जिसमें वार्तालाप करने और कविताएँ लिखने में परम सुख अनुभव करता हूँ। इस वाणी में ओज व तेज़ ही नहीं, असंख्य उषाओं की असंख्य अरुणिमाएँ भी सन्निहित हैं।'' यह एक साहित्यकार के साथ ही एक हिंदी सेवी संवेदनशील लेखक के मन को व्यक्त करती हुई ऐसी पंक्तियाँ हैं, जिनमें हिंदी और हिंदी सर्जना के प्रति एक गहरी विश्वसनीयता की झलक मिलती है।

डॉ. ओदोलेन स्मेकल : कृतियाँ

काव्य : तेरे दान के गीत व अन्य कविताएँ (1982), मेरी प्रीत तेरे गीत (1982), नमो नमो भारत माता (1983), स्वाति बूँद (1983), कमल को लेकर कल (1983), तेरे दिग्दिगांतर अभिराम (1983), स्मेकल की प्रतिनिधि कविताएँ (1983), अविराम (1986), मधुमिलन सेतु (1988), हमारा हरित नीम, श्रेष्ठ कविताएँ (1994), दीपकों के देश में (1996)।

गद्य कृतियाँ : हिंदी रीडर 1, 2 (1968), हिंदी वार्तालाप (1968), हिंदी वर्बल बेसेज 1, 2 (1970, 1971), हिंदी वोकल कंस्ट्रक्शंस 1, 2 (1971), हिंदी ग्लॉसरी 1, 2 (1971), हिंदी कंवर्सेशन (1984), एप्लाइड हिंदी ग्रामर (1986, 1987, 1988), इंग्लिश-हिंदी कंवर्सेशन (1997)।

—बी-22, भारतीय रिजर्व बैंक
अधिकारी आवास
लोहियानगर, कंकड़ बाग, पटना-
800 020
इ-मेल : kpsinha@rbi.org.in

❑

प्रतिभा जन्मजात होती है, वह सिखाई नहीं जाती।

— ड्राइडेन

यदि हम प्रसन्न हैं, तो सारी प्रकृति ही हमारे साथ मुसकराती प्रतीत होती है।

— स्वेट मार्डेन

17

सूरीनाम में हिंदी को समर्पित जीवन भारत के सांस्कृतिक दूत बाबू महातम सिंह

–भावना सक्सेना

सिरनाम देश में भारत से सांस्कृतिक दूत जब से आए।
हो गई धन्य हिंदी भाषा, हिंदी प्रेमी के मन भाये॥
कौरव गण में घिरी द्रौपदी, मन-ही-मन अकुलाती थी।
निज रक्षा हित भीष्म द्रोण पर, अपनी नजर घुमाती थी।
पर सबसे आशा टूट गई, मन जा पहुँचा गिरधारी पर।
हे प्रभुवर रख ले लाज मेरी, कर दया दयानिधि नारी पर
बन गई द्रौपदी थी हिंदी, सब आशा उसकी विफल भई
मन जा पहुँचा करुणानिधि पर, कुछ सूझ पड़ी तब युक्ति नई
धर रूप प्रभु तो न आए, हिंदी की मान बढ़ाने को।
पर दूत पठाये भारत से हिंदी की शान बढ़ाने को॥
हे बाबू महातम सिंह, किए त्याग तपस्या तुम भारी।
क्या कभी उऋण होंगे मन से, सिरनाम के सारे नर नारी।
(सूरीनाम के कवि श्री चंद्रमोहन रंजीत सिंहजी की कविता)

- दिल्ली विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी और हिंदी में स्नातकोत्तर तथा अनुवाद प्रशिक्षण में स्वर्ण पदक।
- भारत सरकार के गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग में कार्यरत व पिछले साढ़े तीन वर्ष सूरीनाम स्थित भारत के राजदूतावास में अताशे (हिंदी व संस्कृति) पद पर प्रतिनियुक्त रहकर वहाँ हिंदी प्रचार प्रसार कार्य।
- आपके प्रोत्साहन से सूरीनाम के हिंदी लेखकों में नव-ऊर्जा का संचार हुआ।
- आपने सूरीनाम साहित्य मित्र संस्था द्वारा प्रकाशित प्रथम कविता संग्रह 'एक बाग के फूल' और कवि श्री देवानंद शिवराज के कविता संग्रह 'अभिलाषा' का संपादन किया और सूरीनाम में हिंदुस्तानी, भाषा, साहित्य व संस्कृति नामक पुस्तक लिखी है। समय-समय पर कई लेख, कविता व कहानी कई पत्र-पत्रिकाओं में छपते रहते हैं।

"बाबूजी सूरीनाम न आते तो यहाँ भी हिंदी की हालत गुयाना, त्रिनिदाद जैसी होती।" यह कहना है सूरीनाम के लगभग हर उस शख्स का जो हिंदी से, हिंदी के अध्ययन व अध्यापन से जुड़ा है। प्रख्यात कवि व हिंदी अध्यापक रह चुके पंडित अमर सिंह रमणजी कहते हैं—

"बाबूजी के आने से पहले हिंदी और हिंदी शिक्षा पंडितों तक सीमित थी। वह उसका विस्तार नहीं कराना चाहते थे, क्योंकि इससे उनका वर्चस्व समाप्त हो जाता। हम लोग जो थोड़ी बहुत हिंदी सीखे उसके बल पर अपने को पंडित समझने लगे थे, बाबूजी के आगमन पर पता चला कि हमारा ज्ञान कितना अधूरा था।"

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत भारत में देश-विदेश में भारतीय संस्कृति के प्रचार हेतु नीति बनाई गई जिसके अनुसार भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की स्थापना हुई। पीकिंग, काएरो, यूरोप, अमेरीका के पश्चात् कैरीबियाई देशों में सांस्कृतिक प्रवक्ताओं को भेजना निश्चित हुआ और 1954 में बाबू महातम सिंह को गुयाना में सांस्कृतिक प्रचार हेतु नियुक्त किया गया। 1954 में 28 वर्ष की आयु में काका साहब कालेलकर के आदेश पर पत्नी व दो वर्षीय पुत्री को लेकर स्वदेश से एक अनजान देश की यात्रा पर निकले महातम सिंहजी उस समय यह नहीं जानते थे कि वह दूसरे देश के ही होने वाले हैं, किंतु "प्रवासी भाइयों के बीच सेवा कार्य की बात ने ढाढ़स बँधाया और वह संयत हुए।"

भारत में उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले के खनियारा गाँव में जनवरी 1926 को जन्मे श्री महातम सिंहजी ने कलकत्ता

विश्वविद्यालय से हिंदी भाषा और साहित्य में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की और सांस्कृतिक दूत बनकर ब्रिटिश गुयाना पहुँच गए। पाँच वर्ष वहाँ हिंदी व संस्कृति के प्रचार के बाद 1960 में बाबू महातम सिंहजी को सूरीनाम भेज दिया गया।

इसकी पृष्ठभूमि में वह आवश्यकता थी जो सूरीनाम का बुद्धिजीवी वर्ग अनुभव करने लगा था। वर्ष 1957-58 के आसपास सूरीनाम में हिंदुस्तानी समाज को सांस्कृतिक तत्त्वों के संरक्षण के लिए एक व्यवस्थित पहुँच की आवश्यकता अनुभव होने लगी। सन् 1958 में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् से श्री काका कालेलकर के सूरीनाम आगमन पर सूरीनाम में सांस्कृतिक वाहक भेजने का अनुरोध किया गया था और बाद में सूरीनाम के पंडित गंगादीन सहतू के परामर्श पर तत्कालीन कृषि मंत्री डॉ. रामबरन मिश्र द्वारा अपनी भारत यात्रा के दौरान पुनः भारत सरकार के समक्ष यह अनुरोध दोहराया, जिसके परिणामस्वरूप 1954 से भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की ओर से गुयाना में कार्य कर रहे सांस्कृतिक प्रवक्ता, बाबू महातम सिंहजी को सूरीनाम भेज दिया गया और भारत सरकार का यह चुनाव सर्वथा उपयुक्त रहा।

सन् 1958 में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् से श्री काका कालेलकर के सूरीनाम आगमन पर सूरीनाम में सांस्कृतिक वाहक भेजने का अनुरोध किया गया था और बाद में सूरीनाम के पंडित गंगादीन सहतू के परामर्श पर तत्कालीन कृषि मंत्री डॉ. रामबरन मिश्र द्वारा अपनी भारत यात्रा के दौरान पुनः भारत सरकार के समक्ष यह अनुरोध दोहराया, जिसके परिणामस्वरूप 1954 से भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की ओर से गुयाना में कार्य कर रहे सांस्कृतिक प्रवक्ता, बाबू महातम सिंहजी को सूरीनाम भेज दिया गया और भारत सरकार का यह चुनाव सर्वथा उपयुक्त रहा।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, आचार्य विनोबा भावे से प्रेरित, भाषा सेवा की भावना को सर्वोपरि रखते हुए बाबूजी सूरीनाम पहुँचे और जिस समर्पण भाव से वे हिंदी सेवा में जुट गए वह आने वाली पीढ़ियों के लिए मिसाल बन गया। 15 वर्ष के इस कार्यकाल में बाबू महातम सिंह ने न सिर्फ हिंदी शिक्षण किया अपितु शिक्षकों की एक फौज तैयार कर दी जो आज भी सतत रूप से हिंदी शिक्षण कर रहे हैं और आने वाली पीढ़ियों को अपनी संस्कृति की सबसे महत्त्वपूर्ण धरोहर, उनकी भाषा सौंप रहे हैं।

सांस्कृतिक प्रवक्ता के आगमन से हिंदी की व्यवस्थित शिक्षा के साथ-साथ अन्य सांस्कृतिक गतिविधियाँ भी आरंभ हुईं, किंतु यह सब बहुत सरल नहीं था। उनके सूरीनाम आते ही यहाँ की स्थिति स्पष्ट हो गई, जिसमें हिंदू सनातनी और आर्यसमाजी दो गुटों में बँटे हुए थे। बाबूजी बहुत सूझबूझ से भारतीय संस्कृति के मूलभूत सिद्धांत को लेकर आगे बढ़े और कुछ ही समय में उन्होंने न सिर्फ सनातनी और आर्यसमाजी गुटों की, अपितु अन्य धर्मावलंबियों की सद्भावना भी प्राप्त कर ली। बाबूजी के अनुसार—"दोहरी समस्या उपस्थित थी, एक ओर तो भारतीय आनुवंशिकी के लोगों में उनके आपसी दुराव को दूर करने की और साथ-साथ अफ्रीकी लोगों के मन में सद्भावना स्थापित करने की, क्योंकि एक भारतीय सांस्कृतिक दूत को उस समय संशय की दृष्टि से देखा जा रहा था। किंतु आचार्य विनोबा भावे के सर्वोदय विचारों से प्रेरित महातम सिंहजी समन्वयात्मक दृष्टिकोण रखते हुए निर्बाध गति से आगे बढ़ते रहे। उस समय सूरीनाम में भारतीय राजदूतावास की स्थापना नहीं हुई थी, और यह देश त्रिनिदाद में भारतीय उच्चायुक्त का कार्यक्षेत्र था। कभी सरकारी व कार्यालयी सीमाओं के बावजूद आप अपने लक्ष्य से कभी नहीं डिगे।

महातम सिंहजी ने धार्मिक सद्भावना पर आधारित महात्मा गांधी विद्यालय से कार्य आरंभ किया, उन दिनों के सर्व प्रमुख सांस्कृतिक केंद्र में सांस्कृतिक कार्यक्रम के बाद कार्य विस्तार की योजना बनाई गई, जिसके अंतर्गत पहली हिंदी पाठशाला पारामारिबो शहर से साठ किलोमीटर दूर कलकत्ता नामक स्थान पर स्थापित की गई और उसके बाद सभी हिंदी विद्यार्थियों को अपने गाँवों व मंदिरों में हिंदी शिक्षण आरंभ करने के लिए प्रोत्साहित किया जिसके परिणामस्वरूप कुछ समय में 120 हिंदी पाठशालाओं की स्थापना हुई, जिसकी सूची उन्होंने माता गौरी संस्थान की पच्चीसवीं जयंती पर प्रकाशित स्मारिका में दी है। वर्ष 1962 में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा से बाबूजी के नियमित पत्राचार के परिणामस्वरूप हिंदी परीक्षाओं का प्रबंध हुआ और पहली बार दिसंबर 1962 में 74 प्रथम और 15 मध्यमा के प्रमाण-पत्रों का वितरण सूरीनाम के गवर्नर की पत्नी श्रीमती क्यूरी के हाथों हुआ। 149 केंद्रों के लगभग 45 हज़ार लोग हिंदी के संपर्क में आए।

बाबूजी की लोकप्रियता व संगठन शक्ति का प्रमाण है कि दूसरा कार्यकाल आरंभ होने पर जब उन्हें एक कार्यालय की आवश्यकता अनुभव हुई तो उन्होंने स्थानीय सहयोग से सूरीनाम की राजधानी पारामारिबो में एक कार्यालय खोला जिसके संबंध में

उन्होंने अपनी पुस्तक भारतीय सांस्कृतिक दूत-व्यक्तित्व एवं विचार में लिखा है—''भारत सरकार की ओर से इसके खर्च-वर्च का कोई अनुमोदन मेरे पास नहीं था, अतएव स्थानीय जनशक्ति का सहारा लेना पड़ा। इसके लिए एक सहायक समिति का गठन किया गया।''

लोकप्रियता व बाबूजी पर असीम आस्था और विश्वास का एक अन्य उदाहरण है सूरीनाम के एक भारतवंशी स्व. श्री रघुनंदन ब्रह्म तिवारी द्वारा किया गया भू-दान। श्री तिवारीजी ने अपने माता-पिता, जो शर्तबंध मज़दूर बनकर यहाँ आए थे और बाद में यहीं बस गए की छह हज़ार एकड़ जमीन बाबू महातम सिंहजी को सौंपने का प्रस्ताव किया और उनके यह कहने पर कि आप यह भूमि किसी सूरीनामी व्यक्ति को दें, उन्होंने कहा कि वह किसी और पर उतना विश्वास नहीं करते। बाबूजी ने तब एक समिति गठित की और आज उनकी आस्था ईमानदारी व सद्भाव का प्रतीक माता गौरी संस्थान मानवीय सद्भावना का पोषण करता हुआ विभिन्न साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के शक्तिशाली केंद्र के रूप में कार्यरत है।

श्री अमरसिंह रमणजी का कहना है कि ''वह एक अलग युग था, बाबूजी ने बहुत अच्छे से सबको बाँध दिया था। हिंदू, मुसलिम, सनातन आर्य सब एक छत के नीचे मिलकर कार्य करते थे। हैरानी की बात है कि उनके देहांत तक हमें यह पता नहीं था की वे आर्यसमाजी हैं या सनातनी।''

श्री अमरसिंह रमणजी का कहना है कि ''वह एक अलग युग था, बाबूजी ने बहुत अच्छे से सबको बाँध दिया था। हिंदू, मुसलिम, सनातन आर्य सब एक छत के नीचे मिलकर कार्य करते थे। हैरानी की बात है कि उनके देहांत तक हमें यह पता नहीं था कि वे आर्यसमाजी हैं या सनातनी।'' इसी सद्भाव से उन्होंने यहाँ नाटकों की परंपरा आरंभ की जिसमें महिलाओं की सक्रिय भागीदारी को प्रोत्साहित भी किया। हिंदी पढ़ने के साथ-साथ लेखन के लिए भी प्रोत्साहित किया जिसकी अभिव्यक्ति के लिए वे 1962 से 1972 तक शांतिदूत नामक मासिक पत्र व सेतुबंध त्रैमासिक पत्रिका का संपादन व प्रकाशन करते रहे। सर्वांगीण विकास व अनुशासन सीखने के लिए आप वर्ष में एक बार शिविर का और पदयात्रा का आयोजन करते थे जिसमें सभी लोग बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते थे। पाँच दिन से सप्ताह भर तक चलनेवाले ये शिविर उस पीढ़ी के हर हिंदी से जुड़े व्यक्ति के मानस पटल पर अंकित है। उसकी निष्ठा व व्यक्तित्व की सच्चाई ने हर किसी को उनकी ओर आकर्षित किया।

उन्होंने स्थानीय आवश्यकता के अनुकूल तीन पुस्तकें प्रवासी हिंदी बोध, प्रवासी हिंदी रीडर और श्रीरामकथा की रचना की तथा साथ ही अपने विचारों व अनुभवों को एक पुस्तक महातम सिंह व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व में संकलित किया, जो उनके अनुभवों और तात्कालिक स्थितियों का जीवंत दस्तावेज है और सूरीनाम में हिंदी प्रचार के इसिहास के साथ-साथ यहाँ की सामाजिक-सांस्कृतिक स्थिति भी स्पष्ट करती है। 1975 में कार्यकाल समाप्ति के आदेश पाकर भी वे स्वयं को इस समाज से अलग नहीं कर पाए, और यहीं पर बस जाने का निश्चय किया। पत्नी श्रीमती कमला सिंह, एक पुत्री सुश्री भारती, व दो पुत्रों सतीश व दिनेश के साथ जीवनयापन के लिए द्रव्य की आवश्यकता को समझते हुए हिंदुस्तानी संस्कृति के ही एक और पक्ष भोजन को उद्देश्य बनाया और एक रेस्तराँ मोती महल खोल लिया जिसके माध्यम से सूरीनाम में कई हिंदुस्तानी व्यंजन आम हुए। इस कार्य में श्रीमती कमलाजी का बहुत सहयोग रहा और आज भी मोती महल कमलाजी की देखरेख में ही चल रहा है। लेकिन इसके बाद भी वे हिंदी प्रचार-प्रसार से पूर्ववत जुड़े रहे। 1990 में उनके प्रयास से सूरीनाम में अंतर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन का आयोजन हुआ। रामायण प्रेमी समाज में 1998 में तुलसी प्रतिमा की स्थापना से यहाँ तुलसी जयंती के उत्सव को और संबल मिला। पिछले तीन वर्ष में महातम सिंहजी का सम्मान सूरीनाम में हिंदी से जुड़े हर अवसर हर बैठक में उनको स्मरण करनेवालों और बोलनेवालों के सरल नेत्रों में देखा है। सम्मान के प्रतीक स्वरूप हिंदी सेवा के लिए उन्हें लंदन में आयोजित छठे विश्व हिंदी सम्मेलन में प्राप्त विश्व हिंदी सेवा सम्मान, सूरीनाम सरकार के राष्ट्रपति से प्राप्त 'ऑर्डर ऑफ द पाल्म अवार्ड' और उत्तर प्रदेश सरकार से प्राप्त मदन मोहन मालवीय अवॉर्ड प्रमुख हैं।

एक सार्थक जीवनोपरांत वर्ष 2006 में सूरीनाम के बाबूजी इस जग से विदा हुए। आज बाबू महातम सिंह प्रत्यक्ष रूप से सूरीनाम में नहीं हैं, किंतु इस देश के हिंदुस्तानी जन के हृदयों में वे सदैव जीवित रहेंगे।

—अताशे (हिंदी, संस्कृति व प्रशासन)
भारतीय दूतावास, पारामारिबो, सूरीनाम
इ-मेल : bhawnasaxena@gmail.com

❑

18

प्रवासी भवानी दयाल संन्यासी और उनकी हिंदी सेवा

–डॉ. राकेश कुमार दुबे

- **जन्म :** 15 अक्तूबर, 1982 ई.ए., नेहियाँ, वाराणसी।
- **पता :** ग्राम व पोष्ट नेहिया, वाराणसी, उ.प्र.।
- **भाषा ज्ञान :** हिंदी, अंग्रेज़ी।
- **शिक्षा :** बी.ए. वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, एम.ए. प्रथम श्रेणी, इतिहास, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- **नेट :** विश्वविद्यालय, अनुदान आयोग, नई दिल्ली।
- **पी-एच.डी. :** काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी (इतिहास)।
- **प्रकाशन :** 20 शोधपत्र/लेख राष्ट्रीय/अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।

श्री भवानी दयाल संन्यासी की हिंदी सेवाएँ सराहनीय हैं। हिंदी भाषा के अपूर्ण भंडार को पूरा करने में उन्होंने भारी सहायता की है। स्वामीजी की रचनाओं में सामयिकता का गुण है। वे उस समय लिखी गईं जबकि उनकी बहुत आवश्यकता थी और जिनके अभाव में हमारी बहुत बड़ी हानि होती।

''...बाहर तो कई लाख प्रवासी विभिन्न देशों में हैं, परंतु प्रवासी भारतीयों की इस विशाल संख्या में से स्वामीजी ही एक व्यक्ति हैं जिनकी हिंदी सेवा हिंदी साहित्य के इने-गिने प्रतिभावान सेवकों के समकक्ष है। अब तो बहुत से लोग हिंदी में लिखने लगे हैं; परंतु स्वामीजी ने उस समय हिंदी में लिखना शुरू किया जबकि प्रवासियों में हिंदी का प्रचार नाम मात्र का ही था। अधिकांश ने स्वामीजी के लेख और प्रचार के द्वारा ही प्रेरणा प्राप्त की है।''

प्रेम नारायण अग्रवाल, प्रवासी पत्रिका, जनवरी, 1953 हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार एवं उसके साहित्य के प्रणयन एवं श्रीवृद्धि में न केवल भारत वरन् विश्व स्तर पर उसके आरंभिक काल में जिन व्यक्तियों के नाम प्रमुखता से लिये जाते हैं उनमें भवानी दयाल संन्यासी का नाम अग्रणी है। दक्षिण अफ्रीका में जन्म लेकर उन्होंने दक्षिण अफ्रीका और भारत में हिंदी के प्रचार के साथ ही संपूर्ण विश्व में बसे प्रवासी भारतीयों में हिंदी के प्रचार और उन्हें संगठित कर अपने अधिकारों की रक्षा एवं दक्षिण अफ्रीका तथा भारत की उपनिवेशवादी सरकारों के अराजकतापूर्ण शासन के खिलाफ आंदोलनरत करने में प्रमुख भूमिका निभाई। उन्होंने भारत और भारत से बाहर बसे भारतीयों में अपनी सभ्यता और संस्कृति के प्रति ममता उत्पन्न करने एवं पाश्चात्य प्रभाव हटाने का हर संभव प्रयास किया एवं साथ ही केवल स्वाध्याय से ही हिंदी का ज्ञान प्राप्त कर अधिकांशत: अस्वस्थ रहते हुए भी आजीवन हिंदी ग्रंथों के लेखन एवं प्रचार द्वारा हिंदी जगत में वह ख्याति, पद और प्रतिष्ठा प्राप्त की जो हिंदी के बड़े-बड़े विद्वानों को भी प्राप्त नहीं हुआ।

भवानी दयाल के पूर्वज यद्यपि बिहार के शाहाबाद जिले के निवासी थे, परंतु इनका जन्म दक्षिण अफ्रीका के 'जोहांसबर्ग' नामक नगर में 10 सितंबर, 1892 ई. को हुआ था। इनके पिता बाबू जयराम सिंह शर्तबंदी कुलीप्रथा के शिकार होकर दक्षिण अफ्रीका चले गए थे। इनकी प्रारंभिक शिक्षा जोहांसबर्ग में 'सेंट सिप्रियन' तथा 'वेस्लन मेथोडिस्टी' नामक स्कूलों में अंग्रेज़ी माध्यम से हुई थी और हिंदी का प्रारंभिक ज्ञान इन्होंने आत्माराम गुजराती की पाठशाला में प्राप्त किया था। इन्होंने हिंदी का कहीं से भी किसी स्कूल की पढ़ाई का प्रमाण-पत्र प्राप्त नहीं किया था और सारी योग्यता अपने स्वाध्याय के बल पर ही प्राप्त की थी। सन् 1889 ई. में इनकी माता का निधन हो जाने के बाद सन् 1904 ई. में ये अपने पिता के साथ पहली बार भारत आए।

जब ये भारत आए उस समय भारत में 'बंग-भंग आंदोलन' जोरों पर था। अपने गाँव में आकर इन्होंने हिंदी का अच्छा अभ्यास किया और उसमें निपुणता प्राप्त की तथा साथ ही वहाँ एक 'राष्ट्रीय पाठशाला' खोलकर वहाँ के बच्चों को नि:शुल्क हिंदी की शिक्षा

देने लगे। सन् 1909 ई. में ये पूर्णत: आर्यसमाज के प्रभाव में आ गए और अपने ग्राम में 'वैदिक पाठशाला' खोलने के अतिरिक्त सासाराम शहर में भी आर्यसमाज की स्थापना करने में सहयोग किया। धीरे-धीरे ये आर्यसमाज की गतिविधियों में इतने तल्लीन हो गए कि सन् 1911 ई. में इन्होंने 'बिहार आर्य प्रतिनिधि सभा' का अवैतनिक उपदेशक पद स्वीकार कर लिया साथ ही सभा की ओर से प्रकाशित होने वाले 'आर्यावर्त' नामक मासिक पत्र के भी ये सहकारी संपादक बन गए।

इनका विवाह शाहाबाद जिले के 'सखरा' गाँव की एक कन्या के साथ हुआ जिनका नाम जगरानी देवी था। वे सर्वथा निरक्षर थीं; किंतु भवानी दयालजी ने उन्हें विधिवत पढ़ाकर इतना सुयोग्य बना दिया कि वे इनके जीवन में बहुत सहायक सिद्ध हुईं। 1911 ई. में भवानी दयालजी के पिता का देहावसान हो गया और घर में काफी कलह उत्पन्न हो जाने के कारण अपनी धर्मपत्नी और अपने अनुज देवी दयाल को साथ लेकर सन् 1912 ई. में फिर दक्षिण अफ्रीका चले गए।

भवानी दयालजी ने दक्षिण अफ्रीका पहुँचकर अपनी पत्नी के साथ महात्मा गांधी के सत्याग्रह में उत्साह से भाग लिया और सपत्नीक जेल जीवन व्यतीत किया। 1914 ई. में गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका से 'इंडियन ओपिनियन' नामक जो अंग्रेज़ी पत्र प्रकाशित किया, उसके हिंदी संस्करण का संपादन भवानी दयालजी ने ही किया। गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका से वापस आने के बाद भवानी दयालजी ने दक्षिण अफ्रीका में हिंदी प्रचार का कार्य आरंभ किया। जर्मिस्टन में मज़दूरी करते हुए भी इन्होंने सार्वजनिक क्षेत्र में ग्रंथ लेखन के सिवाय एक और काम किया और वह था—ट्रांसवाल हिंदी प्रचारिणी सभा की स्थापना। इस सभा का साप्ताहिक अधिवेशन हर रविवार को होता था और उसमें प्रवासी भारतीयों में हिंदी प्रचार की आवश्यकता पर विशेष रूप से चर्चा की जाती थी। हिंदी प्रचारिणी सभाओं की स्थापना के साथ ही हिंदी—रात्रि-पाठशालाओं और फुटबॉल क्लब की भी स्थापना उन्होंने की। खेलकूद की ओर तरुणों की विशेष अभिरुचि और प्रवृत्ति होती है; अतएव भवानी दयालजी द्वारा स्थापित हिंदी फुटबॉल क्लब भारतीय युवकों में हिंदी प्रचार का अच्छा साधन बन गया। इस प्रकार भवानी दयालजी ने पाँच साल लगातार नेटाल और ट्रांसवाल में हिंदी का प्रचार कार्य किया और इस दौरान जर्मिस्टन, न्यूकासल, डेनहाउसर, हार्टिंगस्प्रुट, ग्लेंको, वर्नसाइट, लेडीस्मिथ, विनेन एवं जेकोब्स आदि शहरों और कस्बों में 'हिंदी प्रचारिणी सभाएँ' और हिंदी पाठशालाएँ स्थापित कीं। इन सभाओं को एक केंद्रीय मंडल के अंतर्गत संगठित करने के लिए 'दक्षिण अफ्रीका हिंदी-साहित्य-सम्मेलन' की स्थापना भवानी दयालजी ने की जिसका प्रथम वार्षिक अधिवेशन 1916 ई. में लेडीस्मिथ में और दूसरा वार्षिक अधिवेशन 1917 ई. में पीटर मेरित्स्बर्ग में बड़ी धूमधाम से हुआ। इतना ही नहीं, डरबन नगर के अंतर्गत क्लेर इस्टेट में इन्होंने हिंदी आश्रम भी स्थापित किया। इस आश्रम में हिंदी पुस्तकालय, हिंदी विद्यालय और हिंदी मुद्रणालय भी स्थापित करवाया। इनकी धर्मपत्नी जगरानी देवी ही उस विद्यालय की अधिष्ठात्री थीं।

1914 ई. में गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका से 'इंडियन ओपिनियन' नामक जो अंग्रेज़ी पत्र प्रकाशित किया, उसके हिंदी संस्करण का संपादन भवानी दयालजी ने ही किया। गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका से वापस आने के बाद भवानी दयालजी ने दक्षिण अफ्रीका में हिंदी प्रचार का कार्य आरंभ किया। जर्मिस्टन में मज़दूरी करते हुए भी इन्होंने सार्वजनिक क्षेत्र में ग्रंथ लेखन के सिवाय एक और काम किया और वह था—ट्रांसवाल हिंदी प्रचारिणी सभा की स्थापना।

जब ये हिंदी प्रचार कार्य कर रहे थे उन्हीं दिनों इन्होंने 'धर्मवीर' नामक एक साप्ताहिक पत्र का भी संपादन प्रारंभ किया था, जो हिंदी तथा अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं में प्रकाशित होता था। लगभग दो वर्ष इन्होंने धर्मवीर के संपादन में बिताया। धर्मवीर के द्वारा दलित और पीड़ित प्रवासी भारतीयों को अपने मानवीय अधिकारों के प्रति जागरूक करना, वैदिक धर्म और आर्य-संस्कृति का संदेश सुनाना, समाज में प्रचलित सड़ी-गली रूढ़ियों के विरुद्ध बगावत फैलाना, जात-पाँत और ऊँच-नीच, भेदभाव मिटाना, स्त्रियों को समाज में समानाधिकार दिलाना और मातृभाषा हिंदी का पताका फहराना इन्होंने अपना मुख्य उद्देश्य बना लिया था।

1919 ई. में 'काठियावाड़' नामक जहाज से ये भारत आए। जलियाँवाला बाग हत्याकांड के कारण 1919 का कांग्रेस का

अधिवेशन अमृतसर में हुआ और ये उसमें शामिल हुए। यहीं पर उन्होंने भारत के कई बड़े-बड़े नेताओं को देखा और उनसे संपर्क किया। कांग्रेस में शामिल होकर इन्होंने प्रवासी भारतीयों की समस्या को बड़ी गंभीरता से उठाया फलस्वरूप कांग्रेस में प्रवासियों की समस्या पर अच्छी चर्चा हुई। इसी कांग्रेस में भवानी दयाल के अलावा एम.पी. ठाकुर, बिहारी लाल अनंतमी और नादिरशाह कामा आदि प्रवासी भी उपस्थित थे जिनके व्याख्यान भी इस कांग्रेस में हुए। जुलाई, 1920 ई. में ये पुन: दक्षिण अफ्रीका वापस चले गए।

दक्षिण अफ्रीका वापस जाने पर उन्होंने 1921 ई. के आरंभ में नेटाल इंडियन कांग्रेस को पुनर्जीवित करने की चर्चा चलाई जिसकी स्थापना 22 मई, 1894 ई. को गांधीजी आदि व्यक्तियों ने मिलकर की थी। उनका प्रयास सफल रहा और 1921 में ही यह संस्था पुनर्जीवित हो गई तथा बहुमत से भवानी दयालजी को इसका उप-प्रधान चुना गया। इस पद पर ये 18 वर्ष तक रहे। उनकी सेवाओं को ध्यान में रखकर 1938 ई. में उन्हें इसका प्रधान बना दिया गया।

1922 ई. में जब दयालजी हिंदी का संपादन कर रहे थे, अपनी विमाता की मृत्यु पर भारत आए। उसी वर्ष कांग्रेस के गया अधिवेशन में शामिल हुए। कांग्रेस के नए संविधान में प्रवासियों के प्रश्न को हटा दिया गया था। अतएव बहुत अधिक कहा सुनकर प्रवासियों के प्रतिनिधित्व संबंधी एक विशेष प्रस्ताव पास कराया जिसमें यह प्रावधान किया गया कि नेटाल इंडियन कांग्रेस, ट्रांसवाल इंडियन कांग्रेस, ट्रांसवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन और केप ब्रिटिश इंडियन कौंसिल के 10 प्रतिनिधि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में शामिल हो सकेंगे। इनका ही प्रभाव था कि कांग्रेस में प्रवासियों पर काफी चर्चा हुई। 1923 ई. के कानपुर हिंदी साहित्य सम्मेलन में भी सम्मिलित हुए, जहाँ प्रवासी भारतीयों के प्रश्न पर अच्छी चर्चा हुई। एक प्रस्ताव में इनकी पत्नी जगरानी देवी के निधन पर परिपात किया गया और दूसरे प्रस्ताव में दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों में हिंदी प्रचार संबंधी कार्यों की प्रशंसा की गई तथा हिंदी पत्रिका को 500 रु. देकर भवानी दयाल की हिंदी सेवाओं पर स्वीकृति की मुहर लगा दी गई। जुलाई 1923 ई. में ये पुन: नेटाल वापस चले गए।

1922 ई. में भवानी दयालजी ने हिंदी और अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं में 'हिंदी' नामक साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया, जिसने पत्रकारिता के इतिहास में एक प्रतिमान स्थापित किया। 1922 ई. में ही डरबन के निकट 'जेकोब्स' नामक स्थान पर एक प्रेस भी खोला। इसी समय एक बड़ी दु:खद घटना घटी—अप्रैल 1922 ई. में ही इनकी पत्नी और इस कार्य में इनकी मुख्य सहयोगी का असामयिक निधन हो गया। उन्होंने दिवंगत आत्मा की स्मृति में छापेखाने का नाम 'जगरानी प्रेस' रखा। इसी प्रेस से मुद्रित होकर मई के प्रथम सप्ताह में हिंदी का प्रथमांक निकला। उसके उद्घाटनोत्सव में डरबन के प्राय: सभी प्रतिष्ठित नागरिक और जन-नायक सम्मिलित थे। इस प्रकार जगरानी प्रेस से मुद्रित होकर साप्ताहिक रूप से 'हिंदी' चलने लगी। यह पत्रिका सचित्र और विषयवस्तु की दृष्टि से काफी समुन्नत थी और प्रवासी भारतीयों में तो वह ऐसी लोकप्रिय हुई कि नेटाल के साथ-ही-साथ अन्य देशों में भी उसकी काफी माँग थी। इस पत्रिका के भवानी दयाल संन्यासीजी ही मालिक, संचालक, व्यवस्थापक, संपादक, संवाददाता, क्लर्क और सब कुछ थे।

इस पत्र का सर्वत्र आदर हुआ तथा हिंदी भाषा और साहित्य के प्रचार के साथ ही प्रवासी भारतीयों की समस्याओं को भी इस पत्रिका ने प्रमुखता से उठाया। इस पत्रिका में बड़े-बड़े लेखकों, विद्वानों और राजनेताओं के लेख छपा करते थे। इस पत्रिका के कई बड़े-बड़े विशेषांक भी निकले जिनमें तत्कालीन समस्याओं पर समस्या विशेषज्ञों-तारकनाथ दास, सुधींद्र बोस, हेनरी पोलक, सरोजिनी नायडू, सी.एफ. एंड्रूज, राजा महेंद्र प्रताप आदि के विस्तृत लेख छपे। इस पत्रिका के कई सचित्र विशेषांक यथा 'राष्ट्रीय अंक', 'तिलक अंक', 'दीपावली अंक' इत्यादि इतने सर्वांग सुंदर निकले थे। वे पत्रकारिता के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेंगे। उनमें से कुछ अंक के चित्र इस प्रकार हैं—

परंतु जिस समय पत्रिका उन्नति करती जा रही थी उसी क्रम में उसे निकालने में घाटा भी होता जा रहा था। 1923-24 ई. में ही भवानी दयालजी ने अपील की कि यदि उन्हें उचित सहायता न मिली तो इस पत्र को बंद कर देना पड़ेगा। संसार के विभिन्न भागों से इस पत्रिका को सहायता मिली, यहाँ तक कि हिंदी की आदि जीवित मातृसंस्था काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने भी 50 रु. पत्रिका के सहायतार्थ प्रदान किया।

1925 ई. के अंत में जब दक्षिण अफ्रीका की हर्टजोग की गोरी सरकार के अत्याचारों और 'क्लास एरिया बिल' जैसे काले कानूनों के कारण प्रवासी भारतीयों पर विपत्ति आई तब भवानी दयालजी भारत के तत्कालीन वाइसरॉय लॉर्ड रीडिंग से मिलने और श्रीमती सरोजिनी नायडू की अध्यक्षता में हुई कांग्रेस के कानपुर अधिवेशन में प्रवासी भारतीयों की कष्टमय कथा सुनाने भारत आए, जिसके कारण हिंदी का प्रकाशन स्थगित कर देना पड़ा। 1925 ई. में भवानी दयालजी ने कलकत्ता में भारत के तत्कालीन वाइसरॉय लॉर्ड रीडिंग से मुलाकात की और प्रवासी भारतीयों की समस्या से अवगत कराया। दिसंबर 1925 के कांग्रेस के कानपुर अधिवेशन में सम्मिलित होकर प्रवासियों की समस्या को प्रथम बार बड़े ही सशक्त ढंग से उठाया। स्वामी दयानंद और आर्यसमाज ने हिंदी का काफी

प्रचार किया था, इसलिए जब 1925 ई. में स्वामी दयानंद की जन्म-शताब्दी मनाई जा रही थी तो उसके लिए जो समिति बनाई गई थी, उसके अध्यक्ष संन्यासीजी ही बनाए गए। इसी अवसर पर 'नेटाल आर्य प्रतिनिधि सभा' की भी स्थापना हुई और उसके भी अध्यक्ष ये ही बनाए गए। अपनी इस ऐतिहासिक यात्रा की स्मृति में संन्यासीजी ने अपने जन्म ग्राम में 'प्रवासी भवन' का निर्माण करवाया। इस भवन में एक 'दयाल पुस्तकालय' और एक 'दु:खन पाठशाला' भी खोला जो दु:खन के नाम पर 'दु:खन लोअर प्राइमरी स्कूल' हो गया। इस पाठशाला में देहात के बच्चों को नि:शुल्क हिंदी की शिक्षा दी जाती थी।

भवानी दयाल की पत्नी की मृत्यु अप्रैल 1922 ई. में ही हो चुकी थी। अतएव 1927 ई. में 35 वर्ष की अवस्था में रामनवमी के दिन इन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया, किंतु अपना नाम न बदलकर केवल उसके अंत में 'संन्यासी' शब्द ही जोड़ लिया। फिर ये सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली की ओर से वैदिक धर्म का प्रचार करने के लिए दक्षिण अफ्रीका लौट गए और वहाँ दो वर्ष तक प्रचार कार्य करते रहे। 1928 ई. में नेटाल की प्रांतीय कौंसिल ने नए भारतीयों की शिक्षा के लिए शिक्षा कमीशन बैठाया तो इन्होंने मातृभाषा का पक्ष लिया। शास्त्रीजी के लाख विरोध करने पर भी ये अपनी बात पर अड़े रहे और शिक्षा के माध्यम के रूप में हिंदी का ही समर्थन किया, यद्यपि कमीशन की योजना का क्रियान्वयन ही नहीं हुआ।

1929 ई. के अंत में भवानी दयालजी पुन: भारत आए। 1930 ई. में महात्मा गांधी ने जब 'दांडी सत्याग्रह' आरंभ किया तो भवानी दयाल भी उसमें पूरे उत्साह से शामिल हुए। 1930 की शुरुआत में बिहार की शाहाबाद जिला कांग्रेस कमेटी ने उन्हें अपना सभापति चुन लिया और वहाँ पर भवानी दयालजी ने कांग्रेस का नेतृत्त्व करते हुए बक्सर, डुमराँव और जगदीशपुर में जोशीला भाषण दिया और तीन सप्ताह में ही इनके 27 भाषण हुए। इनके द्वारा इस अवसर पर कही गई दो पंक्तियाँ तो लोगों का एक प्रकार से प्रेरणास्रोत बन गईं—

''स्वतंत्रता की प्रथम क्रांति में, कुँवर अमर ने रक्खी लाज।
शाहाबाद के वीर सपूतों, हँसी न होने पावे आज॥''

सविनय अवज्ञा आंदोलन में अति सक्रिय भागीदारी और सरकार के खिलाफ उग्र भाषण देने के कारण, 12 अप्रैल, 1930 में आरा स्टेशन पर इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और इन पर राजद्रोह लगाया गया और एक वर्ष तक इन्हें हज़ारीबाग सेंट्रल जेल में रहना पड़ा। जेल में रहते हुए भी वहाँ से वे 'कारागार' नामक हस्तलिखित पत्र निकालते थे। उसमें लेख देनेवालों में डॉ. राजेंद्र प्रसाद और पं. जवाहर लाल नेहरू जैसे कितने लोग थे। इस पत्र के कई विशेषांक निकले जिसमें 'सत्याग्रह विशेषांक' अत्यंत उल्लेखनीय है। 1930 ई. में ही, जेल जाने से पूर्व वृंदावन में हुई 'प्रवासी परिषद' के भी भवानी दयालजी ही अध्यक्ष मनोनीत किए गए। 1931 ई. में लगभग 12 माह बाद ये जेल से बाहर आए। जेल से आने के बाद 1931 ई. में देवघर (बिहार) में संपन्न हुए 'बिहार प्रांतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन' के दसवें अधिवेशन की अध्यक्षता उन्होंने ही की और उसके बाद ये अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के कलकत्ता अधिवेशन में हुए 'संपादक सम्मेलन' के भी अध्यक्ष बनाए गए। उन दिनों संन्यासीजी पटना से प्रकाशित होने वाले 'बिहार आर्य प्रतिनिधि सभा' के पत्र 'आर्यावर्त' (साप्ताहिक) का भी संपादन करते रहे। 1932 ई. में पुन: हिंदी और प्रवासियों के सहायतार्थ नेटाल चले गए।

भारत में स्थायी रूप से बसने के बाद अपना शेष जीवन भी हिंदी और प्रवासियों की सेवा में उत्सर्ग करने के विचार से 1942 ई. में अजमेर में 'प्रवासी भवन' बनवाया। हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि और प्रवासी साहित्य की सृष्टि और अभिवृद्धि के अभिप्राय से संन्यासीजी ने 'प्रवासी-पुस्तकमाला' का प्रकाशन आरंभ किया और द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण कागज के दाम अत्यधिक होते हुए भी इस माले में पाँच पुस्तकें गूँथी-वैदिक प्रार्थना, स्वामी शंकरानंद सुदर्शन, अब्दुल्ला इस्माइल काजी (अंग्रेज़ी), पोर्तगीज पूर्व अफ्रीका में हिंदुस्तानी और वर्ण व्यवस्था या मरण अवस्था।

15 माघ, सं 2000 वि. (1943 ई.) को काशी की नागरी प्रचारिणी सभा ने अपना अर्द्ध-शताब्दी उत्सव मनाया। काशी की यह सभा संन्यासीजी के कार्यों की आरंभ से ही सराहना करती आई थी। अतएव जबकि भारत में एक से बढ़कर एक हिंदी के विद्वान थे परंतु फिर भी भारत और भारत से बाहर पूरे प्रवासी भारतीयों में हिंदी प्रचार के लिए संन्यासीजी द्वारा किए गए प्रयास और उनकी हिंदी सेवाओं को मान्यता प्रदान करते हुए काशी की सभा द्वारा उन्हें अपने 'अर्द्ध-शताब्दी उत्सव' के सभी कार्यक्रमों का सभापति चुना

गया। सभाभवन के पीछे बनवाए गए विशाल पंडाल में यह उत्सव हुआ और भारत के गणमान्य हिंदी के विद्वान इस अवसर पर उपस्थित थे। सबसे अंत में भवानी दयालजी ने अपना मुद्रित भाषण पढ़ा जिसमें भारत तथा वृहत्तर भारत में हिंदी भाषा की तत्कालीन अवस्था का सिंहावलोकन कराते हुए उसकी विभिन्न समस्याओं का बहुत सुंदर विवेचन किया था।

अजमेर में 'प्रवासी भवन' में रहते हुए भवानी दयाल बीमार ही रहा करते थे। ऐसी अवस्था में भी जब दक्षिण अफ्रीका में अफ्रीका की सरकार ने 'घेटो ऐट' पास किया जिसका मकसद प्रवासी भारतीयों को अछूतों की भाँति नगरों और कस्बों से अलग बस्ती बसाने के लिए बाध्य करना था, तो इस कानून के खिलाफ प्रवासी भारतीयों ने सत्याग्रह आरंभ कर दिया। ऐसे समय में प्रवासी भारतीयों की समस्या को भारत और विश्व स्तर पर उठाने के उद्देश्य से 1946–47 ई. में हिंदी और अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं में एक साथ प्रसिद्ध 'प्रवासी' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया। इस पत्रिका के प्रकाशन का एक अन्य प्रमुख उद्देश्य यह था कि समूचे भारत में प्रवासियों से संबंधित कोई पत्रिका नहीं थी, जैसा कि संन्यासीजी ने स्वयं रेखांकित किया था कि ''इस समय हिंदुस्तान में ऐसा एक भी अखबार नहीं है, जिसका मुख्य उद्देश्य हो— प्रवासी भारतीयों की समस्याओं पर प्रकाश डालना, उनके दुःख-सुख की कथा देशवासियों को सुनाना और संकट की घड़ी में उनको धैर्य बँधाना तथा मातृभूमि की ओर से उनको सहायता पहुँचाना। संसार के सभी सभ्य और स्वतंत्र देशों में प्रवास का प्रश्न बड़ा महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इंग्लैंड में तो ऐसी अनेक सभा-समितियाँ हैं और ऐसे अनेक पत्र निकलते हैं, जिनका एकमात्र उद्देश्य प्रवास के सभी पहलुओं पर प्रकाश डालना ही है। पर हमारे देश में? यहाँ का तो कहना ही क्या? इस समय लगभग पचास लाख भारतीय देश-देशांतरों में बसे हैं, और हज़ारों भाई हर साल विदेशों में बसने जा रहे हैं, परंतु इस विशाल देश में, किसी भी भाषा में एक भी ऐसा पत्र नहीं निकला है, जो प्रवास-जीवन की समस्याओं से देशवासियों को अवगत कराता हो। क्या यह स्वतंत्र भारत के लिए विषाद की बात नहीं है?''

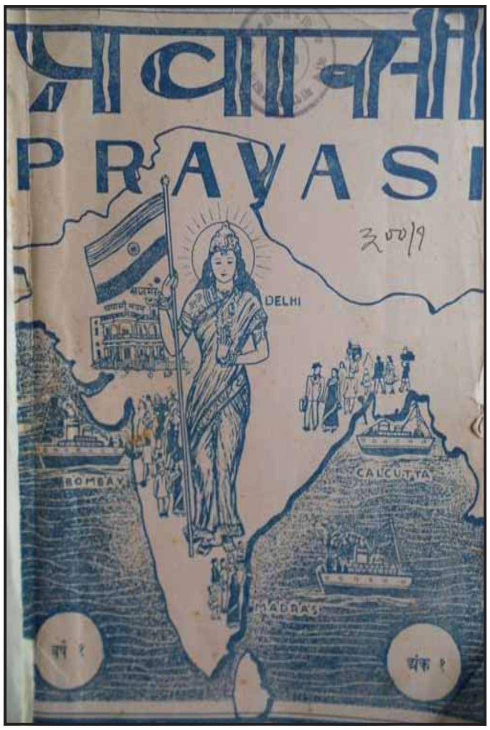

अत्यंत रोगग्रस्त रहते हुए और आर्थिक दृष्टि से अत्यंत विपन्न होते हुए भी शाहपुरा के महाराजा श्री उम्मेद सिंह की आर्थिक सहायता से 'प्रवासी' पत्रिका निकाली। इस पत्रिका के मुखपृष्ठ पर जो चित्र छपता था यह स्पष्ट कर देता था कि भारत में किन स्थानों से और किस अमानवीय तरीके से भेड़ की भाँति अपने को तथाकथित सभ्य कहनेवाली जाति भारतवासियों को उपनिवेशों में कार्य करने के लिए जाती थी। पत्रिका के प्रथम अंक का मुखपृष्ठ इस बात को स्पष्ट करता है जो इस प्रकार है—

भवानी दयाल संन्यासी का निधन 9 मई, 1950 ई. को अजमेर में हुआ। अपने अत्यंत व्यस्त जीवन में लगातार भारत और दक्षिण अफ्रीका के बीच यात्रा करने और प्रवासियों की सेवा करने के साथ ही हिंदी की सेवा करते हुए अनेक ग्रंथ लिखे जो साहित्यिक, ऐतिहासिक और विषय विवेचन की दृष्टि से अपना अलग ही महत्त्व रखती हैं। उन्होंने 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास', 'दक्षिण अफ्रीका के मेरे अनुभव', 'सत्याग्रही महात्मा गांधी', 'हमारी कारावास कहानी', 'प्रवासी की आत्मकथा' और 'सत्याग्रह का इतिहास' सदृश हिंदी की पुस्तकें लिखीं। इसके साथ ही संन्यासीजी ने कितने ही लेख लिखे जो समकालीन प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए।

संन्यासीजी हिंदी के बहुत बड़े समर्थक थे और केवल सैद्धांतिक रूप में ही नहीं अपितु व्यावहारिक जीवन में उसे पूर्णरूप से सार्थक कर दिखलाने का उन्होंने प्रयास किया। इस कार्य को करते हुए उन्होंने कभी भी समझौता नहीं किया और इस क्षेत्र में हिंदी की उद्गम भूमि भारत में ही बड़े-बड़े राष्ट्रवादी नेताओं, शिक्षाविदों, ग्रंथकारों, समाचार-पत्रों के अंग्रेज़ी की सेवा करने, यहाँ तक कि राष्ट्रीय महासभा का भी विदेशी अंग्रेज़ी नाम 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' होने पर उन सबकी कटु आलोचना करने में भी कभी भी पीछे नहीं रहे और विदेशी वातावरण में पले होने पर भी आजीवन हिंदी की सेवा की। इस संबंध में उनकी प्रखर व्यंग्यात्मकता उनकी आत्मकथा की इन पंक्तियों से ही स्पष्ट हो जाती है, जिसमें उन्होंने लिखा है कि ''विदेशों में जो भारतवासी बसे हैं यदि विदेशी वातावरण में रहने के कारण उनकी राष्ट्रीय भावनाएँ कुंठित हो गई हों तो यह दुःख की बात अवश्य है, परंतु उससे भी अधिक दुःख तो यह देखकर होता है कि स्वयं हमारे हिंदुस्तान में ही लोग दास्य-मनोवृत्ति का पोषण और रक्षण कर रहे हैं। भारत के बड़े-बड़े विद्वान और विचारक अंग्रेज़ी में व्याख्यान देते हैं, गणमान्य ग्रंथकार और

लब्धप्रतिष्ठ लेखक अंग्रेज़ी में लिखते हैं; अग्रगण्य अखबार अंग्रेज़ी में निकलते हैं, शिक्षा संस्थाओं में अंग्रेज़ी का आधिपत्य है और यहाँ तक कि हमारी राष्ट्रीय महासभा का नाम भी अंग्रेज़ी में 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' है। शिक्षित भारतीयों पर अंग्रेज़ी का ऐसा गाढ़ा रंग चढ़ गया है कि अपनी भाषा के प्रति न माया रही न ममता।···जब स्वदेश में ही हमारी यह संताप-जनक स्थिति है तो विदेशों में इससे अच्छी स्थिति की आशा करना मृग-तृष्णा के सिवा और क्या होगा।''

इस प्रकार भवानी दयाल संन्यासी के जीवन और उनके कार्य-व्यापारों पर दृष्टिपात करने पर यह बात पूर्णत: स्पष्ट हो जाती है कि उनका पूरा जीवन हिंदी सेवा में बीता। प्रवासी भारतीयों की समस्याओं का समाधान और उनके अधिकारों की रक्षा के साथ ही उनमें अपनी भाषा, सभ्यता और संस्कृति के प्रति ममता और सम्मान की भावना उत्पन्न करना उनके जीवन का प्रमुख उद्देश्य बन गया था। उनके कार्य-व्यापारों की हिंदी के राष्ट्रवादी कवि मैथिलीशरण गुप्त ने प्रशंसा करते हुए लिखा था कि—

''स्वामी होकर भी तुम सबकी, सेवा करते रहे सदा॥
जीता रहे न्याय इस कारण, लड़ते मरते रहे सदा॥
दक्षिण अफ्रीका हुआ फिर जो हम पर वाम।
तो निश्चय फिर हमी जीतेंगे संग्राम॥''

भवानी दयाल संन्यासी के कार्यों की समालोचना करते हुए प्रसिद्ध हरिभाऊ उपाध्याय ने लिखा कि ''स्वामीजी प्रवासी भारतवासियों के लिए जिए और उन्हीं की चिंता करते कराते स्वर्गवासी हुए। प्रवासी भारतवासियों के दु:ख और दर्द, उनके ऊपर किए जाने वाले अमानवीय अत्याचारों को उन्होंने निकट से देखा और समझा था और चेष्टा की थी कि वे भी स्वाभिमानी नागरिकों की भाँति ही जीवन व्यतीत कर सकें। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने वाणी और लेखनी द्वारा निरंतर आंदोलन किया और इस कार्य में उन्हें बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त हुई। जीवन के अंतिम वर्षों में निरंतर अस्वस्थ रहने पर भी, वे 'प्रवासी' द्वारा भारतीयों की सेवा करते रहे।'' संन्यासीजी की हिंदी सेवाओं को स्मरण करते हुए काशी नागरी प्रचारिणी सभा के संस्थापक और प्रधानमंत्री पं. रामनारायण मिश्र ने कहा था कि ''हिंदी में इतना बड़ा पब्लिसिटी मास्टर अब तक कोई नहीं हुआ।'' संन्यासीजी की हिंदी सेवाओं से ऋणमुक्त होने के लिए अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन ने इन्हें हिंदी की सबसे बड़ी पदवी 'साहित्य वाचस्पति' से अलंकृत किया। निष्कर्षत: संन्यासीजी के समस्त कार्यों को केवल दो शब्दों में कहा जा सकता है—हिंदी की सेवा और प्रवासियों की समस्याओं का समाधान। नि:संदेह, भवानी दयाल संन्यासीजी का नाम भारत और समूचे विश्व में हिंदी की सेवा के लिए स्वर्णाक्षरों युगों तक अंकित रहेगा।

—ग्राम व पोष्ट-नेहियाँ
वाराणसी, उ.प्र.-221202 (भारत)
इ-मेल : rkdhistory@gmail.com

❑

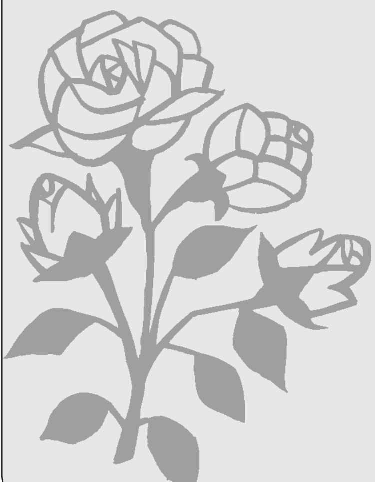

अहंकार को शून्य करने में प्रार्थना मदद दे सकती है।

—विनोबा भावे

विवेक बहादुरी का उत्तम अंश है।

—शेक्सपियर

19

हिंदी के विकास में विदेशी विद्वानों का योगदान

–उमेश चतुर्वेदी

जिस ब्रिटिश सरकार के एक अधिकारी मैकाले ने क्लर्क बनाने के नाम पर अंग्रेज़ी जानने की अनिवार्यता शुरू की थी—बहुत लोगों को जानकर हैरत हो सकती है कि उसी सरकार ने 1881 में निर्णय कर लिया था कि भारतीय सिविल सेवा में वही अफसर चुने जाएँगे, जिन्हें हिंदी और दूसरी भारतीय भाषाओं की समझ है। वैसे हिंदी का प्रशासनिक महत्त्व अंग्रेज़ सरकार ने सन् 1800 से पहले ही समझना शुरू कर दिया था। दिलचस्प बात ये है कि इसके कारण कतिपय अंग्रेज़ विद्वान ही थे।

कई लोगों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि हिंदी का पहला व्याकरण डच भाषा में 1698 में लिखा गया था। इसे हॉलैंड निवासी जॉन जीशुआ कैटलर ने 'हिंदुस्तानी भाषा' नाम से लिखा था। इसी तरह हिंदी साहित्य का पहला इतिहास किसी हिंदुस्तानी विद्वान या हिंदुस्तानी भाषा में नहीं लिखा गया था। इसके बाद दो और महत्त्वपूर्ण पुस्तकें इसी भाषा में रची गईं। 1745 में लिखी पुस्तक 'हिंदुस्तानी व्याकरण' और 1771 में प्रकाशित 'अल्फाबेतुम ब्रह्मनिकुम'। इनके रचनाकारों के नाम हैं—सर्वश्री बेंजामिन शुल्ज और कैसियानो बेलिगति। हिंदी साहित्य का पहला इतिहास फ्रेंच विद्वान गार्सा द तासी ने 1886 में 'ला लितरेतर ऐन ऐंदुई इंदुस्तानी' नाम से लिखा था।

लेकिन हिंदी के सार्वकालिक और सार्वदेशिक महत्त्व को सबसे पहले एडवर्डटेरी नामक अंग्रेज़ विद्वान ने समझा था। उन्होंने 1655 में ही कहा था—'हिंदुस्तान की बोलचाल की भाषा अरबी-फारसी भाषाओं से बहुत मिलती-जुलती है, लेकिन बोलने में उनसे ज्यादा सुखकर और आसान है। इसमें काफी रवानी है और थोड़े में बहुत कुछ कहा जा सकता है, एडवर्डटेरी को यह जानकर प्रसन्नता हुई थी कि हिंदी भी अंग्रेज़ी की तरह बाएँ से दाएँ लिखी जाती है, अरबी और उर्दू की तरह दाएँ से बाएँ नहीं। अंग्रेज़ विद्वानों की ये पीढ़ी निश्चित रूप से पूर्वाग्रह से दूर थी। इनके लिए क्षुद्र स्वार्थों का कोई स्थान नहीं था। इन्हीं सब कारणों से उन्होंने अपनी जिज्ञासा को आगे बढ़ाते हुए हिंदी का अध्ययन किया। एडवर्डटेरी के एक सदी बाद 1782 में एक अंग्रेज़ अधिकारी हेनरी थॉमस कोल ब्रुक हिंदुस्तान आए। बंगाल सर्विस के योग्यतम अफसरों में उनका नाम था। उन्होंने हिंदुस्तानी भाषा का अध्ययन तो किया ही, संस्कृत से उनका विशेष अनुराग था। कालांतर में संस्कृत में विद्वत्ता के लिए वे विख्यात भी हुए। उन्होंने हिंदी के सार्वजनिक एवं सार्वदेशिक रूप को स्पष्ट करते हुए लिखा—जिस भाषा का व्यवहार पूरे हिंदुस्तान के लोग करते हैं, जो पढ़े-लिखे और अनपढ़—हर तरह के लोगों की सामान्य बोलचाल की भी भाषा है, जिसे हर एक गाँव के लोग समझ-बूझ लेते हैं; यथार्थ में उस भाषा का नाम हिंदी है। कई लोग ये जानकर भी हैरत में पड़ सकते हैं कि बंगाल एशियाटिक सोसाइटी भले ही ओरिएंटल ज्ञान-विज्ञान के लिए मशहूर हुई, लेकिन उसकी स्थापना भी अपने हिंदी प्रेम के कारण सर विलियम जोंस ने की थी। जिसने बाद में पृथ्वीराज रासो, कर्नल टॉड कृत राजस्थान और बीसलदेव रासो समेत कई अनमोल और तकरीबन लुप्त हो चुके ग्रंथों की खोज की। कर्नल टॉड ने राजस्थानी लोकसाहित्य पर भी

- टेलीविजन पत्रकार।
- 'जी न्यूज', 'महुआ न्यूज', 'दैनिक भास्कर' आदि में महत्त्वपूर्ण पद पर कार्यरत।
- फिलहाल स्वतंत्र लेखन।
- हिंदी में एम.ए.।
- पत्रकारिता में एम.एम.सी.।
- अब तक तीन हज़ार से ज्यादा आलेख प्रकाशित।
- मशहूर पत्रिका 'दिनमान' पर मोनोग्राफ प्रकाशित।
- वागीश्वरी प्रसाद 'छात्र कहानी पुरस्कार' और महामना 'मालवीय पत्रकारिता पुरस्कार' से सम्मानित।

काफी काम किया था। इन ग्रंथों के प्रकाशन के बाद ही अंग्रेज़ सरकार की सरकारी मुद्रा में भी देवनागरी का प्रयोग होने लगा।

जब-जब हिंदी का इतिहास लिखा जाएगा, तब-तब अंग्रेज़ विद्वान एडम गिलक्राइस्ट का नाम सम्मान के साथ लिया जाएगा। वही पहले विद्वान हैं, जिन्होंने पहली बार हिंदी-अंग्रेज़ी का शब्दकोश तैयार किया। 1787-91 में इस शब्दकोश का 'हिंदोस्तानी-इंगलिश डिक्शनरी' के नाम से दो खंडों में प्रकाशन हुआ था। गिलक्राइस्ट ही पहले विद्वान हैं, जिन्होंने हिंदी का पहली बार भाषा वैज्ञानिक अध्ययन पेश किया। उनका ये अध्ययन 1798 में ओरियंटल लिंग्विस्ट के नाम से प्रकाशित हुआ। गिलक्राइस्ट ने 1799 में 'ओरियंटल सेमिनरी' नाम से एक संस्था की स्थापना भी की। जिसके तहत हिंदुस्तानी का अध्ययन किया जाना था। इसके साथ ही ये संस्था यूरोपीय लोगों को अंग्रेज़ी के माध्यम से हिंदी भी सिखाती थी।

सन् 1799 में एक योग्य अफसर विलियम वटर वर्थ बेली ने भारतीय सिविल सेवा में प्रवेश लिया। यहाँ ये तथ्य गौर करने लायक हैं कि तब तक सिविल सेवा में प्रवेश पाने के लिए हिंदी की जानकारी होना औपचारिक तौर पर जरूरी हो गया था। बेली ने न सिर्फ हिंदी का गहन अध्ययन किया, बल्कि 1800 की हिंदुस्तानी की परीक्षा में दूसरा स्थान हासिल किया था। सन् 1802 में उन्होंने हिंदी की वाद-विवाद प्रतियोगिता में हिस्सा लिया। प्रतियोगिता का मेडल और उस जमाने में डेढ़ हज़ार रुपए नगद भी जीते। बाद में ये अफसर लॉर्ड विलियम बैंटिक से कुछ समय पहले तक भारत का गवर्नर जनरल भी रहा।

जब सिविल अधिकारियों के लिए हिंदी की अनिवार्यता लागू कर दी गई तो यह महसूस किया जाने लगा कि पहले से नियुक्त अधिकारियों को भी हिंदुस्तानी की जानकारी दी जानी चाहिए। इसके लिए एक कॉलेज खोलना तय हुआ और अंग्रेज़ सरकार ने अपने एक अधिकारी मॉकस वेलेजली को यह कॉलेज खोलने की जिम्मेदारी सौंपी। मॉकस ने ही काफी परेशानी और मेहनत के बाद 4 मई, 1800 को कलकत्ता (अब कोलकाता) में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की। बाद में गिलक्राइस्ट की इस कॉलेज में बतौर प्रोफेसर नियुक्ति की गई, जो सन् 1800 से 1804 तक इस कॉलेज में कार्यरत रहे। जाने-माने भाषा वैज्ञानिक कैलाश चंद्र भाटिया का मानना है कि इतनी छोटी अवधि में गिलक्राइस्ट ने हिंदी के लिए ऐतिहासिक भूमिका निभाई। अपने प्राध्यापकी के इसी दौर में गिलक्राइस्ट ने मानक हिंदी को खड़ी बोली नाम दिया या दूसरे शब्दों में कहें तो खड़ी बोली को ही बतौर मानक हिंदी मान्यता दिलाई। गिलक्राइस्ट ने हिंदी को संवर्द्धित करने का भरपूर प्रयास किया। ये बात और है कि नौकरशाही के दबावों के चलते गिलक्राइस्ट को इस कॉलेज से इस्तीफा देने में ही भलाई सूझी। वैसे तो कई लोग इस कॉलेज में आते रहे, लेकिन यहाँ तैनात एक विद्वान विलियम प्राइस ने हिंदुस्तानी की नई व्याकरण जैसी पुस्तक की रचना करके हिंदुस्तानी की अहम सेवा की। सन् 1828 में हिंदी पर लंदन से एक बेहद अहम पुस्तक 'ऑन द ऑरिजिन ऑफ स्ट्रक्चर ऑफ द हिंदुस्तानी टंग ऐंड जनरल लैंग्वेज' प्रकाशित हुई। जिसके लेखक अंग्रेज़ विद्वान आर्नोल्ड थे। उनकी इस परंपरा को फोर्ब्स नामक अंग्रेज़ विद्वान ने आगे बढ़ाया। उन्होंने हिंदी मैनुअल तैयार किया, जो 1845 में लंदन में प्रकाशित हुआ। अंग्रेज़ सरकार को दो विद्रोही अधिकारियों फ्रेडरिक जॉनशोर तथा फ्रेडरिक पिस्ट को भी झेलना पड़ा। पहले ने अंग्रेज़ी को हिंदी या हिंदुस्तानी के मुकाबले कमज़ोर भाषा बताते हुए अपने अकाट्य तर्क पेश किए, वहीं उन्होंने हिंदी के स्वराघात एवं वैज्ञानिकता की जबरदस्त प्रशंसा की तो दूसरे ने इस देश की राजभाषा हिंदी को बनाने के लिए जोरदार अभियान चलाया। जॉनशोर की 1837 में प्रकाशित पुस्तक 'नोट ऑन द इंडियन अफेयर्स' पढ़ने के बाद यही लगेगा कि ये शख्स दिल से हिंदुस्तानी था और भूलवश इंग्लैंड में पैदा हो गया था। इसके बाद नाम आता है, अंग्रेज़ विद्वान जेम्स रॉबर्ट वैलंटाइन का, जिसने ब्रज और दक्खिनी हिंदी को मिलाकर व्याकरण की एक पुस्तक तैयार की।

यहाँ अगर एक अंग्रेज़ सैनिक अधिकारी लेफ्टिनेंट थॉमस रोषक का जिक्र न किया जाए तो ये चर्चा अधूरी ही रहेगी। उन्होंने

कई लोगों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि हिंदी का पहला व्याकरण डच भाषा में 1698 में लिखा गया था। इसे हॉलैंड निवासी जॉन जीशुआ कैटलर ने 'हिंदुस्तानी भाषा' नाम से लिखा था। इसी तरह हिंदी साहित्य का पहला इतिहास किसी हिंदुस्तानी विद्वान या हिंदुस्तानी भाषा में नहीं लिखा गया था। इसके बाद दो और महत्त्वपूर्ण पुस्तकें इसी भाषा में रची गईं। 1745 में लिखी पुस्तक 'हिंदुस्तानी व्याकरण' और 1771 में प्रकाशित 'अल्फाबेतुम ब्रह्मनिकुम'। इनके रचनाकारों के नाम हैं—सर्वश्री बेंजामिन शुल्ज और कैसियानो बेलिगति। हिंदी साहित्य का पहला इतिहास फ्रेंच विद्वान गार्सा द तासी ने 1886 में 'ला लितरेतर ऐन ऐंदुई इंदुस्तानी' नाम से लिखा था।

सबसे पहले हिंदी की कहावतों और मुहावरों का संग्रह तैयार किया था, जो सन् 1824 में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। हिंदी की प्रशासनिक शब्दावली का संग्रह एच.एस. विल्सन ने ग्लॉसरी ऑफ ज्यूडिशियल ऐंड रेवेन्यू टर्म्स नाम से तैयार किया, जो 1855 में लंदन से प्रकाशित हुआ। सही मायने में ये वह काम था, जिससे हिंदी की प्रशासनिक भाषा बनने की नींव मज़बूत हुई।

इन सारे विद्वानों की इतनी बड़ी सेवा के बाद एक अंग्रेज़ अफसर लॉर्ड मैकाले की मिंट योजना ने पानी फेर दिया। अंग्रेज़ी शासन काल के दौरान ये योजना हिंदी की राह में उतनी बड़ी रुकावट नहीं बनी, जितनी 1950 में संविधान लागू होने के बाद बनी। इन विद्वानों के अलावा ग्रिफिथ, कैला और ग्रम के हिंदी के उत्थान संबंधी प्रयासों को नकारना कृतघ्नता होगी। इन लोगों की कोशिशों के साथ ही अंग्रेज़ अधिकारी जॉन अब्राहम ग्रियर्सन का नाम सदा याद रखा जाएगा। उन्होंने उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में बंगाल एशियाटिक सोसाइटी के बैनर तले भारतीय भाषाओं का भाषा वैज्ञानिक सर्वेक्षण किया, जो आज तक हिंदी और भारतीय भाषाओं के सर्वेक्षण का मानक आधार बना हुआ है। लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया नाम से प्रकाशित इस सर्वे में भारत की 1533 बोलियों और भाषाओं का सर्वे आज भारतीय भाषा इतिहास की धरोहर बन गया है। ग्रियर्सन ने 'मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तानी' के नाम से हिंदी साहित्य का इतिहास भी लिखा है।

—द्वारा जयप्रकाश, एफ-23ए
दूसरा तल, निकट शिवमंदिर
कटवारिया सराय, नई दिल्ली-110016
इ-मेल : uchaturvedi@gmail.com

❑

मातृभाषा, मातृसभ्यता और मातृभूमि—तीनों सुखकारिणी स्थिर रूप देवियाँ हमारे हृदयासन पर बिराजती रहें।

—वेद

सच्चा प्रेम दुर्लभ है, सच्ची मित्रता और भी दुर्लभ है।

—ला फॉण्टेन

मित्रता अवसरवादिता नहीं है, वह तो सदा ही एक मधुर उत्तरदायित्व है।

—खलील जिब्रान

मित्रता दैवीय देन है और मनुष्य के लिए अत्यंत बहुमूल्य वरदान।

—डिजरायली

20

मॉरीशस में हिंदी के प्रचार-प्रसार में आर्य समाज का योगदान

–सत्यदेव प्रीतम

छोटे से टापू मॉरीशस में अंग्रेज़ी राजभाषा के अलावा फ्रेंच भाषा का प्रयोग अनिवार्य रूप से होता है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है। इन दोनों भाषाओं के उपरांत भारतीय भाषाओं का पठन–पाठन होता है तथा प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षण के पाठ्यक्रमों में अरबी और चीनी भाषाओं को भी स्थान दिया गया है। एक प्रकार से मॉरीशस में तीन भाषा–सिद्धांत अनौपचारिक रूप से लागू है। अंग्रेज़ी–फ्रेंच के अलावा हिंदीभाषी बच्चे हिंदी, तेलुगूभाषी तेलुगू, तमिलभाषी तमिल और इसी प्रकार आगे चलता है—मुसलिम समुदाय के बच्चे उर्दू या अरबी की पढ़ाई करते हैं, तो चीनी मूल के बच्चे या तो हक्का या कैंटोनीज की। टापू पर इंडिजेनस/मूल निवासियों के न होने के कारण मॉरीशस की सभी भाषाएँ बाहर से आई हैं या तो एशिया से या अमेरिका से अथवा यूरोप से।

- **जन्म :** 1939
- **शिक्षा :** प्राथमिक, माध्यमिक के उपरांत बी.ए. (जनरल), अंग्रेज़ी, हिंदी साहित्य, राजनीति शास्त्र, समाज शास्त्र, क्रिम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.), भारत में।
- **अन्य योग्यता :** परिचय, प्रथमा, मध्यमा, टीचर्ज ट्रेनिंग कॉलेज : प्रमाण–पत्र, शैक्षणिक प्रबंधन (मेनैजमेंट इन एजुकेशन)।
- **प्रोफेशन :** स्कूल इंस्पेक्टर (अवकाश प्राप्त)।
- राष्ट्रीय प्रसारण केंद्र के रेडियो मॉरीशस चैनल में फ्रीलांसर तथा टी.वी. पर देश के गाँवों के इतिहास पर कार्यक्रम।
- **संप्रति :** महामंत्री—आर्य सभा मॉरीशस।

हिंदी का वह रूप, जिसे खड़ीबोली कहा जाता है, का आगमन तब हुआ जब भारत से 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में अंग्रेजी शासकों की जीत के बाद अंग्रेज़ों ने कुछ सिपाहियों को बागी करार देते हुए उन देशों व टापुओं में भेजना शुरू किया, जहाँ गन्ने के खेतों में काम करवाने के लिए मज़दूरों की आवश्यकता थी और औपनिवेशिक ताकतों ने अपने साम्राज्य के सर्वाधिक आबादी वाले देश से नए उपनिवेशों में सस्ते दामों पर मेहनती मज़दूरों को भेजने की प्रणाली आरंभ की। यह प्रणाली इतने जोशपूर्ण तरीके से विकसित हुई कि उन मज़दूरों को दक्षिण अमेरिका के सूरीनाम में भी भेजा गया, जो डच उपनिवेश था। उन मज़दूरों में अधिक संख्या में बिहार के भोजपुरिया थे, उनकी भाषा भोजपुरी थी, जो बहुलांश कैथी लिपि में लिखी जाती थी। उस समय न केवल भोजपुरी बल्कि हिंदी भी उस लिपि में लिखी जाती थी।

वैसे मॉरीशस में एग्रीमेंट प्रथा के अंतर्गत भारतीय मज़दूरों का आगमन 2 नवंबर, 1834 से पहले हुआ था, पर कुछ निश्चित कागजातों के अभाव में 2 नवंबर, 1834 को मॉरीशस आए मज़दूरों को ही मॉरीशस में प्रथम भारतीय गिरमिटिया आप्रवासी मान लिया गया। उस टोली में 36 मज़दूर थे, जो पहाड़ी इलाके के थे। इस बात में संदेह है कि क्या उनकी भाषा भोजपुरी थी। समय के साथ यह अनुभव हुआ कि उस विशेष भौगोलिक प्रांत के मज़दूर मॉरीशस में अपेक्षित काम करने के लिए अनुकूल नहीं थे। इसलिए उस प्रकार के मज़दूरों का आगमन रोक दिया गया।

वापस आते हैं हिंदी भाषा की स्थिति पर, एक ऐतिहासिक मापदंड के रूप में 1872 में आदोल्फ दे प्लेवित्स की याचिका को लिया जा सकता है, जो उन्होंने भारतीय मज़दूरों के 'हस्ताक्षर' के साथ ब्रिटिश सरकार को भेजी थी। उस याचिका में अधिक

लोगों ने अँगूठा लगाया था। जो चंद हस्ताक्षर थे, उनमें हिंदी/देवनागरी कम थी। कुछ हस्ताक्षर तमिल में थे, जबकि अन्य भाषाएँ नहीं के बराबर थीं।

आप्रवास के इन प्रथम कुछ दशकों के बाद आनेवाले जत्थों में कुछ पढ़े-लिखे आप्रवासी आने लगे। उनमें भी रामचरितमानस या आल्हा-ऊदल की कथा, कबीर के दोहे पढ़ने वाले जाने लगे। अभी तक खड़ीबोली हिंदी का पदार्पण पूरी तरह से नहीं हुआ था। उन दिनों ब्राह्मण वर्ग के पुरोहित 'सत्यनारायण स्वामी' की कथा-श्लोक बाँचने के बाद भोजपुरी में समझाते थे। आम जनता में प्रचलित तुलसी बाबा का अमर ग्रंथ 'रामचरितमानस' हिंदी में न होकर अवधी था, जैसे सूरदास के पद ब्रजभाषा में। परंतु साक्षरता की दृष्टि से इन ग्रंथों के माध्यम से भारतीय मज़दूरों की स्थिति में कुछ सुधार होने लगे। 1872 के बाद उत्तरोत्तर उन्नति होने लगी।

इस घटनाक्रम में एक ऐतिहासिक परिवर्तन हुआ 1898 में, जब भारतीय सिपाही, जो सरकार की ओर से बुलाए जाते थे, उनमें एक भोलानाथ तिवारी थे, जो अपने साथ 'सत्यार्थप्रकाश' लाए थे। स्वाध्याय के लिए लाया गया यह ग्रंथ खड़ी बोली में था और आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानंद द्वारा विरचित था। जब भोलानाथ तिवारी भारत लौटने लगे तो ग्रंथ अपने 'दूधवाले' को दे गए। दूध वाला कम पढ़ा-लिखा था। उसने वह ग्रंथ अपने दूसरे ग्राहक श्री तोता लाला को दे दिया। श्री लालाजी सत्यार्थप्रकाश पढ़कर बाग-बाग हो गए। उन्होंने अपने मित्र श्री दलजीतलाल को कुछ महीने के लिए पुस्तक दी। बाद में पुस्तक दुकानदार श्री गोपाल जगमोहन के यहाँ पहुँची, इसी प्रकार मॉरीशस में खड़ी बोली हिंदी का स्वाध्याय शुरू हुआ।

स्थानीय पुरोहितों को जब इस बात का पता चला कि कोई ग्रंथ है, जो हिंदी में है तो उन्हें भी पढ़ने की इच्छा हुई, पर धार्मिकता के प्रति अलग धारणा रखने वालों पर ग्रंथ का वह असर न पड़ा जो उन तीनों पर हुआ था। इन तीनों पर मॉरीशस की धरती पर आनेवाले इस प्रथम खड़ीबोली ग्रंथ के प्रभाव ने ही मॉरीशस में आर्यसमाज का बीज बोया। परिणाम यह हुआ कि उन्होंने समाज बाँधा, जिसने आगे चलकर आर्यसमाज का रूप धारण किया। यह ग्रंथ अन्य लोगों को पढ़ाया गया और अंत में सत्यार्थप्रकाश पढ़नेवालों का जत्था खड़ा हो गया। मौके का फायदा उठाते हुए उन तीनों ने यानी लाला, दलजीतलाल और गोपाल जगमोहन ने एक समाज की स्थापना की तथा हर रविवार को साप्ताहिक अधिवेशन होने लगा। सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन का प्रयास शुरू किया।

इसी क्रम में रात्रिकालीन पाठशालाएँ खुलने लगीं। जो नौजवान लड़के पढ़ना-लिखना नहीं जानते थे, जिनके पढ़ने-पढ़ाने का कोई प्रावधान नहीं था, जिनके लिए आर्यसमाज का पाठ देने वाला कोई था, नहीं था, उनके लिए शुरू-शुरू में स्कूल खोला गया। बिना भेदभाव के सभी लड़कों को पढ़ाने का प्रावधान किया गया।

कन्या पाठशालाएँ बाद में खोली गईं, जब साधारण फूस के एक-दो मंदिर बनने लगे। शुरू-शुरू में उन मंदिरों को 'बैठका' बोला जाता था। कोई एक बित्ता जमीन अपने प्रांगण में या गाँव के करीब अपने खेत में दे देता था, उसी पर लकड़ी और गन्ने के पत्तों का छाजन डाला जाता था। कभी-कभी एक ही छोटा कमरा होता था, फर्श कच्चा होता था। गाय के गोबर से लिपा-पुता होता। एक दरवाजा होता था, खिड़की नहीं होती थी। गाँवों में बिजली-बत्ती नहीं आई थी तो टिन के चिराग में 'केरोसिन' डालकर जलाया जाता था। बैठने के लिए 'वाक्का' के पत्ते की चटाई होती थी। कन्या पाठशाला में केवल हिंदी की पढ़ाई नहीं होती, बल्कि लड़कियों के जीवन में काम में आनेवाली कला, जैसे—सिलाई, कढ़ाई आदि के शिक्षण का भी प्रावधान था।

जब डॉ. चिरंजीव भारद्वाज सपरिवार मॉरीशस आए तो न केवल सामाजिक कार्य करने लगे, बल्कि उनके नेतृत्व में हिंदी का प्रचार भी ज़ोर-शोर से होने लगा। उनकी धर्मपत्नी पति के साथ लड़कियों एवं महिलाओं को हिंदी पढ़ाने-लिखाने और मंच पर खड़ी होकर भाषण देने की कला भी सिखाने लगीं। उनसे पहले यानी सुमंगली देवी से पहले श्री गयासिंह की धर्मपत्नी भी लड़कियों की पढ़ाई की ओर ध्यान देती थीं।

मॉरीशस में आर्यसमाज और हिंदी के उन्नयन में ऐतिहासिक भूमिका रही मणिलाल डॉक्टर की। 1901 में करमचंद गांधी पानी के जहाज द्वारा दक्षिण अफ्रीका के डरबन से निकलकर मॉरीशस से होते हुए बंबई जा रहे थे तो उनका जहाज कुछ दिनों के लिए मॉरीशस में रुका था। बत्तीस वर्षीय तरुण बैरिस्टर गांधी को मॉरीशस की स्थिति से परिचित होने का मौका मिला, जिसके परिणामस्वरूप छह वर्ष बाद यानी 1907 में मॉरीशस की भूमि पर मणिलाल डॉक्टर का पदार्पण हुआ। हालाँकि वे गुजराती थे, पर मॉरीशस के भारतीय मज़दूर संख्या में 'हिंदी-भाषी' अधिक थे तो उन्होंने मज़दूरों को हिंदी में संबोधन करना उपयुक्त समझा। शायद पहली बार मॉरीशस में मज़दूरों की समस्याओं पर गंभीरतापूर्वक हिंदी में चर्चा हुई होगी।

आगे चलकर उन्होंने 'हिंदुस्तानी' नाम का पत्र निकाला, जो पहले-पहल अंग्रेज़ी और गुजराती में निकलता था, पर बाद में गुजराती ने अपना स्थान दिया हिंदी को, जिसका अर्थ यह निकाला जा सकता है कि हिंदी पढ़नेवालों की संख्या में वृद्धि हो गई थी।

यह सब आर्यसमाज के हिंदी प्रचार का परिणाम था। 'हिंदुस्तानी' पत्र के निकलने के कुछ वर्ष बाद ही 1911 में जब पोर्ट लुईस में आर्यसमाज की स्थापना हुई तो सभासदों ने मिलकर सामाजिक कार्य को आगे बढ़ाने हेतु 'आर्य पत्रिका' निकालना निश्चय किया, पर प्रकाशन के लिए साधनों का अभाव था। मणिलाल डॉक्टर ने उन सभासदों की श्रद्धा व लगन देखकर लागत व्यय पर अपने प्रेस द्वारा 'आर्य पत्रिका' छापने की जिम्मेदारी ली। छपना आरंभ हुआ और आर्यसमाज ने अपने शिशुकाल से पत्रकारिता में जो पदार्पण किया सो आज तक निरंतर चल रहा है। इस लेख का उद्देश्य मॉरीशस में पत्रकरिता के इतिहास को उजागर करना नहीं है फिर भी इस रोचक इतिहास पर एक सरसरी नजर डालना अच्छा रहेगा।

आर्यसमाज द्वारा प्रकाशित 'आर्योदय' तक पहुँचने में एक लंबी यात्रा तय करनी पड़ी। आरंभ में कुछ समय तक तो आर्य पत्रिका चली, फिर बंद हो गई। 1924 से आर्य प्रतिनिधि सभा ने मॉरीशस आर्य पत्रिका का पुनः प्रकाशन आरंभ किया। फिर 1925 के आसपास साप्ताहिक पत्र 'जागृति' का प्रकाशन आरंभ हुआ। फिर एक दिन ऐसा आया कि आर्य समाज का विभाजन हो गया और दो अलग अलग सभाओं ने अपना-अपना पत्र हिंदी में निकालना आरंभ किया। एक के संपादक रहे पंडित काशीनाथ किस्तो और दूसरे के पंडित बेणीमाधो सतीराम। 1940 तक दोनों पत्रिकाएँ निकलती रहीं, हिंदी का प्रचार होता रहा। इनके माध्यम से देश में हिंदी के कितने ही लेखक, कवि आदि पनपते रहे। दोनों पत्रों का उद्देश्य एक था, रास्ते दो थे।

1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध आरंभ होता है। कागज की कमी के कारण देश में अग्रेजी-फ्रेंच के पत्रों 'आडवान्स', 'ले सेरनेये' और 'ले मोरिशयेन' के समान आर्य समाज की दोनों पत्रिकाएँ संयुक्त रूप से निकलने लगीं। उद्देश्य था—हिंदी का प्रचार-प्रसार करना, देश-विदेश के समाचार प्रकाशित करना और सामाजिक रूढ़ियों को दूर करना, जिनसे सही प्रगति में बाधा पड़ती थी।

सन् 1950 के बाद आर्य परोपकारिणी और आर्य प्रतिनिधि सभा दोनों का विलय हो गया और अलग-अलग प्रकाशित होने वाली दोनों पत्रिकाएँ 'आर्योदय' नाम से एक हुईं। आर्योदय जो आज तक अर्थात् पिछले 60 वर्षों से लगातार प्रकाशित हो रहा है।

आर्यसमाज और पत्रकारिता के इस संक्षिप्त इतिहास के उपरांत पुनः हिंदी भाषा और शिक्षण की चर्चा पर आते हैं।

'अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए' यह आर्यसमाज के दस नियमों में से एक है। इसके आदेशानुसार ही आर्य समाज ने विद्या का प्रचार करना आरंभ किया। इस क्रम में शायद काशीनाथ किस्तो ऐसे पहले 'भारतीय मज़दूर पुत्र' थे, जो धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने भारत गए थे। स्वदेश लौटते ही उन्होंने वाक्का शहर में 1916 में जमीन खरीदी और 1918 में भवन बनाकर शिक्षण आरंभ कर दिया। स्कूल में जो विषय पढ़ाए जाते थे, सभी के साथ हिंदी भी सम्मिलित की गई और दिन भर की पढ़ाई होती थी। अध्यापकों में पंडित काशीनाथ और उनकी धर्मपत्नी थे। वाक्का के सिवा मॉरीशस के और गाँवों में स्कूल खोले गए, जिनमें हिंदी भी पढ़ाई जाती थी। इन्हीं पाठशालाओं के आधार पर आर्य समाजी मोती मास्टर ने तत्कालीन अंग्रेज़ लाट साहेब को पत्र लिखकर माँग की थी कि सरकारी स्कूलों में हिंदी की पढ़ाई शुरू की जाए। यही नहीं, सरकार ने जब सरकारी पाठशालाओं में हिंदी पढ़ाने के लिए छात्र-अध्यापकों (ट्रेनी) की माँग की थी तो अधिकतर आर्यसमाजियों ने ही अरजी भेजी थी और चुने भी गए थे तथा 1950 में जब सरकारी पाठशालाओं में पूर्णकालिक रूप से हिंदी शिक्षण की व्यवस्था हुई तब भी शिक्षकों में आर्यसमाज के माध्यम से हिंदी सीखने वाले प्रथम पंक्ति में थे।

'अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए' यह आर्यसमाज के दस नियमों में से एक है। इसके आदेशानुसार ही आर्य समाज ने विद्या का प्रचार करना आरंभ किया। इस क्रम में शायद काशीनाथ किस्तो ऐसे पहले 'भारतीय मज़दूर पुत्र' थे, जो धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने भारत गए थे। स्वदेश लौटते ही उन्होंने वाक्का शहर में 1916 में जमीन खरीदी और 1918 में भवन बनाकर शिक्षण आरंभ कर दिया। स्कूल में जो विषय पढ़ाए जाते थे, सभी के साथ हिंदी भी सम्मिलित की गई और दिन भर की पढ़ाई होती थी। अध्यापकों में पंडित काशीनाथ और उनकी धर्मपत्नी थे। वाक्का के सिवा मॉरीशस के और गाँवों में स्कूल खोले गए, जिनमें हिंदी भी पढ़ाई जाती थी।

1960 के वर्षों में नूवेल दे कूर्वेत ग्राम में गुरुकुल खुला तो उसमें भी हिंदी अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाती थी। पर कई कारणों वश गुरुकुल को बंद करना पड़ा। 60 के वर्षों में पोर्ट लुईस आर्य भवन के अहाते में दयानंद आंग्लो वैदिक पाठशाला खुली तो वहाँ भी हिंदी को भुलाया नहीं गया। आज भी वहाँ हिंदी पढ़ाई जाती है और साथ-साथ हिंदू दर्शन (हिंदुइज्म) की पढ़ाई भी होती है।

अपने सिद्धांतों व योजनाओं में आर्य सभा शिक्षा को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान देती है। इतिहास साक्षी है कि प्रतिनिधि सभा की ओर से ही लड़कियों को पढ़ाने का प्रावधान किया गया था। युवक-युवती संघ के अलावा महिला समाज की स्थापना करीब आधी शताब्दी पहले की गई थी। आज भी क्या युवक संघ और क्या महिला समाज में सारी कार्यवाहियाँ हिंदी भाषा में होती हैं, उसी प्रकार जैसे आर्य सभा की गतिविधियों में होती हैं।

जब किसी भी देश में युद्ध छिड़ता है तब जीवन-व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाती है। 1936 में जब विश्वयुद्ध शुरू हुआ तो भारत से पानी के यान के आने-जाने में अनियमितता होने लगी। परिणामस्वरूप पठन-पाठन की सामग्री का अभाव महसूस होने लगा। बच्चों की पाठ्य-पुस्तकें मिलना मुहाल हो गया। तब पाठ्य-पुस्तक लिखने जैसा कठिन कार्य पं. काशीनाथ ने अपने ऊपर लिया और कक्षा एक से कक्षा चार की पुस्तकें लिखीं, जिनको आर्य सभा की विद्या समिति द्वारा चलाई जा रही कक्षाओं में लागू किया गया।

हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार को उच्च स्तर प्रदान करने हेतु माध्यमिक स्तर की पढ़ाई की जरूरत थी। इसके लिए भारत के एक दूरदर्शी समाजसेवी के सहयोग से भारत के पंजाब प्रांत से शास्त्री की परीक्षा की व्यवस्था करनी पड़ी। प्रथम बार शास्त्री की परीक्षा ली गई सें पियेर में, फिर बाद में पूरे देश में उक्त परीक्षा की तैयारी होने लगी। न केवल आर्यसमाजी शास्त्री की परीक्षा में भाग लेने के लिए पढ़ने लगे, बल्कि गैर-समाजी भी पढ़ने और परीक्षा की तैयारी करने लगे।

महाशय सुखू रामप्रसाद, जो डॉ. रुद्रसेन निऊरजी के पिताश्री थे और आर्य प्रतिनिधि सभा के कर्मठ सदस्य भी, वे भारत के अजमेर शहर पहुँचे और व्यक्तिगत रूप से वहाँ के सेवकों से विचार-विनिमय करने के पश्चात् विद्या-विनोद से लेकर विद्या वाचस्पति तक की परीक्षाएँ यहाँ आयोजित करने की व्यवस्था की। सभी हिंदू बच्चे भारी संख्या में पढ़ने लगे। हालाँकि उन परीक्षाओं की विषय-वस्तु धार्मिक थी, पर भाषा हिंदी थी और व्याकरण सम्मत थी। देश में हिंदी के प्रचार में संलग्न हिंदी प्रचारिणी सभा को आर्य सभा के रूप में एक योग्य सहयोगी मिल गया। आर्य सभा के अनुयायी भी प्रचारिणी सभा द्वारा आयोजित परिचय और प्रथमा की परीक्षाओं में निरंतर भाग लेते रहे। मॉरीशस में हिंदी प्रचार के क्षेत्र में रामचरितमानस को खड़ी बोली (हिंदी) के अद्वितीय ग्रंथ 'सत्यार्थप्रकाश' का सहारा मिला था।

आर्यसमाज आंदोलन ने देश में हिंदी का प्रचार व उसके उन्नयन के लिए कार्य केवल शिक्षण अथवा साहित्य के धारतल पर नहीं किया। यह संस्था राजनीति में भी हिंदी के वर्चस्व के लिए प्रतिबद्ध रही है।

स्वामी दयानंद द्वारा रचित कालजयी ग्रंथ 'सत्यार्थप्रकाश' जो धार्मिक विश्वकोश समझा जाता है, उसका छठा समुल्लास राजधर्म विषय लेकर चलता है। राजधर्म का आशय है—राजनीति। इसीलिए शायद वैदिक धर्मावलंबी पोलिटिक्स से दूर नहीं भागते। जब द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद के वर्षों में मज़दूर दल और उनके साथियों की ओर से वयस्क मताधिकार की ज़ोरदार माँग कर रहे थे तो ब्रिटिश सरकार ने मज़दूर दल की माँग पर गौर करने के लिए सलाहकार कमेटी के गठन की माँग की और अंत में कम-से-कम जो व्यक्ति इस देश की किसी भी भाषा में अपने हस्ताक्षर देने की योग्यता रखता हो, उसको मतदाता बनाया जाएगा। इस माँग को अंजाम देने के लिए आर्यसमाज ने जी-जान से आंदोलन चलाया, जब 1948 में आम चुनाव हुआ तो 11000 मतदाता से 77000 मत दाता हो गए। चुनाव का परिणाम जब घोषित हुआ तो 19 निर्वाचित सांसदों में 18 मज़दूर दल और सुकदेव विष्णुदयाल के लोग थे। इस विषय के पीछे हिंदी का बड़ा हाथ था और आर्यसमाज का सहयोग अद्वितीय और ऐतिहासिक था, इससे यह बात निकली कि आर्यसमाज द्वारा प्रचारित-प्रसारित हिंदी भाषा रंग लाई। यह सिद्ध हो गया कि सत्यार्थप्रकाश की भाषा राजनीतिक समस्याओं को भी हल करने की क्षमता रखती है।

सन् 1935 से पूर्व जो भी हिंदी पाठशालाएँ चलाई जाती थीं, उनमें सालाना/वार्षिक उत्सव होता था। यह उत्सवों उन लोगों के लिए महत्त्वपूर्ण मंच होता था, जो राजनीतिक क्षेत्र में पदार्पण अथवा स्थायित्व की इच्छा रखते थे। ऐसे मंच पर वे हिंदी में ही अपने वक्तव्य देते थे। हिंदी भाषियों को राजनीतिक क्षेत्र में प्रोत्साहन देने की इस प्रवृत्ति के चलते आगे चलकर कितने ही हिंदीप्रेमी विधान सभा प्रतिनिधि बने और उनके कंधों पर शासन का भार पड़ा; जिनमें प्रमुख उदाहरण हैं स्वयं डॉ. शिवसागर रामगुलाम, सर सत्काम बुलेल, सर रवींद्र घरभरण राजेस्वर जयपाल आदि। जयनारायण रोय, पंडित रामनारायण, पं. बद्री, दयानंद बसंत राय आदि भी आर्यसमाज के मंच के थे और व्याकरण सम्मत भाषण देते थे। आज भी जनता के कितने ही प्रतिनिधि हैं, जो आर्यसमाजी हैं और बिना हिचक के हिंदी बोलते हैं, जैसे मुकेश्वर चूनी, डॉ. बसंत बनवारी आदि।

आर्यसमाज ने अपने अनुयायियों को कभी भी राजनीति में भाग लेने से मना नहीं किया। उलटे हमारे लोगों ने राजनीतिक मंच से हिंदी के प्रचार-प्रसार में हाथ बँटाया। सर सत्काम बुलेल, सर रवींद्र घरभरण, डॉ. रुद्रसेन निऊर, राजनारायण गति, मुकेश्वर चुनि

आदि सब समाजियों ने राष्ट्रीय सभा के बाहर और भीतर माँग की कि हिंदी को उचित स्थान मिलना चाहिए। आज सी.पी.ई. की परीक्षा में हिंदी में अधिक अंक पाने वाले परीक्षार्थियों को अच्छे कॉलेज में दाखिला मिल पाता है। आज कितने विद्यार्थी ऐसे हैं, जिनको हिंदी में अव्वल आने पर हिंदी में प्राप्त अंकों को गिनती में लाया जाता है और फ्रेंच को नजरअंदाज कर दिया जाता है। इसका श्रेय भी आर्यसमाज के अनुयायियों को जाता है।

हम यहाँ हिंदी भाषा को आगे बढ़ाने के लिए पंडित बासदेव विष्णुदयाल के सहयोग का उल्लेख इसलिए करना चाहते हैं, क्योंकि वे पक्के आर्यसमाजी थे। लेखन और वाचन दोनों दिशाओं में बहुत कारगर ढंग से कार्य किया। भारत की कई नामी पत्र-पत्रिकाओं में उनके लेख प्रकाश में आए तथा उन्होंने पचासों छोटी-बड़ी पुस्तकें लिखीं।

पंडित आत्माराम विश्वनाथ मणिलाल डॉक्टर के बुलावे पर उनके द्वारा निकाले जा रहे 'हिंदुस्तानी' पत्र का संपादन करने मॉरीशस आए थे। वे मराठी भाषी थे और आरंभ में आर्यसमाजी नहीं थे, लेकिन बाद में स्वामी दयानंद के कार्यों को बढ़ाया और दो मशहूर ग्रंथ लिखे—एक 'मॉरीशस का इतिहास' 1923 में और दूसरा 1936 में 'हिंदू मॉरीशस'। यद्यपि वे भारत से आए थे, पर उनके द्वारा विरचित मॉरीशस के इतिहास पर आधारित दोनों ग्रंथ पढ़ने योग्य हैं।

प्रह्लाद रामशरण का योगदान हिंदी के क्षेत्र में लाजवाब है। यद्यपि उन्होंने अंग्रेज़ी में किताबें लिखीं, पर मातृभाषा हिंदी को नहीं भूले। उनके द्वारा त्रिभाषी पत्रिका 'इंद्रधनुष' हिंदी के क्षेत्र में अपना सानी नहीं रखती।

इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ के योगदान का विस्मरण नहीं किया जा सकता। वे गद्य-पद्य दोनों में कलम चलाते हैं। कविता, कहानी, खोजपूर्ण ऐतिहासिक लेखों का संकलन आदि उनकी रचनाएँ न केवल मॉरीशस में चाव से पढ़ी जाती हैं बल्कि मॉरीशस के बाहर अन्य देशों में भी सम्मानित हैं।

डॉ. उदयनारायण गंगू ने भी हिंदी के भंडार को भरने में कोई कसर नहीं छोड़ी। वे आज तक कई पुस्तकें लिख चुके हैं। वे आज आर्य सभा मॉरीशस और महर्षि दयानंद संस्थान के मिले-जुले सहयोग से स्थापित दयानंद डिग्री कॉलेज चला रहे हैं, जिसमें हिंदी और दर्शनशास्त्र विषयों में एम.ए. तक की पढ़ाई होती है। कॉलेज के दस से अधिक एम.ए. पास विद्यार्थी खोज-कार्य करने के लिए हरी झंडी की प्रतीक्षा में हैं।

सत्यदेव टेंगर यद्यपि प्राथमिक सरकारी अध्यापक यूनियन चलाते हैं, तथापि हिंदी के हक की लड़ाई को लेकर व उसको आगे बढ़ाने के लिए लंदन की प्रीवी काउंसिल तक गए और सराहनीय सफलता प्राप्त की। आज यदि सी.पी.ई. (सर्टिफिकेट ऑफ प्राइमरी एजूकेशन) में अंग्रेज़ी और फ्रेंच की तरह हिंदी को भी स्थान मिल पाया है तो इसमें टेंगरजी का ऐतिहासिक योगदान है।

इनके अतिरिक्त मुनींद्र वर्मा हिंदी में कम लिखते हैं पर ओजपूर्ण भाषण देते हैं तो उनकी हिंदी सुनते ही बनती है। उनका भी बहुत बड़ा सहयोग प्राप्त हुआ। केशवदत्त चिंतामणि खानदानी आर्यसमाजी हैं। प्राइमेरी स्कूल के मुख्य अध्यापक होते हुए भी व्याकरण सम्मत शुद्ध हिंदी बोलते और लिखते हैं।

आज मॉरीशस में हिंदी के नाम पर उसके प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से जिस भी संगठन की स्थापना होती है, उसमें आर्य समाजियों की संख्या यदि अधिक नहीं होती तो महत्त्वपूर्ण अवश्य होती है। इन संस्थाओं में हिंदी लेखक संघ व इंद्रधनुष सांस्कृतिक परिषद् भी शामिल हैं।

आर्य सभा मॉरीशस के अंतर्गत पुरोहित मंडल भी है। उक्त मंडल में सौ से अधिक पुरोहित-पुरोहिताएँ हैं। मंडल की ओर से जो भी कार्यवाही होती है, हिंदी में होती है। हमारे चार सौ के लगभग शाखा समाजों में साप्ताहिक, पाक्षिक व मासिक अधिवेशन होते हैं, जिनमें हिंदी में वेद, उपनिषद् और अन्य धार्मिक शास्त्रों पर लघु व्याख्यान होते हैं। कभी-कभी अन्य सामाजिक समस्याओं पर भाषण दिया जाता है और कभी उचित एवं कारगर समाधान दिए जाते हैं। सत्संग के अंत में भजन-कीर्तन भी किए जाते हैं।

संगीत समिति की ओर से संगीत प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाता है, जिनमें गीत-भजन गाए जाते हैं। सभी कार्य हिंदी में ही होते हैं।

आर्यसमाज की शुरुआत के दिनों में अंग्रेजी-फ्रेंच पढ़े-लिखे मास्टर हुए, जैसे छत्तर मास्टर, मोती मास्टर, भाला मास्टर आदि, उन्होंने भी सभा के कार्यों में पूरी तरह प्रयास करते हुए अपने संबोधन हिंदी में ही किए। एक आश्चर्यजनक बात के साथ इस लेख का उपसंहार करेंगे। डॉ. शिवगोबिन जगरू 1919 में डॉक्टरी सीखने के लिए फ्रांस गए और मों पेलिए विश्वविद्यालय में दाखिल हुए। बाद के अंतिम दो वर्ष पेरिस यूनिवर्सिटी में शिक्षा समाप्त करके जब वे स्वदेश लौटे तो उन्होंने हिंदी सीखकर स्वास्थ्य संबंधी पुस्तिका लिखी, जबकि वे उसे फ्रांसीसी जुबान में बहुत अच्छी तरह और आसानी से लिख सकते। यह है आर्यसमाज अनुयायियों के हिंदी प्रेम की अद्वितीय मिसाल।

—ओ.एस.के, सी.एस.के., आर्य रत्न

❑

सूचना प्रौद्योगिकी और देवनागरी लिपि

–डॉ. परमानंद पांचाल

- नागरी लिपि परिषद् नई दिल्ली के महामंत्री तथा नागरी संगम पत्रिका के प्रधान संपादक हैं।
- डॉ. पांचाल दक्खिनी हिंदी साहित्य के ख्याति प्राप्त विद्वान, भाषाविद्, समीक्षक एवं लेखक हैं। अब तक हिंदी में इनके 20 ग्रंथ और प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में लगभग 400 लेख प्रकाशित हैं।
- **प्रमुख प्रकाशित पुस्तकें :** हिंदी के मुस्लिम साहित्यकार, दक्खिनी हिंदी : विकास और इतिहास, कोहिनूर (निबंध संग्रह), दक्खिनी हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली, विदेशी यात्रियों की नजर में भारत, भारत के सुंदर द्वीप (पुरस्कृत) आदि। इनके अतिरिक्त अनेक उर्दू पुस्तकों का हिंदी अनुवाद।
- **पुरस्कार एवं सम्मान :** भारत सरकार द्वारा राहुल सांकृत्यायन पर्यटन पुरस्कार, दिल्ली हिंदी अकादेमी साहित्य पुरस्कार, जैनेंद्र कुमार सम्मान, हिंदी रत्न सम्मान, हिंदी साहित्य सम्मलेन प्रयाग द्वारा विद्यावाचस्पति की मानद उपाधि आदि।
- **संप्रति :** अमीर खुसरो अकादेमी तथा मातृभाषा विकास परिषद के अध्यक्ष और नागरी लिपि परिषद् के महामंत्री हैं।

विश्व इतिहास में 'औद्योगिक' क्रांति के बाद 'सूचना प्रौद्योगिकी' एक सबसे बड़ी क्रांति के रूप में सामने आई है, जिसने देखते-ही-देखते हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में तेज़ी से अपनी पैठ बना ली है। कल का 'औद्योगिकी समाज' आज सूचना समाज में तब्दील हो गया है। कहना न होगा कि कंप्यूटर के आगमन से इसकी गति को चार चाँद लगे, फिर इंटरनेट ने तो वह चमत्कार कर दिखाया जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। सूचनाओं के एकत्रकरण, संग्रहण और संप्रेषण की प्रविधि एक नई प्रौद्योगिकी के रूप में विश्व के सामने आई जो 'सूचना प्रौद्योगिकी' के रूप में विकसित हुई।

सूचना प्रौद्योगिकी के विकास ने आज विश्व मानव को एक दूसरे के इतना निकट ला दिया है, जिससे उसकी भौगोलिक दूरियाँ ही समाप्त नहीं हुईं, उसकी मानसिकता में भी बड़ा परिवर्तन आया है और वह अब अधिक ज्ञानवान, उदार, सहयोगी और साधन संपन्न बन गया है। इस प्रौद्योगिकी से संचार, व्यापार, उत्पादन, सेवाएँ, संस्कृति, भाषा, शिक्षा, मनोरंजन, अनुसंधान, राष्ट्रीय रक्षा, अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा ही क्या, मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन आया है। विश्व में स्पष्ट विभिन्न राष्ट्रों, समुदायों और व्यक्तियों की समुन्नति में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान आज देखने को मिल रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी का प्रयोग पहले सैन्य-क्षेत्रों में हुआ, कालांतर में सिविल, व्यापारिक, वाणिज्य और शैक्षिक क्षेत्रों में भी इसका प्रवेश होने लगा। विश्व में कंप्यूटरीकरण के कारण सॉफ्टवेयर का विकास हुआ। इंटरनेट ने विश्वभर के कंप्यूटरों को एक-दूसरे के साथ जोड़कर एक चमत्कारी संजाल का निर्माण किया, जिससे विश्वभर के लोग हज़ारों मील की दूरी पर भी एक दूसरे से बतियाते, लिखित सामग्री का आदान-प्रदान करते नजर आने लगे। पलक झपकते ही सेकंड में समाचारों का संप्रेषण एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप तक किया जाना संभव हो गया और विश्व में दूरियों का कोई अर्थ नहीं रहा।

सूचना प्रौद्योगिकी वास्तव में कंप्यूटर, संचार और इलेक्ट्रोनिकी का एक समन्वित रूप है। इंटरनेट इसका मूल उपकरण है। सूचना प्रौद्योगिकी का क्षेत्र मूलतः समाज या समष्टि ही है। यह व्यक्ति को समाज से जोड़ती है। इस प्रकार इसके मूल में जन कल्याण का भाव निहित है, किंतु इसके दुरुपयोग की संभावनाओं से भी इनकार नहीं किया जा सकता है। जैसा कि हाल ही में भारत में देखने को मिला।

सूचना प्रौद्योगिकी मूलतः भाषा आधारित होती है। भाषा के बिना यह आगे नहीं बढ़ सकती है। इस प्रकार भाषा और सूचना प्रौद्योगिकी का घनिष्ठ संबंध है। किसी ज्ञान या जानकारी को एक व्यक्ति से दूसरे तक पहुँचाने का कार्य भाषा के माध्यम से ही संभव है। विज्ञान तो भाषा के बिना आगे बढ़ ही नहीं सकता। भारत के उच्चतम न्यायालय के

जस्टिस न्यायमूर्ति मार्कंडे काटजू ने 2009 में बंगलौर में कहा था—"Hence in Science a written language is absolutely essential in which scientific ideas can be expressed with great Precision and logic." अर्थात विज्ञान में लिखित भाषा नितांत आवश्यक है जिसके द्वारा वैज्ञानिक विचारों का बड़े सूक्ष्म और तर्कसंगत रूप में व्यक्त किया जा सकता है।

जब हम भाषा पर विचार करते हैं तो देखते हैं भाषा का आधार उसकी लिपि होती है, क्योंकि भाषा का अंकित रूप ही लिपि है। भाषा जहाँ मौखिक एवं श्रव्य है, वहीं लिपि अंकित एवं दृश्य है, कंप्यूटर और इंटरनेट भी इसी का सहारा लेते हैं। लिपि जितनी सरल, व्यवस्थित और विज्ञान-सम्मत होगी, भाषा भी उतनी ही सक्षम और प्रभावपूर्ण होगी। कहना न होगा कि इस दृष्टि से देवनागरी लिपि विश्व की सर्वश्रेष्ठ और सर्वोपयुक्त लिपि है। आज के संदर्भ में तो इसकी क्षमता का लोहा विश्व के शीर्षस्थ वैज्ञानिक भी मानते हैं। हमें गर्व है कि यही देवनागरी लिपि हिंदी की लिपि है। भारत के संविधान में जहाँ हिंदी को राजभाषा का स्थान दिया गया है वहीं देवनागरी को उसकी आधिकारिक लिपि के रूप में स्वीकार किया गया है।

यहाँ हम देवनागरी लिपि की प्रमुख विशेषताओं पर विचार करेंगे।

यह लिपि अपने सर्वाधिक गुणों के कारण केवल हिंदी की ही लिपि नहीं है, बल्कि भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित 22 भाषाओं में से संस्कृत, मराठी, नेपाली, बोडो, डोगरी तथा मैथिली भाषाओं की भी लिपि है। कोंकणी तथा संथाली भाषाएँ भी इसे स्वीकार कर रही हैं। उर्दू का अधिकांश साहित्य भी आज फारसी लिपि की अपेक्षा नागरी लिपि में ही प्रकाशित हो रहा है। यह इसकी बढ़ती लोकप्रियता का प्रमाण नहीं तो क्या है?

हमारी महान संस्कृति का प्राचीन वाङ्मय चाहे वह वेद, पुराण, गीता, उपनिषद् हो या रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्य हों, आज नागरी लिपि में उपलब्ध हैं। बौद्ध और जैन साहित्य भी नागरी लिपि में ही मिलते हैं। इस प्रकार भाषा और संस्कृति की दृष्टि से नागरी लिपि का विशेष महत्त्व है। आज सूचना और प्रौद्योगिकी के युग में तो नागरी लिपि ने अपनी श्रेष्ठता और वैज्ञानिकता विश्व के सामने सिद्धकर दी है तथा इस लिपि को ही कंप्यूटर के लिए सबसे उपयुक्त माना जाता है।

नासा के प्रसिद्ध वैज्ञानिक रिक ब्रिग्स ने तो 1985 के अपने लेख में यह घोषित ही कर दिया है कि संस्कृत भाषा और देवनागरी लिपि ही कंप्यूटरी आज्ञवानी की दृष्टि से आदर्श लिपि है। इस प्रकार नागरी लिपि के रूप में भारत विश्व की प्रगति में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकता है। 'शून्य' (0) का आविष्कार भी भारत में ही हुआ था, जो विश्व को भारत की सबसे बड़ी देन है। आज विश्व में अंकों का जो अंतर्राष्ट्रीय रूप प्रचलित हैं, जिन्हें रोमन अंक कहा जाता है वह भी ब्राह्मी लिपि की उपज और भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप ही है। अल्बर्ट आइंस्टीन जैसे वैज्ञानिक ने कहा भी था—हम भारतीयों के बहुत ऋणि हैं, जिन्होंने हमें गिनना सिखाया।

नासा के प्रसिद्ध वैज्ञानिक रिक ब्रिग्स ने तो 1985 के अपने लेख में यह घोषित ही कर दिया है कि संस्कृत भाषा और देवनागरी लिपि ही कंप्यूटरी आज्ञवानी की दृष्टि से आदर्श लिपि है। इस प्रकार नागरी लिपि के रूप में भारत विश्व की प्रगति में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकता है। 'शून्य' (0) का आविष्कार भी भारत में ही हुआ था, जो विश्व को भारत की सबसे बड़ी देन है। आज विश्व में अंकों का जो अंतर्राष्ट्रीय रूप प्रचलित हैं, जिन्हें रोमन अंक कहा जाता है वह भी ब्राह्मी लिपि की उपज और भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप ही है।

देवनागरी लिपि, जिसे नागरी लिपि भी कहा जाता है, भारत की प्राचीन लिपि ब्राह्मी से विकसित हुई है। यह लिपि इतनी सक्षम एवं पूर्ण है कि इसमें जो लिखा जाता है, वही पढ़ा जाता है और जो बोला जाता है, वही लिखा जाता है। विश्व की ऐसी कौन सी भाषा या बोली है जो नागरी लिपि में नहीं लिखी जा सकती? यह क्षमता अन्य किसी लिपि में शायद ही हो। इस संबंध में रामचरितमानस के किष्किंधा कांड का यह प्रसंग नागरी लिपि की महत्ता पर भी चरितार्थ होता है। जामवंत हनुमानजी को उनके बल का अहसास कराते हुए कहते हैं—

'कवन सो काज कठिन जग माहीं।
'जो नहिं होइ तात तुम्ह पाही।'

ऐसी ही क्षमता नागरी लिपि में भी है। सभी भाषाओं को नागरी में सरलता से लिखा और पढ़ा जा सकता है।

देवनागरी लिपि की विशेषताएँ

आज विश्व में चार बड़े लिपि समूह हैं। अरबी, चीनी, रोमन और ब्राह्मी समूह। नागरी लिपि ब्राह्मी लिपि परिवार की लिपि है। भारत की प्रायः सभी प्रमुख भाषाओं की लिपियाँ भी ब्राह्मी से ही विकसित हुई हैं। यहाँ हम नागरी लिपि के क्रमिक विकास और इतिहास पर विचार न करके इसकी विशेषताओं पर ही ध्यान देंगे।

वैसे तो संसार की कोई भी लिपि पूर्ण वैज्ञानिक अथवा आदर्श लिपि होने का दावा नहीं कर सकती। फिर भी, देवनागरी लिपि में अपेक्षाकृत वे गुण हैं, जो संसार की अन्य किसी लिपि में दुर्लभ हैं। अनेक विदेशी विद्वानों ने भी नागरी लिपि को सर्वश्रेष्ठ लिपि बताया है। व्यूलर, हार्नले, हुक्श, मैक्डॉनल, थामस तथा आइजेक टेलर आदि ने नागरी लिपि की वैज्ञानिकता की प्रशंसा की है। कहा जाता है कि रोमन लिपि की अवैज्ञानिकता से खिन्न होकर जार्ज बर्नार्ड शॉ जैसे अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध विद्वान को भी अंग्रेज़ी की लिपि में सुधार की इतनी आवश्यकता महसूस हुई थी कि उन्होंने इसके लिए एक वसीयत भी तैयार की थी। स्वर-विज्ञान (फोनोग्राफी) के अनुसंधानकर्ता आइजेक पिटमैन लिखते हैं कि ''संसार में यदि कोई पूर्ण अक्षर है, तो देवनागरी का है।'' प्रो. मेनियर विलियम्स ने कहा था—''देवनागरी अक्षरों से बढ़कर पूर्ण और उत्तम अक्षर दूसरे नहीं हैं।'' जॉन क्राइस्ट तो यहाँ तक कहते हैं कि ''मानव मस्तिष्क से निकली हुई वर्णमाला नागरी सबसे पूर्ण वर्णमाला है।'' सर विलियम जोंस, जो रोमन लिपि के पक्षधर थे, नागरी को रोमन की अपेक्षा श्रेष्ठ बताते हुए कहते हैं—''हमारी भाषा अंग्रेज़ी की वर्णमाला तथा वर्तनी अवैज्ञानिक तथा किसी रूप से हास्यास्पद भी है।''

डॉ. आर्थर मैक्डॉनल ने संस्कृत साहित्य के इतिहास में लिखा है कि ''400 ई. पूर्व में पाणिनी के समय भारत ने लिपि को वैज्ञानिकता से समृद्ध कर विकास के उच्चतम सोपान पर प्रतिष्ठित किया, जबकि हम यूरोपीयन लोग इस वैज्ञानिक युग में 2500 वर्ष बाद भी उस वर्णमाला को गले लगाए हुए हैं, जिसे ग्रीकों ने पुराने सेमेटिक लोगों से अपनाया था, जो हमारी भाषाओं के समस्त ध्वनि-समुच्चय का प्रकाशन करने में असमर्थ है तथा 3 हज़ार साल पुराने अवैज्ञानिक स्वर-व्यंजन मिश्रण का बोझ अब भी हम पीठ पर लादे हुए हैं।''

पिछले दिनों 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में एक समाचार प्रकाशित हुआ था कि ब्रिटिश लाइब्रेरी का रिसर्च इंस्टीट्यूशन लोगों से कुछ अंग्रेज़ी शब्दों के सही उच्चारण आमंत्रित कर रहा है, क्योंकि रोमन लिपि के कारण शब्दों के उच्चारण में परिवर्तन हो रहा है। भिन्न-भिन्न लोग एक ही शब्द का उच्चारण अलग-अलग रूप में करते हैं। जैसे- टमाटर के लिए Tomoto और कुछ Tomato कहते हैं। इसी प्रकार Garage को Marriage के वजन पर बोला जाए या Mirage के वजन पर। Eat का भूतकाल Ate हो या ett होगा। किंतु नागरी में उच्चारण की व्यवस्था निर्धारित और निश्चित है।

यहाँ हम इसे वैज्ञानिकता की कसौटी पर कसते हुए इसके विशेष गुणों पर विचार करेंगे। सामान्यत: वैज्ञानिक लिपि में निम्नलिखित विशेषताएँ होनी चाहिए—

एक ध्वनि के लिए एक ही लिपि चिह्न हो।

नागरी लिपि में एक ध्वनि के लिए एक ही लिपि चिह्न है। यह विशेषता विश्व की अन्य लिपियों, जैसे रोमन तथा फारसी आदि में नहीं है।

रोमन में क ध्वनि के लिए कई वर्ण प्रयुक्त होते हैं, जैसे Cat में C, Kite में K, Queen में Q, Christ में Ch, Back में CK और अंशत: X भी क की ध्वनि देता है, जैसे Ox है। इस प्रकार एक ही ध्वनि को पाँच या छह प्रकार से लिखा जा सकता है। रोमन में स ध्वनि के लिए सी [C] का प्रयोग है, [S] का भी है, जैसे Cinema, City, Ceremony, Centuary आदि में C का प्रयोग है और Six, Same, State में S का प्रयोग किया जाता है। Ratio और Mention में tio भी *स* की ध्वनि को व्यक्त करते हैं। अत: रोमन में एक वर्ण को एक निश्चित स्वनिक मूल्य नहीं दिया जा सकता, जबकि देवनागरी लिपि की विशेषता यही है कि यदि क लिखा गया है, तो क ही पढ़ा जाएगा।

उर्दू की लिपि फारसी पर आधारित है। जहाँ *ज* ध्वनि के लिए पाँच वर्ण हैं—ज़े, जुवाद, जोए और जाल। किस शब्द में *ज* ध्वनि के लिए इन पाँचों में से कौन सा वर्ण प्रयुक्त होगा, यह तय कर पाना तब तक संभव नहीं होगा, जब तक कि प्रयोक्ता उस शब्द के परंपरागत रूप से परिचित न हो। यहाँ *अ* ध्वनि के लिए अलिफ और ऐ हैं। अलिफ से आदमी लिखा जाता है और ऐ से औरत। इसमें कोई वैज्ञानिकता नहीं।

एक लिपि चिह्न एक ही ध्वनि को व्यक्त करे

नागरी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें एक लिपि चिह्न एक ही ध्वनि को व्यक्त करता है, दूसरी को नहीं। रोमन में D वर्ण *ड* की ध्वनि को भी व्यक्त करता है और *द* की ध्वनि को भी। इसी प्रकार T भी *ट* और त दोनों ध्वनियों को व्यक्त करता है। G, *ज* और *ग* दोनों ध्वनियों को व्यक्त करता है; U *अ* और *उ* को। जैसे But और Put। ढीधूँ में भी लेखन और उच्चारण में भिन्नता है। पेरिस को लिखा Paris जाता है और पढ़ा पारी जाता है। Restaurant लिखा जाता है रेस्तराँ पढ़ा जाता है। इटालियन में Via को विया कहा जाता है और अंग्रेज़ी में वाया। वहाँ Cinema को *चिणमा* और Time को *तीएम* बोला जाता है। ध्वनि एवं लिपि में सामंजस्य किसी भी भाषा एवं लिपि के लिए महत्त्वपूर्ण ही नहीं, अनिवार्य भी है।

लिपि चिह्न के नाम उनकी ध्वनि के अनुरूप हों

नागरी की एक बड़ी विशेषता यह है कि जो लिखित चिह्न की पहचान है, वही उच्चारण है। अर्थात लेखिम ही ध्वनिम है। क को उसी रूप में पहचाना जाता है और वही उसका उच्चारण है। पतंग

में प की ध्वनि और कलम में क की ध्वनि मूल रूप से वही रहती है। रोमन लिपि में यह वैज्ञानिकता नहीं के बराबर है। जैसे एच H की मूल ध्वनि में (ए+च) की ध्वनि है, किंतु शब्द में प्रयुक्त होने पर यह ह या अ की ध्वनि देता है, जैसे Horse *हॉर्स* में *ह* और Hours *अवर्स* में *अ* शब्द का उच्चारण होता है। इसी प्रकार W, *व* की और Y, *य* की ध्वनि देते हैं। कुछ स्थितियों में तो रोमन वर्ण की द्वितीय ध्वनि का उच्चारण होता है, प्रथम का नहीं जैसे Lamp में L (एल) का प्रयोग *ल* ध्वनि के रूप में होता है। प्रथम ध्वनि *ए* के रूप में नहीं। कुछ वर्ण आपस में मिलकर अलग ही ध्वनि के रूप में उच्चरित होते हैं, जैसे Pontion में tio (श) है और Chart में C+H (च) है। Champagne (शेम्पेन) में भी *स* की ध्वनि देते हैं और Character में Ch *क* की ध्वनि का बोध कराते हैं। इसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है।

वैज्ञानिक लिपि में पर्याप्त लिपि चिह्न होने चाहिए

नागरी लिपि में लिपि चिह्नों की आवश्यक संख्या मौजूद है। आवश्यकतानुसार नए चिह्न भी शामिल कर लिए जाते रहे हैं, जो इसकी विकासशील प्रकृति का गुण है। रोमन में आज तक 26 वर्ण हैं। जबकि ध्वनियाँ 42 से अधिक हैं। चीनी जैसी चित्रात्मक लिपि के लिए तो 50 हज़ार से भी अधिक चित्रों को ध्यान में रखना पड़ता है। रोमन और उर्दू में महाप्राण की ध्वनि के लिए अलग से लिपि चिह्न नहीं है। उर्दू में हे वर्ण के चिह्न को और रोमन में H वर्ण को जोड़कर महाप्राण बनाया जाता है। जैसे G+H मिलकर *घ* ध्वनि देते हैं, किंतु छ ध्वनि के लिए CHH लिखना पड़ता है, जो स्थान अधिक घेरता है। उच्चारण में भी कभी समस्या पैदा कर देता है। हिंदी में इसके लिए पृथक महाप्राण वर्ण हैं जैसे *ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ* आदि।

अपने ध्वन्यात्मक और वैज्ञानिक गुणों के आधार पर नागरी लिपि कुछ नए परिवर्तनों, परिवर्द्धनों के साथ एक विश्व लिपि बनने की सक्षमता रखती है। इसीलिए विनोबाजी ने विश्वनागरी के रूप में इसकी कल्पना की थी। दक्षिण पूर्व के एशियाई देशों की भाषाओं के लिए तो यह बहुत ही सुकर है, क्योंकि इनमें से अधिकांश की लिपियाँ तो ब्राह्मी से ही विकसित हुई हैं। वे चाहते थे कि नागरी लिपि की वैज्ञानिकता और सरलता को देखते हुए यदि पड़ोसी देश भी इस लिपि का प्रयोग करें, तो अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना में अवश्य वृद्धि होगी।

प्रत्येक लिपि चिह्न का प्रयोग उच्चारण में भी हो

नागरी लिपि की यह विशेषता है कि इसके प्रत्येक लिपि चिह्न का प्रयोग होता है। हिंदी में अब अनावश्यक स्वर हटा दिए गए हैं, जैसे ग और लृ आदि, किंतु अंग्रेज़ी के कुछ शब्दों में अभी भी ऐसे लिपि चिह्नों का प्रयोग किया जाता है, जिनका उनके उच्चारण में कोई स्थान नहीं है। जैसे Half में रुका उच्चारण होता ही नहीं। इसी प्रकार Daughter में gh वर्ण अब अनावश्यक रह गए हैं। Listen और Often में T का क्या प्रयोग है? इसी प्रकार Colonel (कर्नल) और Leightenant (लेफ्टिनेंट) तथा Psychology और Budget में अक्षर कुछ है, और उच्चारण कुछ है। क्या यह लिपि का दोष है?

फारसी और उर्दू में इनके अलावा कुछ ऐसे लिपि चिह्न भी प्रयुक्त होते हैं जिनका उनकी वर्णमाला में स्थान नहीं है, जैसे (बिलकुल) के लिए (बालकुल) लिखा जाता है, पढ़ा (बिलकुल) जाता है।

मात्रा एवं वर्ण चिह्नों में भिन्नता हो

नागरी लिपि एक ध्वन्यात्मक लिपि है। इसकी वर्णमाला बड़ी वैज्ञानिक है। इसमें स्वर की मात्राएँ अलग हैं। ह्रस्व और दीर्घ मात्राओं का भेद सुस्पष्ट है। यदि किसी स्वर को किसी व्यंजन के साथ मिलाकर लिखना है, तो उसकी मात्रा लगा दी जाती है। पूरा स्वर नहीं लिखा जाता। प्रत्येक व्यंजन के साथ अ स्वर मिला होता है। जैसे ज–ज्+अ। इस प्रकार यह आक्षरिक लिपि है। रोमन लिपि में लिखे शब्द Kamal को कमल, कमाल, कामल भी पढ़ा जा सकता है। नागरी में ऐसा नहीं होता। मात्राओं के कारण स्थान की भी बचत होती है। यदि नागरी लिपि में मात्राएँ न होतीं तो कलम को (क्+अ+ल्+अ+म्+अ) की भाँति लिखा जाता। अंग्रेज़ी में राम को Rama लिखा जाएगा, जो अधिक जगह घेरता है। अंग्रेज़ी में मात्राएँ न होने से स्वर को पूर्ण रूप से लिखना पड़ता है। अच्छा शब्द रोमन में शुद्ध लिखा या पढ़ा जाना कठिन है। बेचारे रामनिरंजन (Ramniranjan) रोमन में रमणीरंजन हो जाते हैं और खानदान (Khandan) खंडन बन जाता है।

वर्णमाला व्यवस्थित हो

नागरी वर्णमाला में ध्वनियों का मुख के उच्चारणोपयोगी स्थानों के आधार पर वर्गीकरण किया गया है। पहले स्वरों के लिए लिपि चिह्न हैं, बाद में व्यंजनों के लिए। स्वरों में भी ह्रस्व और दीर्घ स्वरों के लिए अलग-अलग वर्ण हैं, जैसे—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ। रोमन, अरबी या फारसी लिपि में ऐसा नहीं है। वहाँ स्वर और व्यंजन पृथक-पृथक नहीं, बल्कि मिले हुए हैं। नागरी

लिपि का प्रत्येक वर्ण चाहे वह स्वर हो या व्यंजन उसका निर्माण एक विशिष्ट स्थान तथा स्थिति में होता है। वर्णों को कंठ, तालु, मूर्धा, दंत एवं ओष्ठ से निकलनेवाली ध्वनि के आधार पर वर्गीकृत कर इसे पूर्ण वैज्ञानिकता प्रदान की गई। देखें तालिका—

					नासिक्य	अंतस्थ	ऊष्म
कंठ	क	ख	ग	घ	ङ		
तालव्य	च	छ	ज	झ	ञ	य	श
मूर्धन्य	ट	ठ	ड	ढ	ण	र	ष
दंत्य	त	थ	द	ध	न	ल	स
ओष्ठ्य	प	फ	ब	भ	म	व	

(ह स्वर-यंत्रीय व्यंजन है)

इनके अतिरिक्त हिंदी में कुछ संयुक्त व्यंजन भी हैं, जिनका आधार वैज्ञानिक है। जैसे—

क्ष—(क्+ष)

त्र—(त्+र)

ज्ञ—(ज्+ञ)

श्र—(श्+र)

मानकीकरण

देवनागरी लिपि आरंभ से ही एक विकासशील लिपि रही है। समय-समय पर इसमें आवश्यकतानुसार संवर्धन और परिवर्धन होता रहा है। नई ध्वनियों के अनुकूल ही इसके वर्णों में बदलाव आते रहे हैं। इसके कुछ वर्णों में पहले एकरूपता नहीं थी और वे कई प्रकार से लिखे जाते थे। अब उनका एक मानक रूप निश्चित कर दिया गया है। जैसे—

पुराना रूप	मान्य रूप
ग्र	अ
रव	ख
भ्क	झ
रा	ण
ध्	ध
ळ	ल

हाल ही में भारत सरकार की संस्था भारतीय मानक ब्यूरो ने देवनागरी लिपि एवं हिंदी वर्तनी के मानकीकरण की दिशा में नई पहल की है और 11 तथा 19 जुलाई, 2012 की बैठकों में इसे अंतिम रूप देने का प्रयास किया गया। जिसमें भारत सरकार के कई कार्यालयों जैसे केंद्रीय हिंदी निदेशालय, एन.सी.ई.आर.टी, नेशनल बुक ट्रस्ट, साहित्य अकादेमी, सी-डैक, केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो आदि के अतिरिक्त नागरी लिपि परिषद, विश्व नागरी संस्थान के प्रतिनिधियों तथा कई प्रतिष्ठित भाषाविदों ने भाग लिया। अब इसका मानकीकरण दिनांक 29 अगस्त, 2012 को विधिवत लोकार्पण किया गया। आशा है सभी हिंदी प्रयोक्ता इसका प्रयोग करेंगे।

लिपि सरल और स्पष्ट होनी चाहिए

एक वर्ण एक ही प्रकार से लिखा जाए। रोमन लिपि में लिखे जाने वाले और पुस्तकों में छपनेवाले रूपों में भिन्नता है। दूसरे, उनमें भी छोटे (Small) तथा बड़े (Capital) लिपि चिह्नों में भिन्नता है। इस प्रकार 26 अक्षर चार गुणे अर्थात 26 × 4 = 104 हो जाते हैं।

लिप्यांतरण और प्रतिलेखन की दृष्टि से यह लिपि सबसे उपयुक्त है। इसमें निहित अपार संभावनाओं का उपयोग कर हम भूमंडलीकृत होते विश्व की सैकड़ों भाषाओं के साथ न्याय कर सकेंगे और देवनागरी लिपि विश्व की भाषाओं का माध्यम और उनकी कुंजी बन सकेगी। इसमें अंग्रेज़ी, फ्रेंच, जर्मन, इतालवी आदि सभी यूरोपीय भाषाओं के उच्चारण सुरक्षित रह सकते हैं। उच्चारण की भिन्नता को देखिए, अंग्रेज़ी में D और T की ध्वनि क्रम से ड और ट होती है। किंतु वही इतालवी में जाकर द और त हो जाती है। इस प्रकार विश्व की भाषाओं के सही उच्चारण का एकमात्र उपाय उनका नागरी लिपि में लिप्यंतरण ही हो सकता है। मानव कल्याण की दिशा में यह प्रक्रिया निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है।

देशी-विदेशी भाषाओं के शिक्षण की दृष्टि से भी इस लिपि के सामर्थ्य का उपयोग किया जाए, क्योंकि रोमन जब लिप्यंतरण की दृष्टि से ही उपयुक्त नहीं है, तब उसके जरिए किसी अन्य भाषा के शिक्षण की कल्पना ही कैसे संभव है?

आज कंप्यूटर और सूचना प्रौद्योगिकी के युग में—विश्व की सक्षम लिपि के रूप में भी देवनागरी को उपयुक्त माना जा रहा है। अमेरिका, जापान और जर्मनी में महत्त्वपूर्ण शोध चल रहे हैं। भारत में सी-डैक ने कई सॉफ्टवेयर तैयार किए हैं, जिनमें श्रुति-लेखन जैसे महत्त्वपूर्ण सॉफ्टवेयर हैं।

अपने ध्वन्यात्मक और वैज्ञानिक गुणों के आधार पर नागरी लिपि कुछ नए परिवर्तनों, परिवर्द्धनों के साथ एक विश्व लिपि बनने की सक्षमता रखती है। इसीलिए विनोबाजी ने विश्वनागरी के रूप में इसकी कल्पना की थी। दक्षिण पूर्व के एशियाई देशों की भाषाओं के लिए तो यह बहुत ही सुकर है, क्योंकि इनमें से अधिकांश की लिपियाँ तो ब्राह्मी से ही विकसित हुई हैं। वे चाहते थे कि

नागरी लिपि की वैज्ञानिकता और सरलता को देखते हुए यदि पड़ोसी देश भी इस लिपि का प्रयोग करें, तो अंतर्राष्ट्रीय सद्‌भावना में अवश्य वृद्धि होगी।

उन्होंने एक लेख में जापानी तथा चीनी आदि भाषाओं का भी उल्लेख किया। उन्होंने कहा कि पड़ोसी देश नेपाल की भाषा नेपाली है, किंतु इसकी लिपि नागरी है। इस प्रकार दोनों देशों की पारस्परिक सांस्कृतिक और सामाजिक सद्‌भावना का बहुत कुछ श्रेय इस लिपि को भी है। जापानी भाषा के संबंध में उन्होंने कहा, जापानी भाषा की लिपि चित्रमय लिपि है, इसलिए इसके पास चित्रों की संख्या लगभग दो हज़ार है, जिसे सीखना सरल काम नहीं है। इसलिए वे लोग नई लिपि की खोज कर रहे हैं। जापानी विद्वान क्यूबा दोई भी जापानी के लिए नागरी लिपि के पक्षधर थे।

यही बात चीनी भाषा के संबंध में भी है। मैं चीनी भाषा के संबंध में अपने एक मित्र द्वारा सुनाए गए एक संस्मरण का उल्लेख करना चाहता हूँ, जिसमें उन्होंने बताया था कि जब चीन के प्रधानमंत्री श्री चाउ एन लाई भारत यात्रा पर आए थे, तो कहा जाता है कि उन्होंने चीनी लिपि की जटिलता को देखते हुए चीनी भाषा के लिए नागरी लिपि अपनाए जाने की संभावनाओं के संबंध में तत्कालीन प्रधानमंत्री पं.जवाहरलाल नेहरू के सामने विचार रखे थे, किंतु इसकी औपचारिक अभिव्यक्ति आज कहीं नहीं मिलती।

उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों के साथ प्राचीनकाल से ही भारत के बड़े निकट के संबंध रहे हैं। नेपाल, चीन, इंडोनेशिया, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, वियतनाम, म्यांमार, श्रीलंका, थाइलैंड तथा तिब्बत, मंगोलिया, जापान और कोरिया तक हमारे गहरे सांस्कृतिक संबंध रहे हैं। इन भाषाओं की शब्दावली में भारत से गए अनेक शब्द आज भी विद्यमान हैं। इन देशों की भाषाओं की लिपियाँ भी भारत की प्राचीन ब्राह्मी लिपि से ही प्रभावित हैं और इनकी वर्णमाला का क्रम भी प्राय: वही है।

नागरी लिपि हिंदी के लिए एक वरदान है, किंतु हम हैं कि आँख मूँदकर रोमन लिपि के पीछे भाग रहे हैं। हमें नहीं भूलना चाहिए कि रोमन के कारण ही भारत में नगरों के नाम बिगड़े। व्यक्तियों और महापुरुषों के नाम विकृत हुए। जिनमें हम अब सुधार करने में लगे हैं। यही नहीं सूरीनाम को ले लीजिए जहाँ हिंदी को रोमन में लिखा गया तो वह सरनामी हिंदी बन गई। भारत में भी हिंदी को रोमन में लिखने की आवाज यदा-कदा सुनाई पड़ती है जो बहुत घातक है। हिंदी को रोमन में लिखने से हिंग्लिश जैसी एक नई भाषा बन रही है, जो हिंदी के हित में नहीं है। इतिहास साक्षी है कि जब हिंदी (हिंदवी) को फारसी लिपि में लिखा जाने लगा तो वह उर्दू बन गई।

अत:, मैं यह कहना चाहूँगा कि भारत के पास नागरी लिपि के रूप में एक अमूल्य धरोहर है जिसका प्रयोग सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में भी सफलता के साथ किया जा सकता है।

हमें क्या करना होगा?

1. प्रथम इसके लिए मानक की-बोर्ड के रूप में इंस्क्रिप्ट कुंजी पटल का ही टाइपराइटर तथा कंप्यूटर दोनों के लिए प्रयोग किया जाए। इंस्क्रिप्ट में स्वत: default मानक वर्णमाला ही सामने आए। कुंजी पटल पर नागरी और रोमन अक्षर दोनों ही अंकित हों।
2. हिंदी के फोंट यूनिकोड समर्थक हों और यूनिकोड ही अनिवार्य रूप से फोंट पर उपलब्ध हों।
3. वेब पर डोमेन नाम नागरी में भी स्वीकार्य हों।
4. भारतीय परीक्षाओं में इंस्क्रिप्ट की-बोर्ड पर ही परीक्षा ली जाए। इससे कार्यालयों में इंस्क्रिप्ट मानक का प्रचलन स्वत: ही बढ़ जाएगा।
5. वर्तनी जाँच संबंधी क्रमादेश सारे सॉफ्टवेयर निर्माताओं के लिए एक ही होना चाहिए, जो मानक वर्तनी के आधार पर हो, फिर देखिए कि देवनागरी लिपि कितनी तीव्र गति से आगे बढ़ती है।

—डॉ. परमानंद पांचाल
232-ए, पॉकेट-1, फेज-1,
मयूर विहार, दिल्ली-110091
इ-मेल : pnpanchal30@gmail.com

❑

शिशु ऊपर से देखने पर तो सभी का आश्रित है, किंतु वस्तुत: वही संपूर्ण परिवार का सम्राट् होता है।

— विवेकानंद

हिंदी के प्रयोग व प्रसार की प्रमुख चुनौती : भाषा-प्रौद्योगिकी

–डॉ. एम.एल. गुप्ता 'आदित्य'

- **शिक्षा** : एम.ए. (हिंदी), बी.एड., पी-एच.डी, अनुवाद में डिप्लोमा, गुजराती भाषा में डिप्लोमा, बांग्ला भाषा में प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम।
- **कार्य** : 23 वर्ष से भारत सरकार, राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय में (राजभाषा कार्यान्वयन तथा प्रशिक्षण में कार्य)।
- **विशिष्ट दायित्व** : सदस्य—मुंबई विश्वविद्यालय अध्ययन मंडल, हिंदी (बोर्ड ऑफ स्टडीज)।

इस बात पर कुछ विवाद हो सकते हैं कि प्रयोग की दृष्टि से हिंदी बोलनेवालों की संख्या सर्वाधिक है या नहीं, लेकिन यह निर्विवाद है कि चीनी और अंग्रेज़ी सहित हिंदी दुनिया की सर्वाधिक बोली जानेवाली पहली तीन भाषाओं में है। भारत के संविधान के अनुच्छेद-343 के अनुसार देवनागरी लिपि में लिखी जानेवाली हिंदी भारतीय संघ की राजभाषा है, साथ ही संघ के अनेक राज्यों की राजभाषा भी है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी सहित प्राय: सभी स्वतंत्रता सेनानियों ने हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा कहा और भारतीय जनमानस के साथ-साथ दुनिया भर में बसे भारतवासी भी हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में सम्मान देते हैं। संविधान के अनुच्छेद-351 में संघ को यह निदेश दिया गया है कि हिंदी का विकास इस प्रकार किया जाए ताकि हिंदी भारत की सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके। हिंदी भारत संघ की राजभाषा ही नहीं बल्कि भारत की मुख्य संपर्क भाषा व जनभाषा भी है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि हम हिंदी और भारतीय भाषाओं के प्रयोग व प्रसार और विकास के लिए राजभाषा के संवैधानिक दायित्वों के निर्वाह से आगे बढ़कर जन-कल्याण और राष्ट्र के विकास और विश्व स्तर पर भारतीय संस्कृति के प्रसार के नजरिए से भी विचार करें। भारत का सर्वांगीण विकास और भारतीय संस्कृति का प्रसार हिंदी के प्रयोग और विकास के बिना संभव नहीं है।

सूचना-प्रौद्योगिकी के युग में आज जहाँ विश्व की भाषाएँ प्रौद्योगिकी (टेक्नोलॉजी) के रथ पर सवार होकर इंटरनेट के माध्यम से द्रुतगति से भूमंडल में अपना विस्तार कर रही हैं, वहीं हिंदी आज भी केवल कलम थामे मंद गति से चलती दिखाई पड़ती है। प्रौद्योगिकी और भारतीय भाषाओं के बीच सामंजस्य न होने से न केवल हिंदी और भारतीय भाषाओं के विकास का मार्ग अवरुद्ध होता है, बल्कि भारत के विकास की गति पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। हिंदी के लिए सूचना-प्रौद्योगिकी के समुचित विकास और प्रयोग के अभाव में जहाँ एक ओर भारत का एक बड़ा वर्ग सूचना-प्रौद्योगिकी से कट जाता है, वहीं ज्ञान-विज्ञान और विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्ध सूचनाएँ भी अंग्रेज़ी का ज्ञान रखनेवाले सीमित वर्ग तक सिमट कर रह जाती हैं।

भारतीय भाषाओं के लिए भाषा-प्रौद्योगिकी की शुरुआत सर्वप्रथम वर्ड-प्रोसेस एप्लीकेशन से हुई। हिंदी में वर्ड-प्रोसेस एप्लीकेशन के लिए भारत सरकार के राजभाषा विभाग ने तकनीकी कक्ष की स्थापना कर एक प्रगतिशील मार्ग की स्थापना की। इस दिशा में पहले जिस्ट टेक्नोलॉजी का प्रयोग प्रारंभ हुआ फिर आगे चलकर सी.डेक, मॉड्यूलर इंफोटैक, साइबरस्केप आदि अनेक कंपनियों ने काफी कार्य किया। हिंदी सहित भारतीय भाषाओं के लिए यूनिकोड की उपलब्धता के बाद इस क्षेत्र में तीव्र गति आई है। हिंदी सहित भारतीय भाषाओं में कार्य के लिए उपलब्ध

यूनिकोड आधारित माइक्रोसॉफ्ट और गूगल जैसी ख्याति प्राप्त बहुराष्ट्रीय कंपनियों के फोनेटिक इंटेलीजैंट की-बोर्ड ने उन लोगों की राह काफी सरल बना दी है जो देवनागरी लिपि में टंकण-प्रशिक्षण लेने के बजाए रोमन लिपि के माध्यम से ही देवनागरी लिपि में काम करना चाहते हैं। इन सुविधाओं ने हिंदी में कार्य के लिए देवनागरी लिपि में टंकण-प्रशिक्षण की बाध्यता को समाप्त करते हुए हिंदी में वर्ड-प्रोसेसिंग में एक नई राह बनाई है। आधुनिक व सरल इंस्क्रिप्ट की-बोर्ड को सरकार द्वारा मानक की-बोर्ड के रूप में स्वीकार करने से भी आगे का मार्ग सरल हो गया है। रेमिंग्टन व गोदरेज के की-बोर्ड पर पूर्व प्रशिक्षित लोगों के लिए भी यूनिकोड पर हिंदी में कार्य करने की सुविधाएँ उपलब्ध हो चुकी हैं। सरकारी और गैर-सरकारी स्तर पर किए जा रहे प्रयासों से आज कंप्यूटर पर हिंदी में कार्य करने की अनेक सुविधाएँ उपलब्ध हो गई हैं, जिसके चलते आज हिंदी इंटरनेट के माध्यम से ऊँची उड़ान के लिए तैयार भी है, और ऊँची उड़ान भर भी रही है। लेकिन उड़ानें बहुत कम हैं। समस्या यह है कि ज्यादातर हिंदी भाषा-कर्मी कंप्यूटर साक्षर नहीं हैं और ज्यादातर आई.टी.-कर्मी भारतीय भाषाओं के लिए उपलब्ध भाषा-प्रौद्योगिकी सुविधाओं से अनभिज्ञ हैं। हिंदी का विमान उड़ान भरे तो कैसे? इसके लिए हमें हिंदी और भारतीय भाषाओं के लिए प्रौद्योगिकी प्रयोग की प्रमुख चुनौतियों को समझते हुए आगे की रणनीति बनानी होगी। इस संबंध में प्रमुख चुनौतियाँ निम्नलिखित हैं—

1. **सूचना-प्रौद्योगिकी व कंप्यूटर शिक्षा में हिंदी में कार्य संबंधी जानकारी का अभाव**—भारत में आजकल बड़ी संख्या में विद्यार्थी सूचना-प्रौद्योगिकी (आई.टी.) की पढ़ाई करते हैं। इसके अतिरिक्त कहीं ज्यादा लोग कंप्यूटरों पर विभिन्न सॉफ्टवेयरों के प्रयोग व कार्य संबंधी विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण भी लेते हैं। आजकल प्रायः सभी स्कूल-कॉलेजों में कंप्यूटर पर कार्य व इंटरनेट आदि पर कार्य की शिक्षा भी दी जाती है। लेकिन यह आश्चर्यजनक है कि प्रायः किसी भी स्तर पर हिंदी में कार्य संबंधी जानकारी या शिक्षा नहीं दी जाती। इस कारण आम व्यक्तियों की बात तो दूर सूचना-प्रौद्योगिकी (आई.टी.) की उच्च शिक्षा पानेवाले ज्यादातर विद्यार्थियों को भी कंप्यूटर पर हिंदी में सामान्य कार्य करने का साधारण ज्ञान तक नहीं होता, जिसे कुछ ही देर में सीखा जा सकता है। जब सूचना-प्रौद्योगिकी के शिक्षा तंत्र में हिंदी में कार्य संबंधी सामान्य जानकारी देने की व्यवस्था तक नहीं होगी तो यह आशा कैसे की जा सकती है कि हिंदी और भारतीय भाषाओं के लिए आधुनिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग होने लगेगा।

आज स्थिति यह है कि राजभाषा हिंदी के कार्य से जुड़े राजभाषा-कर्मियों में, कुछ प्रतिशत लोगों को छोड़कर प्रायः किसी को भी कंप्यूटर पर हिंदी में कार्य करने की सुविधाओं की पूरी जानकारी तक नहीं है। इसलिए यदि हिंदी को आधुनिक प्रौद्योगिकी से लैस करना है तो सर्वप्रथम शुरुआत सूचना-प्रौद्योगिकी (आई.टी.) शिक्षा में हिंदी के समावेश से करनी होगी। सभी स्तरों पर यानी स्कूल-कॉलेज से लेकर आई.आई.टी. स्तर तक सूचना-प्रौद्योगिकी (आई.टी.) की शिक्षा में भारतीय भाषाओं में कार्य के लिए प्रौद्योगिकी और सुविधाओं की जानकारी अनिवार्य रूप से देने की व्यवस्था करनी होगी। इसके पश्चात् ही भाषा-प्रौद्योगिकी के माध्यम से हिंदी में काम किए जाने का मार्ग प्रशस्त होगा।

प्रौद्योगिकी और भारतीय भाषाओं के बीच सामंजस्य न होने से न केवल हिंदी और भारतीय भाषाओं के विकास का मार्ग अवरुद्ध होता है, बल्कि भारत के विकास की गति पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। हिंदी के लिए सूचना-प्रौद्योगिकी के समुचित विकास और प्रयोग के अभाव में जहाँ एक ओर भारत का एक बड़ा वर्ग सूचना-प्रौद्योगिकी से कट जाता है, वहीं ज्ञान-विज्ञान और विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्ध सूचनाएँ भी अंग्रेज़ी का ज्ञान रखनेवाले सीमित वर्ग तक सिमट कर रह जाती हैं।

2. **हिंदी भाषाशिक्षण में कंप्यूटर पर हिंदी में कार्य व भाषा-प्रौद्योगिकी शिक्षण का न होना**—आज जबकि भाषा से जुड़े प्रायः सभी कार्य कंप्यूटर और इंटरनेट आदि की मदद से भाषा-प्रौद्योगिकी की सहायता से किए जाते हैं, वहीं स्थिति यह है कि अधिकांश हिंदी शिक्षक और हिंदी की उच्च शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी भी कंप्यूटर पर हिंदी में कार्य की जानकारी नहीं रखते। जिसके चलते हिंदी शिक्षकों, विद्यार्थियों, हिंदी-कर्मियों, हिंदी साहित्यकारों व लेखकों आदि को कंप्यूटर पर हिंदी व भारतीय भाषाओं में कार्य संबंधी सुविधाओं की जानकारी नहीं होती। इसलिए यह आवश्यक है कि सभी स्तरों पर हिंदी के पाठ्यक्रम में भाषा-विज्ञान के साथ-साथ भाषा-प्रौद्योगिकी को भी जोड़ा जाए। साथ ही भाषा-शिक्षकों को और स्कूल-कॉलेजों में विद्यार्थियों को हिंदी सहित भारतीय भाषाओं में कार्य के लिए भाषा-प्रौद्योगिकी की जानकारी और कंप्यूटर-इंटरनेट पर कार्य का प्रशिक्षण भी अनिवार्य रूप से दिया जाए। इसके लिए पाठ्यक्रमों में आवश्यक परिवर्तन किए जाने की आवश्यकता है। राजभाषा हिंदी में कार्य की दृष्टि से केंद्रीय

कार्यालयों में हिंदी में कार्य के लिए भाषा–प्रौद्योगिकी की जागरूकता, जानकारी व प्रशिक्षण पर और अधिक ध्यान दिए जाने की भी आवश्यकता प्रतीत होती है।

जब हिंदी में कार्य के लिए भाषा–प्रौद्योगिकी कुशल हिंदी भाषा–कर्मी जिन क्षेत्रों में जाएँगे। वहाँ न केवल अपना कार्य भाषा–प्रौद्योगिकी की मदद से कर सकेंगे बल्कि सहकर्मियों को भी हिंदी भाषा के लिए उपलब्ध कंप्यूटर पर कार्य से संबंधित सुविधाओं व प्रौद्योगिकी से अवगत करवा सकेंगे। मुंबई विश्वविद्यालय के हिंदी शिक्षण मंडल (बोर्ड ऑफ स्टडीज) के सदस्य के रूप में मैंने इस विषय को पुरज़ोर ढंग से उठाया है और पाठ्यक्रम समिति में ऐसे विषयों को जोड़ने पर सहमति भी बनी है। पर यहाँ भी एक और बड़ी समस्या यह है कि इस प्रयोजन के लिए ज्यादातर कॉलेजों के पास कंप्यूटर जैसी बुनियादी सुविधाएँ तक नहीं हैं। इस संबंध में विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रमों में संशोधन के साथ–साथ इसके लिए आवश्यक सुविधाएँ व संसाधन उपलब्ध करवाने हेतु उच्च स्तर पर नीतिगत निर्णय लिये जाने की आवश्यकता है।

विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत भारतीय संगठन, संस्थान और कंपनियाँ जनता और ग्राहकों आदि के लिए यदि ऐसे ऐंटरप्राइज सॉफ्टवेयरों में हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि का प्रयोग करें तो निश्चय ही बेहतर पारदर्शिता, बेहतर संचालन-नियंत्रण, उच्चतर ग्राहक संतुष्टि, कम सेवा लागत और व्यापक नियोजन जैसे लक्ष्यों को प्राप्त कर सकती हैं।

3. **सूचना–प्रौद्योगिकी क्षेत्र के अनुसंधान और विकास कार्य में हिंदी के लिए समानांतर कार्य की आवश्यकता**—आज देश और दुनिया में सूचना–प्रौद्योगिकी (आई.टी.) क्षेत्र में विभिन्न स्तरों पर अनुसंधान और विकास का कार्य किया जा रहा है, भारत ने भी इस क्षेत्र में अपनी एक विशेष पहचान बनाई है। सूचना–प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आज भारत विश्वभर को अपनी कुशलता व विशेषज्ञता का लोहा मनवा रहा है। इसके बावजूद भारत में भी अनुसंधान और विकास का कार्य अधिकांशत: अंग्रेज़ी भाषा और रोमन लिपि में या उसके लिए ही होता है। टेक्नोलॉजी के विकास व उसके प्रयोग के प्रारंभ होने के बाद हिंदी व भारतीय भाषाओं के लिए उस टेक्नोलॉजी के प्रयोग की संभावनाओं पर विचार किया जाता है, वह भी व्यावसायिक दृष्टिकोण के बजाए प्राय: नियमों के अनुपालन को ध्यान में रखकर। इस कारण हिंदी का प्रयोग औपचारिकता के दायरों से बाहर नहीं निकल पाता। प्रभावी माँग की कमी के कारण निजी क्षेत्र भी इस दिशा में ज्यादा आगे कदम नहीं बढ़ा पाता।

इसके लिए दो स्तरों पर प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। पहला तो यह कि भारत में, विशेषकर सार्वजनिक क्षेत्र सूचना–प्रौद्योगिकी में जो भी अनुसंधान और विकास कार्य किए जाएँ (जहाँ भाषा का प्रयोग है) तो ऐसी परियोजनाओं में प्रारंभ से ही हिंदी के प्रयोग की व्यवस्थाएँ हों। दूसरे यह कि सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियाँ व उद्यम जब किसी प्रौद्योगिकी या सॉफ्टवेयर आदि को खरीदें या विकसित करवाएँ तो उनमें यह शर्त होनी चाहिए कि उनमें हिंदी में कार्य की सुविधा उपलब्ध होगी। जन–सुविधा के सॉफ्टवेयरों में हिंदी व स्थानीय भाषा को अनिवार्य किया जाए तो इससे हिंदी में कार्य के लिए प्रभावी माँग में वृद्धि होगी। ऐसे में निजी क्षेत्र की कंपनियाँ भी माँग को ध्यान में रखकर यथा स्थिति हिंदी व भारतीय भाषाओं में कार्य के लिए अनुसंधान और विकास कार्य करेंगी और नए–नए उत्पाद बाज़ार में उतारेंगी। हिंदी के लिए प्रौद्योगिकी की उपलब्धता होने पर निजी क्षेत्र की कंपनियाँ भी अपनी व्यावसायिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर हिंदी व भारतीय भाषाओं में कार्य के लिए नवीनतम प्रौद्योगिकी या सॉफ्टवेयर आदि का प्रयोग करने लगेंगी।

4. **'ऐंटरप्राइज सॉफ्टवेयरों' में हिंदी का प्रयोग**—हिंदी और भारतीय भाषाओं के लिए सूचना–प्रौद्योगिकी (आई.टी.) प्रयोग की प्रमुख चुनौती है—ऐंटरप्राइज सॉफ्टवेयरों में हिंदी का प्रयोग। 1990 के दशक के बाद से प्रौद्योगिकी के विकास ने विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों के संगठनों की कार्य पद्धतियों में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया। विशेषकर खुदरा, निर्माण और बैंकिंग उद्योग आदि ने अपने दैनिक क्रियाकलापों के बेहतर निष्पादन, प्रबंधन–नियंत्रण और अपनी उत्पादकता को बढ़ाने की दृष्टि से आई.टी. समाधानों को कार्यान्वित करना प्रारंभ कर दिया जिन्हें ऐंटरप्राइज सॉफ्टवेयर कहा जाता है। कार्यकुशलता बढ़ाने तथा खर्च घटाने की दृष्टि से ऐसे आईटी समाधानों का प्रयोग तेज़ी से बढ़ा है, धीरे–धीरे अब सार्वजनिक व निजी क्षेत्र की तमाम महत्त्वपूर्ण कंपनियाँ, संगठन व संस्थान ऐंटरप्राइज सॉफ्टवेयरों का प्रयोग कर रहे हैं या उन्हें अपनाने की प्रक्रिया में हैं। सरकारी संगठनों, बैंकों, बीमा कंपनियों, स्थानीय निकायों के कार्य, बिजली–पानी के बिल, कराधान, राजस्व, पासपोर्ट आदि अनेक कार्य ऐंटरप्राइज सॉफ्टवेयरों से जुड़ते जा रहे हैं और जहाँ ये कार्यान्वित हुए हैं वहाँ अब 95 % तक कार्य ऐसे सॉफ्टवेयरों के माध्यम से होता है।

विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत भारतीय संगठन, संस्थान और कंपनियाँ जनता और ग्राहकों आदि के लिए यदि ऐसे ऐंटरप्राइज सॉफ्टवेयरों

में हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि का प्रयोग करें तो निश्चय ही बेहतर पारदर्शिता, बेहतर संचालन-नियंत्रण, उच्चतर ग्राहक संतुष्टि, कम सेवा लागत और व्यापक नियोजन जैसे लक्ष्यों को प्राप्त कर सकती हैं।

ऐंटरप्राइज सॉफ्टवेयर मुख्यत: हैं—(क) ई.आर.पी. सॉफ्टवेयर (ख) कोर बैंकिंग सॉफ्टवेयर (ग) कोर इंश्योरेंस सॉफ्टवेयर (घ) ई-गवर्नेंस सॉफ्टवेयर। ई.आर.पी. सॉफ्टवेयरों में एस.ए.पी. (सैप) ओरेकल, जे.डी ऐडवर्ड आदि सर्वाधिक प्रचलन में हैं, विभिन्न संस्थानों द्वारा भी अपने स्तर पर ऐसे अनेक ई.आर.पी. सॉफ्टवेयर बनाए या बनवाए गए हैं। सबसे बड़ी समस्या यह है कि भारत में ये सॉफ्टवेयर प्राय: अंग्रेज़ी में हैं। जब 95% कार्य ऐसे सॉफ्टवेयरों के माध्यम से होना है और इन पर हिंदी में कार्य की सुविधा ही नहीं है तो मामला नियमों के अनुपालन का हो या ग्राहक सेवा, जन-सुविधा और मार्केटिंग का, हिंदी में कार्य कैसे हो सकता है?

ऐंटरप्राइज सॉफ्टवेयरों (कोर बैंकिंग सॉफ्टवेयर, ई.आर.पी. सॉफ्टवेयर व ई-गवर्नेंस सॉफ्टवेयर आदि) में हिंदी व भारतीय भाषाओं के प्रयोग के लिए हमें प्रौद्योगिकी विकास के क्षेत्र में नीतिगत स्तर पर ऐसे निर्णय लेने होंगे, ताकि ऐसे सभी ऐंटरप्राइज सॉफ्टवेयरों को यथासंभव प्रारंभ से हिंदी/द्विभाषी या भारतीय भाषाओं की सुविधा के साथ ही खरीदे या बनवाए जाएँ।

ऐंटरप्राइज सॉफ्टवेयरों में हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि की सुविधा न होने के कारण अधिकांश भारतीय संगठनों और कंपनियों को ग्राहक-सेवा, जनसंचार और मार्केटिंग जैसे अपनी रणनीति के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों की उपेक्षा करते हुए इन ऐंटरप्राइज सॉफ्टवेयरों को अंग्रेज़ी में कार्यान्वित करने पर मज़बूर होना पड़ा है। आज भी स्थिति कमोबेश वैसी ही है। सैप, जे.डी ऐडवर्ड, कोर बैंकिंग सोल्यूशन, बीमा, राजस्व, पासपोर्ट कार्य आदि संबंधी ज्यादातर ई.आर.पी. सॉफ्टवेयर प्राय: मूलत: अंग्रेज़ी में हैं। जहाँ एक ओर ऐसे ऐंटरप्राइज सॉफ्टवेयरों के हिंदी भाषा के लिए किसी समर्थन या सहायता की कोई व्यवस्था नहीं है वहीं इन्हें हिंदी में उपलब्ध करवाने के लिए पर्याप्त संसाधनों और जागरूकता का भी अभाव परिलक्षित होता है।

आज बाज़ार अपने विस्तार के लिए ग्रामीण और अर्ध शहरी क्षेत्रों पर टकटकी लगाए है। हाल ही में हुई विकास और प्रौद्योगिकी क्रांति ने भारत के आम लोगों के सोचने के तरीके को बदल दिया है। ग्रामीण क्षेत्र में रहनेवाले लोग भी अब मोबाइल के रूप में सूचना-प्रौद्योगिकी से जुड़े हैं। यदि उन्हें हिंदी या उनकी भाषा में प्रौद्योगिकी की सुविधा मिले तो वे हर नई प्रौद्योगिकी से जुड़ने के लिए तैयार हैं। भारत सरकार भी बैंकिंग और वित्तीय सुविधाएँ समाज के सभी वर्गों तक पहुँचाने के लिए कटिबद्ध है। सभी बैंक वित्तीय समावेशन और कासा (बचत और चालू खाता अभियान) के माध्यम से हर व्यक्ति तक पहुँचने के लिए प्रयासरत हैं। जिसके लिए आवश्यकता है ऐंटरप्राइज सॉफ्टवेयरों में हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं की सुविधा की। सैकड़ों हज़ारों करोड़ की लागत से बनने वाले ये अनेक सॉफ्टवेयर प्राय: मूलत: अंग्रेज़ी में कार्य के लिए बने हैं, जिनमें से कुछ तो विदेशी कंपनियों के सॉफ्टवेयर हैं। बहुत बड़े खर्च और प्रभावी माँग की कमी के चलते वर्तमान परिस्थितियों में इन्हें हिंदी या द्विभाषी रूप में बनवाना संभव नहीं दिखता।

ऐंटरप्राइज सॉफ्टवेयरों में हिंदी का प्रयोग करने की दृष्टि से भारतीय बैंकिंग क्षेत्र ने सबसे पहले सबसे महत्त्वपूर्ण उपाय किए। इसके लिए उन्होंने कोर बैंकिंग सॉफ्टवेयरों पर लिंग्वा नेक्स्ट (पुराना नाम स्क्रिप्ट-मैजिक) द्वारा विकसित ऐसी प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया, जिससे मूल सॉफ्टवेयर की प्रोग्रामिंग में कोई परिवर्तन या छेड़छाड़ किए बिना समस्त कार्य हिंदी या द्विभाषी रूप में किया जा सकता है। भारत के राष्ट्रीयकृत बैंकों ने सर्वप्रथम स्क्रिप्ट-मैजिक टेक्नोलॉजी को अपना कर हिंदी में कार्य प्रारंभ किया। फिर कुछ निजी बैंकों ने हिंदी व भारतीय भाषाओं के प्रयोग के लिए इस टेक्नोलॉजी को अपनाया है और उन्हें कार्यान्वित भी किया है। बैंकिंग और खुदरा क्षेत्र अब सॉफ्टवेयर एप्लीकेशन समाधानों यानी ऐंटरप्राइज सॉफ्टवेयरों की सहायता से अपनी वांछित भाषा में विशेषकर हिंदी में लिखित रूप में अपने ग्राहकों के साथ व्यवहार करने लगे हैं। बैंकों के साथ-साथ अनेक कंपनियाँ, संगठन तथा नगरपालिकाएँ आदि भी सैप तथा अन्य ई.आर.पी. सॉफ्टवेयरों के माध्यम से हिंदी अथवा अपेक्षित भारतीय भाषाओं का प्रयोग करने लगी हैं या इस दिशा में प्रयासरत हैं। यह दृष्टिकोण सचमुच में भारतीय व्यावसायिक समुदाय में लोगों के प्रौद्योगिकी और हिंदी को एक भाषा के रूप में देखने के नजरिए को बदल रहा है। इनसे ग्राहक-सेवा, ग्राहक-संतुष्टि, दस्तावेजीकरण में आसानी और रिपोर्टों की उपलब्धता जैसे अनेक लाभ मिलने लगे हैं।

ऐंटरप्राइज सॉफ्टवेयरों (कोर बैंकिंग सॉफ्टवेयर, ई.आर.पी. सॉफ्टवेयर व ई-गवर्नेंस सॉफ्टवेयर आदि) में हिंदी व भारतीय भाषाओं के प्रयोग के लिए हमें प्रौद्योगिकी विकास के क्षेत्र में नीतिगत स्तर पर ऐसे निर्णय लेने होंगे, ताकि ऐसे सभी ऐंटरप्राइज सॉफ्टवेयरों को यथासंभव प्रारंभ से हिंदी/द्विभाषी या भारतीय भाषाओं की सुविधा के साथ ही खरीदे या बनवाए जाएँ। जहाँ फिलहाल ऐसा संभव नहीं है वहाँ सस्ते व सरल उपाय के रूप में उपर्युक्त टेक्नोलॉजी की मदद से हिंदी/द्विभाषी या भारतीय भाषाओं की सुविधा उपलब्ध करवाई जा सकती है। ऐसी प्रौद्योगिकी के प्रभावी

कार्यान्वयन के लिए हमें इसके लिए सभी स्तरों पर आई.टी. विभाग के समर्थन तथा प्रशिक्षण व रखरखाव के साथ-साथ इन्हें कार्यान्वित करने की इच्छा-शक्ति भी दिखानी होगी, ताकि प्रौद्योगिकी के माध्यम से हिंदी और भारतीय भाषाओं का समुचित प्रयोग भी सुनिश्चित किया जा सके।

भारत सरकार की अगले पाँच वर्षों में ई-गवर्नेंस पर करीब 22000 करोड़ रुपए खर्च करने की योजना है। भारत की लगभग 92 % जनता अंग्रेज़ी नहीं जानती, ऐसे में भारत जैसे जनतांत्रिक देश में ई-गवर्नेंस, तथा जन-कल्याण योजनाओं को सफल बनाने के लिए जनभाषा अर्थात भारतीय संघ की राजभाषा हिंदी सहित भारत के संविधान की अष्टम अनुसूची में उल्लिखित 22 भाषाओं के लिए प्रौद्योगिकी-समाधानों को उपलब्ध करवाए जाने पर विशेष ज़ोर देना होगा। जनतांत्रिक मूल्यों के अनुरूप इसके लिए संघ सरकार सहित राज्य सरकारों, स्थानीय निकायों, सरकारी संस्थानों, संगठनों, बैंकों तथा सार्वजनिक उपक्रमों को विशेष कार्य-योजना बनानी होगी। साथ ही जन-संचार, ग्राहक-सेवा, कार्यकुशलता, प्रबंधन, मार्केटिंग, लाभप्रदता और पारदर्शिता जैसे लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न उद्योग व व्यवसाय क्षेत्रों को भी इस दिशा में प्रभावी कदम उठाने होंगे, ताकि सूचना-प्रौद्योगिकी का लाभ कुछ प्रतिशत अंग्रेज़ी जाननेवाले लोगों के साथ-साथ अन्य सभी देशवासियों को भी मिल सके।

भारत सरकार की अगले पाँच वर्षों में ई-गवर्नेंस पर करीब 22000 करोड़ रुपए खर्च करने की योजना है। भारत की लगभग 92 % जनता अंग्रेज़ी नहीं जानती, ऐसे में भारत जैसे जनतांत्रिक देश में ई-गवर्नेंस, तथा जन-कल्याण योजनाओं को सफल बनाने के लिए जनभाषा अर्थात भारतीय संघ की राजभाषा हिंदी सहित भारत के संविधान की अष्टम अनुसूची में उल्लिखित 22 भाषाओं के लिए प्रौद्योगिकी-समाधानों को उपलब्ध करवाए जाने पर विशेष ज़ोर देना होगा।

पिछले कुछ वर्षों में हमने देखा है कि भारत सरकार भारतीय भाषाओं के लिए प्रौद्योगिकी विकास में सकारात्मक कदम उठा रही है और सूचना प्रोसेसिंग टूल्स और तकनीकों को एक साथ ला रही है, लेकिन निजी क्षेत्र की भागीदारी के बिना इतने बड़े कार्य को पूरा करना संभव प्रतीत नहीं होता। यदि भारत में हिंदी और भारतीय भाषाओं के लिए ऐसे प्रौद्योगिकी-समाधानों को अपनाने की व्यवस्था शिक्षा-तंत्र में की जाए तो ऐसे प्रौद्योगिकी-समाधान निश्चित रूप से भारतीय जनसंख्या को लाभ प्रदान करने में मदद करेंगे और भारत में समग्र साक्षरता दर में भी काफी वृद्धि होगी। भारतीय भाषाओं के लिए ऐसे प्रौद्योगिकी-समाधानों का प्रचार करने के लिए सामाजिक-मीडिया और इंटरनेट जैसे अभिनव तरीकों का भी इस्तेमाल किया जा सकता है। इस प्रकार भारतीय मुद्रण उद्योग को भी निश्चित रूप से ऐसे समाधानों से लाभ मिलेगा, क्योंकि इनसे मीडिया प्रकाशन प्रतिष्ठानों को अपना खर्च कम करने में मदद मिलेगी। ऐसे प्रौद्योगिकी समाधानों के उपयोग से निश्चित रूप से आज के युग के डिजिटल दृष्टिकोण में भी वृद्धि होगी। ऐसी महत्त्वपूर्ण प्रौद्योगिकियों के उपयोग की मदद से बड़ी आसानी से भारतीय भाषाओं में ई-बुक, ई-मैगजीन और ई-ब्रोशर का निर्माण किया जा सकता है तथा इनसे समय और पैसों की बचत में मदद मिलेगी।

भारत के स्वास्थ्य सेवा उद्योग को भी हिंदी व भारतीय भाषाओं के लिए भाषा-प्रौद्योगिकी समाधानों से काफी मदद मिल सकती है। डॉक्टर अपने रोगियों को ग्रामीण और घरेलू अस्पतालों में विभिन्न रिपोर्टें, नुस्खे और चिकित्सा-इतिहास संबंधी रिपोर्टें द्विभाषी या बहुभाषी प्रारूपों में उपलब्ध करवा सकेंगे। ऐसी प्रौद्योगिकी औषधीय उत्पादों के उपयोग के तरीके से जुड़े निर्देश अथवा दस्तावेजों के प्रिंटरों के लिए भी उपयोगी होगी, जो भारतीय भाषाओं में मुद्रण कार्य से जुड़े हैं। हिंदी और भारतीय भाषाओं वाली प्रौद्योगिकी विषय सामग्री को मिनटों में उपलब्ध करवाकर उस पर होने वाले खर्च में बचत कर सकेगी। ऐसे प्रौद्योगिकी समाधान सचमुच एक उत्प्रेरक की तरह काम करेंगे और सूचना-प्रौद्योगिकी अनुकूलन में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने में भी मदद करेंगे, जो भारतीय शिक्षा, उद्योगों और व्यावसायिक समुदाय के लिए सही मायने में हिंदी भाषा, प्रौद्योगिकी और उसके भारतीयकरण की दृष्टि से एक सकारात्मक मार्ग प्रशस्त करेगा।

जिस प्रकार आज विश्व की आधुनिक भाषाओं का साहित्य इंटरनेट पर और ई-बुक, ई-मैगजीन, ई-ब्रोशर आदि विभिन्न रूपों में तेज़ी से पाँव पसार रहा है, उसी प्रकार हिंदी साहित्य को भी प्रौद्योगिकी के माध्यम से आज के इस युग के सशक्त और द्रुतगति माध्यम को अपनाना पड़ेगा। यदि हमें हिंदी को विश्वभाषा बनाना है तो सर्वप्रथम हमें हिंदी के प्रयोग व प्रसार के लिए भाषा-प्रौद्योगिकी के आधुनिकतम रथ भी उपलब्ध करवाने होंगे, ताकि हिंदी भारतवासियों को परस्पर जोड़ते हुए भारत की एकता की प्रमुख कड़ी के रूप में अपनी भूमिका और अधिक प्रभावी ढंग से निभा सके। इसके अतिरिक्त भारतवासियों के कल्याण का सारथी होने के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान तथा साहित्य के क्षेत्र में विश्व की प्रमुख भाषाओं के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर आगे बढ़ सके।

—ए-104, चंद्रेश हाइट्स, जैसल पार्क
भायंदर (पूर्व), मुंबई, महाराष्ट्र-401105 (भारत)
इ-मेल : mlgdd123@gmail.com

❑

तकनीकी युग में हिंदी साहित्य का प्रचार-प्रसार

(कविता कोश व गद्य कोश)

–ललित कुमार
(संस्थापक, कविता कोश व गद्य कोश)

वर्ष 2006 से पहले तक इंटरनेट पर ऐसा कोई एक स्थान नहीं था जहाँ भारतीय काव्य का यूनिकोड मानक से बना विशाल संकलन उपलब्ध हो। यूँ तो काफी सारा हिंदी काव्य वेब पर उपलब्ध था, लेकिन सारी सामग्री सैकड़ों-हज़ारों वेबसाइट्स पर बिखरी पड़ी थीं। अधिकांश सामग्री रोमनाइज्ड हिंदी (यानी अंग्रेज़ी अक्षरों का प्रयोग करके लिखी गई हिंदी) में थी। जो सामग्री देवनागरी लिपि में उपलब्ध थी उसमें से अधिकांश सामग्री यूनिकोडित नहीं थी। इन सब बातों के चलते इंटरनेट पर हिंदी काव्य को ढूँढ़ना और पढ़ना काफी मुश्किल काम था। गूगल जैसी खोज सुविधाएँ भी दक्षतापूर्वक हिंदी सामग्री को नहीं खोज पाती थीं। इसी वर्ष कविता कोश नामक एक बिलकुल नए प्रयोग की शुरुआत हुई और उसके बाद से इंटरनेट पर हिंदी काव्य की स्थिति और उपस्थिति लगातार बेहतर होती चली गई।

कविता कोश नामक परियोजना (www.kavitakosh.org) को इंटरनेट पर आरंभ हुए आज सात वर्ष से भी पूरे नहीं हुए हैं और इतने कम समय में ही यह परियोजना हिंदी साहित्य के इतिहास में एक मील का पत्थर साबित हो चुकी है। कविता कोश का महत्त्व केवल इस बात में नहीं है कि यह हिंदी काव्य का सबसे बड़ा ऑनलाइन विश्व कोश है, बल्कि इससे भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण बहुत सी अन्य बातें हैं जिन्होंने हिंदी साहित्य को पिछले सात वर्षों के दौरान एक नया आयाम प्रदान किया है। इन बातों की चर्चा मैं आगे इस लेख में करूँगा।

वेब एप्लिकेशंस, वेब समुदायों के निर्माण, हिंदी साहित्य और गद्य लेखन में श्री ललित कुमार की गहरी रुचि है। वे हिंदी और अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं में नियमित रूप से लिखते हैं। भाषाओं और साहित्य से लगाव ने उन्हें इंटरनेट पर हिंदी को आगे बढ़ाने हेतु कई परियोजनाओं को शुरू करने के लिए प्रोत्साहित किया। कविता कोश और गद्य कोश नामक परियोजनाओं के संस्थापक व संचालक श्री ललित कुमार ने सूचना-प्रौद्योगिकी, जीव विज्ञान और बायोइंफॉर्मेटिक्स विषयों में उपाधियाँ प्राप्त की हैं। आजकल वे सोशल मीडिया, वेब डेवलपमेंट और वेब एक्सेसेबिलिटी विशेषज्ञ के तौर पर कार्य कर रहे हैं। श्री ललित कुमार से india.lalit@gmail.com पर संपर्क किया जा सकता है।

कविता कोश की शुरुआत मैंने 5 जुलाई, 2006 को की थी। उस समय मेरे मन में इस परियोजना की परिकल्पना और इसे अस्तित्व में लाने का संकल्प तो था, लेकिन इसके क्रियान्वयन को लेकर मैं कई वर्षों तक विचारमग्न रहा। इस परियोजना पर मैंने लगातार तकनीकी व गैर-तकनीकी प्रयोग किए और हर नया प्रयोग इसे कुंदन की तरह निखारता चला गया। प्रयोगों का यह सिलसिला आज भी बदस्तूर जारी है और भविष्य में भी जारी रहेगा। कविता कोश से प्रेरणा लेकर इन प्रयोगों को इंटरनेट पर कई दूसरी परियोजनाओं ने भी अपनाया है।

इन प्रयोगों में शायद सबसे महत्त्वपूर्ण प्रयोग तब हुआ जब इस परियोजना को एक खुली परियोजना का रूप दिया गया। खुली परियोजना का तात्पर्य यह था कि इसमें कोई भी व्यक्ति आकर अपना योगदान दे सकता था। इसे खुले रूप में लाने से पहले कुछ महीने तक कविता कोश को मैंने एक ऐसे रूप में विकसित किया था जिसमें केवल मैं ही इस कोश में उपलब्ध सामग्री को घटा, बढ़ा या संपादित कर सकता था। प्रबंधन के लिहाज से यह कविता कोश का एक अपेक्षाकृत

सरल रूप था, लेकिन शीघ्र ही मुझे लगने लगा कि अपने निजी जीवन की व्यस्तताओं के चलते मैं अकेले इस परियोजना को उतना विशाल स्वरूप नहीं दे सकता जिसकी मैंने कल्पना की थी। परिणामस्वरूप कविता कोश का ढाँचा बदल दिया गया और इसे एक खुला रूप दे दिया गया।

धीरे-धीरे लोगों ने इस परियोजना के महत्त्व को समझा और स्वयंसेवक इसके साथ जुड़ने लगे। उस समय हिंदी यूनिकोड में टाइपिंग कर सकने वाले व्यक्तियों की संख्या बहुत कम थी। अधिकांश लोग जो परियोजना में सहयोग करना चाहते थे उन्हें हिंदी यूनिकोड टाइपिंग नहीं आती थी। इन व्यक्तियों को टाइपिंग सिखाई गई और कविता कोश में योगदान देने की प्रक्रिया का प्रशिक्षण भी दिया गया। इस तरह धीरे-धीरे योगदानकर्ता जुटने लगे और कविता कोश परियोजना आगे बढ़ने लगी। गत वर्षों में सर्वश्री अनिल जनविजय, प्रतिष्ठा शर्मा, अशोक शुक्ल, धर्मेंद्र कुमार सिंह, आशीष पुरोहित, द्विजेंद्र द्विज, नीरज दइया, प्रकाश बादल, श्रद्धा जैन, चंद्र मौलेश्वर, विभा झलानी, प्रदीप जिलवाने, हिमांशु पांडे, अजय यादव, राजीव रंजन प्रसाद, शारदा सुमन, मुकेश मानस इत्यादि ने कविता कोश में प्रमुख योगदान दिया है।

एक बार जब कविता कोश का मूलभूत ढाँचा बन गया और अन्य योगदानकर्ताओं ने योगदान देना आरंभ कर दिया तब मैंने पाया कि योगदान की प्रक्रिया को और बेहतर बनाए जाने की आवश्यकता है। चूँकि हमारे पास एक अतिविशाल लक्ष्य था और लक्ष्य को हासिल करने के लिए संसाधन बहुत कम थे; इसलिए यह जरूरी था कि हम अपने पास उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग दक्षतापूर्वक करें। इसके लिए मैंने कविता कोश टीम नामक एक समूह का निर्माण किया। इस समूह के सदस्यों को योगदानकर्ताओं में से ही चुना जाता था और हर सदस्य की कविता कोश में एक परिभाषित भूमिका होती थी। उदाहरण के लिए श्रीमती प्रतिष्ठा शर्मा ने तीन वर्ष तक टीम-प्रशासक का कार्यभार सँभाला और श्री अनिल जनविजय ने करीब इतने ही समय तक कविता कोश के संपादन का कार्य किया। इस तरह व्यवस्थित रूप से कार्य करने के कारण कविता कोश के विकास में और भी तेज़ी आई।

कविता कोश में चूँकि अन्य रचनाकारों की रचनाओं का संकलन है इसलिए कॉपीराइट एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा था जिस पर हमें ध्यान देने की जरूरत थी। कॉपीराइट के विषय में कविता कोश की नीति हमेशा से ही स्पष्ट रही है। कविता कोश एक खुला विश्व कोश है जिसे बहुत से हिंदी प्रेमी व्यक्तियों ने योगदान देकर निर्मित किया है। यदि किसी वैध कॉपीराइट धारक को कोश में अपनी रचनाओं के संकलित होने पर आपत्ति है तो उन रचनाओं को कोश से हटा दिया जाता है। इस कोश का उद्देश्य भारतीय काव्य को इंटरनेट पर एक जगह स्थापित करना है। किसी के आर्थिक या अन्य उद्देश्यों को हानि पहुँचाना कविता कोश का लक्ष्य नहीं है। कोश की शुरुआत में हमें संकलन हेतु सामग्री जुटाने में कुछ परेशानी जरूर हुई, लेकिन वर्तमान में रचनाकार स्वयं ही इस कोश में संकलित होना चाहते हैं और स्वयं ही संकलन के लिए अपनी रचनाएँ प्रसन्नता-पूर्वक कोश को उपलब्ध कराते हैं। कविता कोश में संकलित होना अब एक सम्मान का विषय बन चुका है। किसी भी रचनाकार का कविता कोश में संकलन आरंभ हो जाने के बाद उस रचनाकार की रचनाएँ आसानी से विश्वभर में पढ़ी जा सकती हैं। बहुत से रचनाकार तो अब अपनी नई रचनाओं को भी सीधे कविता कोश में संकलित कर देते हैं।

पिछले करीब छह वर्षों के दौरान कविता कोश ने दिन दूनी और रात चौगुनी प्रगति की है। वर्तमान में यह कोश 55,000 से भी अधिक काव्य रचनाओं का संकलन बन चुका है जिसमें 2000 से अधिक रचनाकार संकलित हैं। इस कोश में 1000 से अधिक पुस्तकें भी हैं और विभिन्न बोलियों के करीब 400 लोकगीतों का संकलन है। कविता कोश में शाश्वत काव्य, शिशु गीत, धार्मिक लोक रचनाओं इत्यादि का भी बड़ा संकलन मौजूद है। सभी ओर से लागतार माँग किए जाने पर कविता कोश में प्रादेशिक अनुभाग भी बनाए गए। इस समय राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हरियाणा, बिहार, छत्तीसगढ़ उत्तराखंड इत्यादि राज्यों के अलग-अलग अनुभाग हैं। हालाँकि शुरुआत में कविता कोश का लक्ष्य हिंदी काव्य को संकलित करना था, लेकिन उस समय भी कोश में हिंदी और उर्दू में फर्क नहीं किया गया। हिंदी के कवियों के साथ-साथ उर्दू के शायर भी शुरुआत से ही इस विश्व कोश की शोभा बढ़ाते रहे हैं।

हिंदी के अलावा अन्य भाषाओं के काव्य को भी कविता कोश में संकलित करने के प्रयास चल रहे हैं। उदाहरण के लिए राजस्थानी भाषा का एक अलग अनुभाग कविता कोश में विकसित किया जा रहा है। इस विभाग को आरंभ हुए करीब दो वर्ष हुए हैं और अब यह राजस्थानी भाषा में लिखे गए काव्य का इंटरनेट पर सबसे बड़ा संकलन बन चुका है।

भारत के बाहर जिन देशों में स्थानीय लोग हिंदी भाषा का प्रयोग करते हैं व साहित्य रचना करते हैं उन देशों के लिए भी अलग से विभाग बनाए जा रहे हैं। मॉरीशस के हिंदी काव्य हेतु बना विभाग इस योजना का एक उत्तम उदाहरण है। मॉरीशस के हिंदी कवियों को कविता कोश में संकलित करने हेतु कविता कोश और विश्व हिंदी सचिवालय सामूहिक रूप से प्रयासरत हैं।

कविता कोश शोधार्थियों के लिए एक बहुत लाभकारी स्रोत है। इस कोश में सारी जानकारी को व्यवस्थित ढंग से सँजोया गया है। इस कारण पाठक रचनाओं और रचनाकारों को आसानी से ढूँढ़ सकते हैं। कोश में मानक की-वर्ड आधारित खोज व्यवस्था तो है ही इसके अलावा, रचनाकारों को उनके, जन्मदिन, जन्मस्थान, जन्म के दशक, राज्य, लेखन विधा, साहित्यिक आंदोलन इत्यादि के आधार पर भी वर्गीकृत किया गया है। इसके अलावा रचनाओं का भी वर्गीकरण किया गया है। कविताओं, गज़लो, नज्मों, गीतों, नवगीतों, चौपाई, दोहा इत्यादि विधाओं के आधार पर रचनाओं के समूह खोजे जा सकते हैं। रचनाओं के विषय आधारित संकलन भी कविता कोश में उन्नत किए गए हैं। विभिन्न ऋतुओं के विषय पर लिखी गई रचनाओं के संकलन, पर्व/त्योहार आधारित संकलन, देशभक्ति और प्रेम जैसी भावनाओं पर आधारित संकलन; इस तरह के बहुत से रचना-समूह कविता कोश में उपलब्ध हैं। महिला रचनाकार और शायर जैसे विशिष्ट वर्गीकरण भी शोधार्थियों की सुविधा हेतु उपलब्ध हैं। इस तरह के नित नए वर्ग कविता कोश में जुड़ते रहते हैं जिससे सारी सामग्री व्यवस्थित, वर्गीकृत और सुगम बनी रहती है।

कविता कोश की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके विकास हेतु करदाताओं का एक भी पैसा प्रयोग नहीं किया गया। शुरुआत के पाँच वर्षों में इसे जितने भी धन की आवश्यकता पड़ी उसे कविता कोश टीम के सदस्यों ने मिलकर वहन किया। सरकारी संस्थाओं से सहायता नहीं मिलने पर भी जैसे-तैसे इस परियोजना को मुट्ठी भर लोगों ने परवान चढ़ाया है। अब इस परियोजना के भावी विकास में तेज़ी लाने, इसे एक संस्था का रूप देने और धन की माँग करनेवाले कई कार्यों को अमली जामा पहनाने के लिए हाल ही में मैंने लालित्य इंटरनेशनल सेंटर फॉर आर्ट्स ऐंड कल्चर (www.lalitya.in) नामक एक गैर-सरकारी संस्था की स्थापना की है। इस संस्था का व्यापक उद्देश्य भारतीय कला व संस्कृति को प्रसारित करना है। कविता कोश के विकास हेतु जरूरी आर्थिक सहायता जुटाना भी इस संस्था के कार्यों में शुमार है। हम साहित्य-प्रेमी व्यक्तियों, सरकारी व गैर-सरकारी संस्थाओं, कंपनियों इत्यादि के जरिए इस परियोजना के विकास हेतु धन जुटाने के प्रयास कर रहे हैं। अभी तक हमें कोई विशेष सफलता हाथ नहीं लगी है, लेकिन हम भविष्य के प्रति आशावान हैं।

गद्य कोश

कविता कोश की अपार सफलता और लोकप्रियता के साथ ही पाठकों और रचनाकारों ने कहानियों के लिए भी कविता कोश जैसे ही एक कोश की माँग शुरू कर दी। मुझे अक्सर लोग कहा करते थे कि यदि कविता कोश जैसी परियोजना कहानियों के लिए भी शुरू हो जाए तो इंटरनेट पर हिंदी साहित्य की उपस्थिति में पूर्णता आ जाएगी। काव्य साहित्य का केवल आधा अंग है। कविता कोश के होने से कवियों को तो एक वैश्विक मंच मिल चुका था, लेकिन कहानीकारों को ऐसे ही एक मंच की कमी महसूस हो रही थी।

जनता की माँग को पूरा करने के लिए मैंने 2008 में गद्य कोश नामक एक नई परियोजना (www.gadyakosh.org) की शुरुआत कर दी। इस परियोजना को मैं केवल कहानियों तक सीमित नहीं रखना चाहता था, इसलिए इसके लिए सुझाए गए नाम कहानी कोश की जगह गद्य कोश नाम को वरीयता दी गई। जिस तरह कविता कोश हर काव्य विधा को अपने में समाहित करता है उसी तरह गद्य कोश की परिकल्पना भी एक ऐसे विश्व कोश के रूप में की गई जिसमें सभी गद्यात्मक विधाएँ संकलित हो सकें।

गद्य कोश की शुरुआत धीमी रही। इसका एक प्रमुख कारण कविता कोश को लगातार विकसित करने की कोशिश में मेरा व्यस्त होना रहा। अपना सारा खाली समय मैं कविता कोश को ही दे देता था और इस वजह से गद्य कोश के लिए समय नहीं निकाल पाता था। एक अन्य कारण यह था कि गद्यात्मक रचनाओं का डिजिटाइजेशन कविताओं के डिजिटाइजेशन से कहीं अधिक मुश्किल था। कविता के मुकाबले कहानी या लेख को टाइप करना मुश्किल और कहीं अधिक समय लेनेवाला काम है। इसके अलावा मेरी कुछ दुविधाएँ इस बात को लेकर भी थीं कि गद्य साहित्य के इस विश्व कोश में सारी सामग्री को किस तरह से व्यवस्थित किया जाए जिससे यह सामग्री सभी पाठकों को सुविधाजनक तरीके से उपलब्ध हो सके।

यहाँ पर मैं विकिपीडिया के बंधु प्रकल्प विकिसोर्स का जिक्र भी करना चाहूँगा। विकिपीडिया की तरह विकिसोर्स भी एक ऐसी परियोजना है जिसे विश्वभर के लोग स्वयंसेवा करते हुए मिलकर विकसित करते हैं। विकिसोर्स में कॉपीराइट मुक्त सामग्री संकलित की जाती है। यह परियोजना विकिपीडिया जितनी सफल नहीं हो सकी, लेकिन अंग्रेज़ी विकिसोर्स में फिर भी काफी सामग्री संकलित हुई है। कविता कोश की शुरुआत में कुछ लोगों ने मुझे सुझाव दिया था कि कविता कोश को विकिसोर्स पर स्थापित करना चाहिए। मैंने ऐसा करने का प्रयत्न किया भी था, लेकिन विकिसोर्स को सँभालनेवाले लोगों ने मुझे वो जरूरी अधिकार देने से इनकार कर दिया जिनकी मुझे कविता कोश की कल्पना को साकार रूप देने हेतु जरूरत थी। इसलिए मैंने कविता कोश को विकिसोर्स पर स्थापित न करके विकिया नामक एक नि:शुल्क सर्वर कर स्थापित किया। यहाँ मुझे कुछ जरूरी अधिकार मिले और इसके चलते

कार्य आगे बढ़ सका। लेकिन जल्द ही कोश के विकास हेतु कंप्यूटर प्रोग्राम में बदलावों की जरूरत भी आ पड़ी। इन बदलावों को विकिया के सर्वर पर करना संभव नहीं था, इसलिए कविता कोश को अंततः अपने अलग सर्वर पर स्थानांतरित कर दिया गया। एक अलग सर्वर पर गद्य कोश भी स्थापित किया गया। हिंदी विकिसोर्स कविता कोश के पहले से ही अस्तित्व में है, लेकिन हिंदी भाषियों ने इस परियोजना की ओर ध्यान नहीं दिया और इसे ठीक से विकसित नहीं किया। जो थोड़ी बहुत सामग्री आज हिंदी विकिसोर्स में उपलब्ध है वह बहुत अव्यवस्थित है।

गद्य कोश की शुरुआत जरूर धीमी रही, लेकिन वर्ष 2012 के आरंभ से मैंने गद्य कोश परियोजना को गंभीरतापूर्वक लेना शुरू कर दिया। इसके चलते गद्य कोश भी अब एक सुगढ़ साहित्यिक विश्व कोश का रूप ले चुका है। इसमें इस समय तकरीबन पाँच हज़ार गद्य रचनाएँ संकलित की जा चुकी हैं। अपनी रचनाओं को वैश्विक पहुँच दिलाने, विश्व कोश का हिस्सा बनाने और रचनाओं को व्यवस्थित रूप से सुरक्षित करने के लिए बहुत से नवोदित व स्थापित रचनाकार अपनी रचनाएँ गद्य कोश को लगातार भेज रहे हैं।

प्राप्त अनुभवों के आधार पर गद्य कोश को मैंने कविता कोश की तरह खुली परियोजना नहीं बनाया। गद्य कोश मेरी निजी परियोजना है। मैं लगातार कोशिश कर रहा हूँ कि कविता कोश की तरह गद्य कोश में भी रचनाकारों और पाठकों को नित नई सुविधाएँ प्रदान करा सकूँ। कविता कोश के विकास से प्राप्त हुआ ज्ञान व अनुभव गद्य कोश को बेहतर बनाने में बहुत सहायक सिद्ध हो रहे हैं।

कविता कोश और गद्य कोश इंटरनेट पर हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य के सर्वाधिक उज्ज्वल रत्न हैं। प्रत्येक माह विश्व भर से लाखों पाठक इन दोनों वेबसाइट्स पर आते हैं और साहित्य पढ़ने की अपनी प्यास को शांत करते हैं। ये परियोजनाएँ इस बात का सशक्त उदाहरण हैं कि यदि साथ मिलकर काम किया जाए तो बड़े-से-बड़े लक्ष्य हासिल किए जा सकते हैं। इन परियोजनाओं को इनके वर्तमान भव्य स्वरूप तक पहुँचाने के लिए अलग-अलग क्षेत्रों में काम करनेवाले लोगों ने श्रम किया है। एक बात जो इन सब व्यक्तियों में समान है वो यह कि ये सभी व्यक्ति हिंदी भाषा और साहित्य से प्रेम करते हैं। ये दोनों परियोजनाएँ यहाँ तक बिना किसी संगठन के आ पहुँची हैं, इसलिए ये परियोजनाएँ हिंदी भाषा से जुड़े संगठनों के लिए भी एक आदर्श उदाहरण हैं। केवल संसाधन होने से बड़े लक्ष्य नहीं पाए जा सकते। संसाधनों से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है मेहनत, योजना और योजनाओं का सटीक व तीव्र क्रियान्वयन। केवल योजनाएँ होना काफी नहीं होता, योजनाओं को वास्तविकता में बदलने के लिए सही और सक्षम लोगों को इनसे जोड़ना अति आवश्यक होता है।

कविता कोश और गद्य कोश तेज़ी से आगे बढ़ रहे हैं और इन परियोजनाओं को पाठकों व रचनाकारों का लगातार बढ़ता हुआ सहयोग समान रूप से प्राप्त हो रहा है। इसके लिए मैं इन दोनों परियोजनाएँ की ओर से विश्व भर के हिंदी भाषियों को धन्यवाद देता हूँ और हिंदी भाषा व साहित्य को विश्व मंच पर समुचित स्थान दिलाने में सहयोग देने का भरोसा दिलाता हूँ।

—ललित कुमार
हाउस नं. 679, वॉर्ड नं. 3
मेहरौली, नई दिल्ली-110030
इ-मेल : india.lalit@gmail.com

❑

सच्चरित्रता ही वह सर्वोत्तम संपत्ति है जो कोई भी व्यक्ति आनेवाली संतानों के लाभ के लिए दे सकता है।

—विवेकानंद

हिंदी कंप्यूटिंग : उपलब्धि और चुनौतियाँ

–डॉ. कविता वाचक्नवी

भाषा मनुष्य की संप्रेषण-व्यवस्था का अनिवार्य अंग है।

भाषाविज्ञानी बताते हैं कि यह जहाँ एक ओर संप्रेषण की बहुमुखी व्यवस्था है तो दूसरी ओर सोचने-विचारने का माध्यम, तीसरी ओर भाषा ही साहित्यिक सर्जना का कलात्मक साधन है। चौथे, भाषा एक सामाजिक संस्था भी है।

मनुष्य और मनुष्य को जोड़नेवाली इकाइयों में बड़ा स्थान भाषा का भी है। यह भी रोचक है कि जितने भी कारक मनुष्य और मनुष्य को जोड़नेवाले हैं, वे ही सभी कारक दूराने/अलगानेवाले भी हैं (यदि उनका प्रयोग सावधानीपूर्वक न किया जाए)। भारत जैसे बहुभाषी देश में भाषा राजनैतिक विवाद का स्थायी मुद्दा रहती आई है—बावजूद इसके कि भाषा किसी भी राष्ट्र को एकता के सूत्र में पिरोनेवाला सबसे महत्त्वपूर्ण कारक होती है और व्यक्ति एवं राष्ट्र के विकास का माध्यम भी होती है।

दुर्भाग्य रहता आया है कि भारतीयों में अपनी भाषाओं के प्रति उदासीनता की प्रवृत्ति ही बहुधा व्यवहार में प्रकट होती आई है। यह उदासीनता जहाँ हमारी अपनी भाषाओं के विकास और व्यवहार को अवरुद्ध करती है, वहीं ज्ञान-विज्ञान के द्वार बंद करके देश की उन्नति में भी बाधक बनती है। अपनी भाषा के प्रति सजगता, आग्रह और दृष्टि से हमारे पूरे भाषासमाज के विकास पर प्रभाव पड़ता है। इसीलिए अपनी भाषा के प्रति सकारात्मक और व्यापक दृष्टिकोण अपनाए बिना न तो हमारा सामाजिक विकास संभव है न ही मानसिक। व्यक्ति अपनी भाषा के माध्यम से ही अपने समाज का निर्माण करता है और उसी के माध्यम से परंपरा से संबद्ध होकर अपना व अपने समाज का भविष्य तय करता है। यह सही है कि आततायियों ने भारत के साहित्य, कला, संस्कृति एवं पारंपरिक ज्ञान-विज्ञान को विनष्ट और ध्वस्त करके इसकी चिंतन परंपरा को बाधित व खंडित किया, किंतु यह भी सही है कि स्वतंत्र भारत को समृद्ध, सशक्त, गरिमामय, समर्थ और अग्रणी बनाने के लिए, स्वतंत्रता को स्थायी और सुनिश्चित बनाए रखने के लिए और आधुनिक विश्व-बाज़ार में अपनी पकड़, पैठ व सामर्थ्य सिद्ध करने के लिए देश की अपनी भाषाओं के माध्यम से ही व्यक्ति-व्यक्ति की ऊर्जा की संतुलित और संपूर्ण भागीदारी संभव होगी। लगभग 20 राष्ट्रीय भाषाओंवाले देश के लिए कार्य के स्तर पर इसे साध पाना कोई बड़ी चुनौती नहीं है, किंतु हमारी अपनी मानसिकता में बसी उदासीनता के चलते यह लगभग दुष्कर सा प्रमाणित होता आया है।

हम भाषा का प्रयोग अभिव्यक्ति, संप्रेषण अथवा उसके प्रति आग्रह की भावना से करने की अपेक्षा आवश्यकता (और कभी-कभी तो स्वार्थ) से प्रेरित होकर करने लगे हैं। वह ज्ञान-विज्ञान की वाहिका न बनकर मात्र अर्थोपार्जन की बलि चढ़ गई। जब भाषा प्रयोग का उद्देश्य संप्रेषण व अभिव्यक्ति से इतर,

- **जन्म :** अमृतसर (भारत)।
- पंजाबी, हिंदी, संस्कृत, मराठी और अंग्रेज़ी भाषा की जानकार तथा संस्कृत में शास्त्री व हिंदी में एम.ए. के अतिरिक्त, समाज-भाषाविज्ञान तथा काव्यालोचना पर क्रमशः एम.फिल और पी-एच.डी.।
- पत्र-पत्रिकाओं, संकलनों, अंतर्जाल पर संकलित और प्रकाशित रचनाओं के अलावा प्रकाशित पुस्तकें हैं—'महर्षि दयानंद और उनकी योग निष्ठा' [शोध, 1984], 'मैं चल तो दूँ' [कविता, 2005], 'समाज भाषाविज्ञान: रंग शब्दावली : निराला काव्य' [शोध-समीक्षा, 2009] तथा 'कविता की जातीयता' [शोध-समीक्षा, 2009]। इनके अतिरिक्त उन्होंने कहानी, कविता आदि में भी अपना योगदान दिया।
- स्त्रीविमर्श व साहित्य-क्षेत्र में विशिष्ट कार्य। अनेक सारस्वत सम्मानों और पुरस्कारों से सम्मानित।
- **संप्रति :** वे ब्रिटेन (लंदन) में रहकर स्वतंत्र लेखन और भारतीय जीवनमूल्यों के प्रचार-प्रसार में व्यस्त हैं।

मात्र अर्थोपार्जन या प्रतिष्ठा का प्रश्न जैसा बन गया तो सहज ही था कि उस भाषासमाज में असंवाद की स्थितियाँ उत्पन्न हो गईं। मनुष्य के एकाकी होते चले जानेवाले आधुनिक समय में तकनीक का विकास मानो चरम पर है। इन सारी आधुनिक सुविधाओं व संसाधनों के मध्य, पारस्परिकता की सहज मानवीय अपेक्षा के चलते अपने-अपने भाषासमाज के प्रयोक्ताओं से संवाद स्थापित करने की आवश्यकता स्वत: ही रेखांकित हो जाती है। दूसरे, वैश्वीकरण, ग्लोबलाइजेशन या विश्वग्राम की सभ्यता के इस युग में वही टिका रहेगा जो जितना समर्थ होगा··सामर्थ्य को प्रमाणित करेगा। जो ऐसा न कर पाया, वह भाषासमाज पिछड़ जाएगा। जब तक देश के साधारण व्यक्ति तक उसकी अपनी भाषा में सूचना क्रांति के लाभ न पहुँचेंगे तब तक उससे वाणिज्यिक, आर्थिक अथवा किसी अन्य संबद्ध क्षेत्र की उन्नति में भागीदारी की अपेक्षा कैसे की जा सकती है? कैसे वह स्वयं या अपने देश को इस वैश्वीकरण के काल में स्थिर टिकाए रख सकने में भागी बनेगा?

अभिप्राय यह है कि आज किसी प्रकार की कोई बाधा, नेट के प्रयोक्ताओं को हिंदी कंप्यूटिंग के मार्ग में नहीं है। इस सारे खुले खज़ाने के होते हुए भी यदि अपनी भाषाओं में काम न करने या न कर सकने का राग अलापा जाए तो वह किसी छद्म से बढ़कर नहीं है।

प्रौद्योगिकी के अधुनातन संदर्भों में हमारी भाषाएँ और लिपियाँ यद्यपि अपना-अपना सामर्थ्य और सक्षमता प्रमाणित कर चुकी हैं पुनरपि इनके सक्षम स्वरूप को स्थापित करने का आग्रह और प्रयत्न भाषासमाज में न्यूनाधिक विचार व मीमांसा का प्रश्न है।

इधर तकनीक और इंटरनेट के युग में हिंदी का परिदृश्य कुछ-कुछ निरंतर बलवती होती उस इच्छा जैसी ही है जो जितनी तीव्र होगी उतने ही अपने लिए पूर्ति के मार्ग संभव कर लेगी; क्योंकि तकनीकी दृष्टि से अब इसमें कुछ भी असंभाव्य जैसा नहीं रहा। समस्त तकनीकी प्रकल्प कैसे व कब संभव हुए, उनके उल्लेख को एक ओर करते हुए यदि आज का आकलन करें तो कंप्यूटर पर हिंदी के अनुप्रयोग से जुड़ी लगभग समस्त बाधाएँ निरस्त हो चुकी हैं। कंप्यूटर-निर्माण से जुड़ी विदेशी कंपनियों तक ने अब इस संसाधन को हिंदी व भारतीय भाषाओं में कार्य करने में सहज, बोधगम्य व बिना किसी अतिरिक्त मूल्य के तैयार सौंपा है। ऐसे-ऐसे उच्च तकनीकवाले समुन्नत सॉफ्टवेयर (यूनिकोड, मशीनी अनुवाद, ओपन टू टाइप फॉन्ट्स, ग्राफिक यूजर इंटरफेस, ओ.सी.आर., प्रेडिक्टिव टेक्स्ट इनपुट, ऑफिस सूट, टेक्स्ट टू स्पीच, सर्च इंजन, ट्रांसलेटेड सर्च, लिप्यंतरण, स्पेल चेकर, ब्राउजर व ऑपरेटिंग सिस्टम में भाषा-चयन की सुविधा, सोशल नेटवर्किंग तक में भाषा चयन की सुविधा आदि) नि:शुल्क संभव हो गए हैं कि बस कहीं भी कभी भी हाथ में लैपटॉप या कंप्यूटर आए और बस बच्चा भी तत्परता से झट हिंदी में काम कर सकता है। किंतु खेद का विषय है कि समस्त संसाधनों से युक्त, हिंदी-भाषासमाज के प्रयोक्ता ही अभी अपने नेट के क्रियाकलापों में हिंदी के प्रयोग से अचकचाते हैं। संसाधन की दृष्टि से भाषाई कंप्यूटिंग को संभव व प्रचारित करने की मुख्य दो चुनौतियाँ थीं। पहली यह कि तकनीक सरल, सुबोध, सुग्राह्य और सुलभ हो (जितने अधिक प्रयोक्ता होते उतना ही यह अधिक संभव होता) तथा दूसरी यह कि अधिकाधिक लोग (अपितु समूचा भाषासमाज) उस तकनीक का प्रयोग सुनिश्चित करें। किसी भी प्रौद्योगिकी के बने रहने की अनिवार्यता उसके विस्तार में निहित रहती है।

1983 में जब भारत में कंप्यूटर की आहट थोड़े बड़े पैमाने पर हुई तो स्वयं मैं उन दिनों पिलानी में ही थी, पतिदेव प्रिंस्टन विश्वविद्यालय में एक मैथेमैटिकल मॉडल ईस्वी सन् 1979 में ही कंप्यूटर के लिए बनाकर ख्याति पा चुके थे। इस प्रकार बहुत पहले यह सुन-जान लिया था कि विशेषज्ञ देवनागरी को कंप्यूटर के सर्वाधिक अनुकूल बताते हैं। परंतु सदा से यह जिज्ञासा मन में बनी रहती थी कि तब कोई इसे संभव करता क्यों नहीं। आज यह सब संभव हो चुका है। यह रेखांकित करना रोचक होगा कि आज यही सक्षम लिपि हमारी अपनी भाषाओं का निर्वहन-नियोजन इस प्रकार प्रखरता से कंप्यूटर की दुनिया में कर रही है कि मानो कोई क्षेत्र अब इससे अछूता नहीं है। आज हिंदी में कंप्यूटर प्रयोग करनेवालों के लिए अथवा हिंदी भाषासमाज के लिए कंप्यूटर के संसार में शब्दकोश (हिंदी, हिंदी-इंगलिश, इंगलिश-हिंदी) समांतर कोश, बृहद् द्विभाषी कोश अरविंद लैक्सिकन, अनुवाद की सुविधा, पारिभाषिक शब्दावलियाँ, लिप्यंतरण की सुविधा,

यूनिकोड (इनस्क्रिप्ट/ फोनेटिक/ रेमिंगटन, ऑनलाइन/ ऑफलाइन), यूनिकोड से पूर्व के लगभग प्रत्येक फॉन्ट के लिए और उर्दू > देवनागरी > उर्दू अथवा बर्मी > देवनागरी > बर्मी इत्यादि जैसे भी) फॉन्ट परिवर्तक (कंवर्टर), ब्लॉग संकलक (एग्रेगेटर), दृष्टिबाधितों के लिए देवनागरी में तकनीकी सुविधाएँ (यूनिकोड से ब्रेल > यूनिकोड रूपांतरण), हिंदी के लगभग सभी समाचार-पत्र, हिंदी की लगभग सभी बड़ी पत्र-पत्रिकाएँ, चर्चा समूह/ डिस्कशन-फोरम, हिंदी में विकिपीडिया, साहित्य का अद्‌भुत संग्रह (महात्मा गांधी अ.हि.वि.वि. द्वारा अकूत साहित्य तथा कविताकोश द्वारा अमीर खुसरो से अद्यतन लगभग 50 हज़ार कविताओं का संचयन, व्यक्तिगत प्रयासों व नेट पत्रिकाओं का इनसे अतिरिक्त), ट्रांसलेटेड सर्च व ट्रांसलिट्रेटेड सर्च सुविधा, वाचांतर, वर्तनी शुद्धिकरण यंत्र, ऑनलाइन पुस्तकालय, लगभग 30 हज़ार स्वतंत्र नि:शुल्क ब्लॉग (जिनमें विज्ञान, साहित्य, गणित, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, साहित्य, भौतिकी, इतिहास, खगोलशास्त्र से लेकर बच्चों के विषय, पाककला व कामशास्त्र तक पर धड़ल्ले से खूब लिखा जा रहा है), मुहावराकोश तथा अत्यंत दुर्लभ पुस्तकों की पूरी की पूरी स्कैन प्रतियाँ, नए प्रकाशनों की जानकारी, देश-विदेश में इंटरनेट के माध्यम से हिंदी पुस्तकों की खरीदारी की व्यवस्था, हिंदी में विज्ञापन जैसी अनेक सुविधाएँ सरलता से उपलब्ध हैं।···और आश्चर्य की बात यह भी है कि लगभग ये सभी नि:शुल्क हैं। मात्र स्पीच टू टेक्स्ट की सुविधा सशुल्क होने के अतिरिक्त सब खुला उपलब्ध है। और तो और, लगभग सभी स्मार्टफोन तक को भी हिंदी सक्षम बनाने की प्रणालियाँ विकसित हो चुकी हैं।

प्रयोक्ता, क्षेत्र और परिवेश के अनुसार भाषा प्रयोग में भिन्नता के नए रोचक तथ्य संकलित करने हों तो किसी सोशल नेटवर्किंग साईट (यथा फेसबुक आदि) पर हो रहे भाषा प्रयोगों पर दृष्टि दौड़ाई जा सकती है। द्विभाषिकता, बहुभाषिकता, कोड मिश्रण, कोड परिवर्तन, पिजिन, क्रियोल, भाषाद्वैत जैसी प्रक्रियाओं के उदाहरण दिखने लग सकते हैं।

अर्थात, अभिप्राय यह है कि आज किसी प्रकार की कोई बाधा, नेट के प्रयोक्ताओं को हिंदी कंप्यूटिंग के मार्ग में नहीं है। इस सारे खुले खज़ाने के होते हुए भी यदि अपनी भाषाओं में काम न करने या न कर सकने का राग अलापा जाए तो वह किसी छद्म से बढ़कर नहीं है।

किंतु किसी भी प्रकार हो, अब भाषायी कंप्यूटिंग की दिशा में, कर्तव्य समझकर सभी को योगदान देना है। कम-से-कम और कुछ नहीं तो एक प्रयोक्ता की संख्या में अभिवृद्धि ही होगी, जिससे हिंदी का बाज़ार बनता देख बड़ी कंपनियाँ नए-नए संसाधन विकसित करने को प्रेरित होंगी, क्योंकि वैश्वीकरण के इस काल में भारत का जो बड़ा बाज़ार बहुराष्ट्रीय कंपनियों की दृष्टि में है उस पर कब्जा करने के लिए उन्हें हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देना अपरिहार्य है।

भले अभिव्यक्ति के लिए, सरलता के लिए, वैचारिक आदान-प्रदान के लिए, आत्मप्रचार से लेकर व्यापक सैद्धांतिकी के प्रचार हेतु, संस्कृति, साहित्य, ज्ञान-विज्ञान के प्रति सन्नद्धता वश, सामाजिकता / नेटवर्किंग, बाज़ार के लाभ, भाषाई अस्मिता, आग्रह और प्रतिबद्धता / अपनी भाषाओं लिपियों को मान्यता देने दिलाने के संकल्पवश, साधारण सामान्य व्यक्ति के सशक्तीकरण / जनजागृति अथवा भारतीय अर्थव्यवस्था में भागीदारी के उद्‌देश्य आदि से; किंतु किसी भी प्रकार हो, अब भाषायी कंप्यूटिंग की दिशा में, कर्तव्य समझकर सभी को योगदान देना है। कम-से-कम और कुछ नहीं तो एक प्रयोक्ता की संख्या में अभिवृद्धि ही होगी, जिससे हिंदी का बाज़ार बनता देख बड़ी कंपनियाँ नए-नए संसाधन विकसित करने को प्रेरित होंगी, क्योंकि वैश्वीकरण के इस काल में भारत का जो बड़ा बाज़ार बहुराष्ट्रीय कंपनियों की दृष्टि में है उस पर कब्जा करने के लिए उन्हें हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देना अपरिहार्य है।

···और हमारे लिए भाषा, साहित्य और संस्कृति के त्रिक् की साधना।

—31, एप्सटीन रोड,
एस.इ. 288 डी. क्यू. यू.के. लंदन
ईमेल : kavita.vachaknavee@gmail.com

❑

25

निकट आती ई-बुक क्रांति और मुहाने पर हिंदी

–बालेंदु शर्मा दाधीच

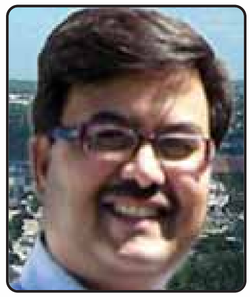

- प्रमुख हिंदी वेब पोर्टल प्रभासाक्षी.कॉम के समूह संपादक, सूचना प्रौद्योगिकी के विशेषज्ञ तथा तकनीकी विषयों के चर्चित लेखक हैं।
- उनकी गणना हिंदी और तकनीक के बीच अनुकूलता विकसित करने में जुटे हिंदी-सेवियों में होती है। हिंदी भाषियों के तकनीकी सशक्तीकरण की दिशा में उन्होंने बहुपक्षीय प्रयास किए हैं।
- उन्हें माइक्रोसॉफ्ट मोस्ट वेल्यूएबल प्रोफेशनल, दिल्ली सरकार के 'ज्ञान प्रौद्योगिकी पुरस्कार', 'राजीव गांधी एक्सीलेंस अवार्ड', 'अक्षरम आई.टी. सम्मान' आदि, अनेक पुरस्कार व अलंकरण प्राप्त हो चुके हैं।
- वे हिंदी के प्रारंभिक ब्लॉगरों में से एक हैं और ई-बुक संस्कृति को बढ़ावा देनेवाली परियोजना ईप्रकाशक.कॉम के प्रेरक भी हैं।
- श्री दधीच ने विंडोज सहित माइक्रोसॉफ्ट के कई उत्पादों के हिंदीकरण की प्रक्रिया में भी हाथ बँटाया है।

जॉर्ज लोपेज का मशहूर उद्धरण है—"जब समय प्रतिकूल हो तो वह अपने आप को नए ढंग से परिभाषित करने का सही समय है (When things are bad, it is the best time to reinvent yourself.") पुस्तकों के बारे में यह बात कितनी सच है! टेलीविजन, मोबाइल और इंटरनेट के दौर में ज्यों-ज्यों दुनिया एकाकी और डिजिटाइल्ड होती चली गई, पुस्तकों के सामने मौजूद संकट गहराता चला गया। दस हजार, पाँच हजार के प्रिंट ऑर्डरवाली पुस्तकें सिमटते हुए पहले दो-तीन हजार और हिंदी के संदर्भ में कहें तो महज 500 तक आ पहुँचीं। जिस तकनीकी तरक्की को देखकर हममें से ज्यादातर लोग मुग्ध और चकित थे, वही तकनीकी तरक्की बहुत सी पारंपरिक चीज़ों के लिए अस्तित्व का संकट लेकर आ गई थी।

लेकिन जैसा कि लोपेज ने कहा, जब अस्तित्व का संकट खड़ा होता है तो चीज़ें अपने आपको पुनर्जीवित करने की ज़ोरदार कोशिश करती हैं। तब वे अपनी सारी ताकत इकट्ठी करके और बहुत कुछ नया सीखकर खुद को प्रासंगिक बनाने की जद्दोजहद में जुटती हैं। चाहे वे भाषाएँ हों, रुचियाँ हों या फिर अच्छी आदतें। पुस्तकों ने भी अपने आपको पुनर्परिभाषित, नए सिरे से पेश किया है। यह अपना अस्तित्व बचाने की पुस्तक की जिजीविषा है, जो ई-बुक के रूप में सामने आई है। यह अपना महत्त्व, अपनी प्रासंगिकता बनाए रखने की उसकी अद्वितीय कोशिश है।

पुस्तकों के मामले में दुनिया की सबसे बड़ी ऑनलाइन मार्केटिंग कंपनी अमेजन का ताजा आँकड़ा हमारी आँखें खोल देता है। अमेजन अमेरिका, जो कि दोनों तरह की करोड़ों पुस्तकें बेच चुकी है, ने पिछली एक अप्रैल को घोषणा की कि अब वह हर सौ मुद्रित पुस्तकों के अनुपात में 105 ई-बुक्स बेच रही है। और अभी पिछले पाँच अगस्त को ब्रिटेन से ऐसी ही खबर आई। अमेजन यू.के. ने घोषणा की कि उसने हर 100 मुद्रित पुस्तकों के मुकाबले 114 ई-बुक्स बेची हैं। इन आँकड़ों से मिलनेवाला संदेश शीशे की तरह साफ है। ई-बुक्स न सिर्फ लोकप्रिय हो रही हैं बल्कि उन्होंने पारंपरिक पुस्तकों को पीछे छोड़ना शुरू कर दिया है। ब्रिटिश लेखक ई.एल. जेम्स की दो 'अलग' किंतु बहुचर्चित पुस्तकें हैं—'फिफ्टी शेड्स ऑफ ग्रे' और 'फिफ्टी शेड्स डार्कर', जो ई-बुक्स के रूप में उपलब्ध हैं। पिछले चार महीनों में इन दोनों पुस्तकों की कुल बीस लाख प्रतियाँ खरीदी गई हैं।

ई-बुक या इलेक्ट्रॉनिक बुक से मतलब ऐसी पुस्तक से है, जो डिजिटल फॉरमैट में उपलब्ध है। जब तक खोला न जाए, तब तक सिर्फ एक कंप्यूटर फाइल। लेकिन खोलते ही हूबहू एक मुद्रित पुस्तक जैसी। ई-बुक्स को कंप्यूटर, लैपटॉप, टैबलेट, नेटबुक और स्मार्टफोन पर पढ़ा जा सकता है। यदि आप चाहें तो ऐसे खास उपकरण खरीद सकते हैं, जो सिर्फ ई-बुक्स पढ़ने के लिए ही बने हैं। इन्हें ई-बुक रीडर कहा जाता है। जिस तरह आई-पॉड ने संगीत की दुनिया में क्रांति करते हुए उसे करोड़ों लोगों की जेब तक पहुँचा दिया था, उसी तरह किंडल जैसे ई-बुक्स रीडर्स पुस्तकों को हमारे पास ले आए हैं। एक छोटी सी डिजिटल युक्ति में हजारों पुस्तकें समा सकती हैं। आगे चलकर हर मोबाइल फोन में भी ई-बुक्स को पढ़ने की सुविधा आ जाएगी।

जाहिर है, साहित्य और लेखन की दुनिया में ई-बुक्स एक तूफान की तरह देखी जा रही है। आज भारत भी इस क्रांति के मुहाने पर खड़ा है। हमारे देश में भी ई-बुक्स का प्रकाशन होने लगा है, ऐसे लेखक उभरने लगे हैं, जो ई-बुक्स को ही अपनी बात कहने का प्रधान माध्यम बना रहे हैं। ई-बुक्स के बेस्टसेलर चार्ट सामने आने लगे हैं। हिंदी भी इससे अछूती नहीं है। रवींद्रनाथ टैगोर की 'गीतांजलि' से लेकर शशि थरूर की हाल ही में रिलीज हुई 'पैक्स इंडिका' तक के ई-बुक संस्करण उपलब्ध हैं। अमेजन की वेबसाइट पर नजर डालिए तो हिंदी में भी कई ई-बुक्स दिखाई देंगी—'प्रेमचंद का संपूर्ण साहित्य', 'जातक कथाएँ', 'पंचतंत्र' और बहुत सारे दूसरे बाल साहित्य।

अशोक बैंकर भारत के ही एक लेखक हैं, जिन्होंने 12 भाषाओं में 70 पुस्तकें रिलीज की हैं और भारत के बेस्टसेलर ई-बुक लेखक हैं। कैरी विल्किंसन, ली चाइल्ड, जेम्स पैटरसन, स्टीग लारसन जैसे विदेशी लेखकों से लेकर शशि थरूर, चेतन भगत, रोमिला थापर, सुनील खिलनानी, मार्क टली, डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम, आर.के. नारायण और सिद्धार्थ देव जैसे लेखक ई-बुक्स को अपना चुके हैं। यदि आप भी लेखक हैं और संभावनाओं से भरी रोमांचक वर्चुअल दुनिया के पाठकों तक पहुँचाना चाहते हैं तो आपकी ई-बुक के लिए यह सही मौका है।

एक प्रायोगिक मुहिम

लेकिन ज्यादातर ई-बुक्स अंग्रेजी या पश्चिमी दुनिया की भाषाओं में ही दिखेंगी, फिर भले ही वह अमेजॉन कॉम हो या फिर एपल या गूगल के ऑनलाइन स्टोर। क्या कोई तकनीकी रुकावट है, जो हिंदी में लोगों को यह रास्ता अपनाने से रोकती है? हाँ, रास्ता हिंदी से जुड़ा है तो कुछ-न-कुछ अवरोधों का सामने आ खड़े होना लाजिमी है। पहली समस्या है—हिंदी भाषियों के बीच स्मार्टफोन, टैबलेट्स, कंप्यूटर, लैपटॉप, ई-बुक रीडर वगैरह की संख्या का सीमित होना, जिन पर इन पुस्तकों को पढ़ा जाता है। दूसरा, हिंदी पाठकों के बीच पुस्तकें खरीदने की प्रवृत्ति का स्तर उत्साहजनक नहीं है। जब मुद्रित पुस्तकों की बिक्री ही बहुत सीमित है तो लेखकों-प्रकाशकों के बीच यह आशंका उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि डिजिटल स्वरूपवाली पुस्तकें कितनी खरीद ली जाएँगी। हालाँकि इस आशंका से आप सहमत ही हों, यह आवश्यक नहीं, क्योंकि पुस्तक के दोनों स्वरूपों की अलग-अलग पहचान और अलग-अलग बाज़ार हो सकता है।

तीसरी समस्या तकनीकी है। हिंदी में मानकीकृत ढंग से ई-बुक प्रकाशित करनी है तो यूनिकोड एनकोडिंग का इस्तेमाल वांछित है। खास तौर पर इसलिए कि अलग-अलग देशों में भिन्न-भिन्न डिजिटल उपकरणों पर अलग-अलग ऑपरेटिंग सिस्टमों पर काम करनेवाले उपयोक्ताओं को वह ई-बुक एक समान ढंग से उपलब्ध होनी चाहिए। यूनिकोड ही है, जो यह सुनिश्चित कर सकता है। लेकिन अधिकांश ई-बुक निर्माण सॉफ्टवेयर और वेब सेवाएँ यूनिकोड आधारित ई-बुक्स तैयार करने में अड़चन महसूस करते हैं।

ई-प्रकाशक (eprakashak.com) के रूप में एक प्रयोग शुरू हुआ, हिंदी में यूनिकोड आधारित ई-बुक्स के निर्माण और वितरण का। प्रारंभ में गज़ल संग्रह 'सविता असीम की चंद गज़लें', ब्रिटिश लेखिका जय वर्मा के काव्य संकलन 'सहयात्री हैं हम' और लेखक (बालेंदु शर्मा दाधीच) की मॉरीशस यात्रा के संस्मरणों पर आधारित यात्रा-वृत्तांत 'मॉरीशस : छोटा भारत' को ई-बुक की शक्ल में जारी किया गया। जोहांसबर्ग में हुए विश्व हिंदी सम्मेलन के दौरान भारत की विदेश राज्य मंत्री श्रीमती प्रणीत कौर ने इन सभी पुस्तकों का लोकार्पण किया। हिंदी की दुनिया में यह एक नए अध्याय की शुरुआत थी। तकनीक से लैस ई-बुक्स भी मुद्रित पुस्तकों के कंधे से कंधा मिलाते हुए आ खड़ी हुई थीं।

जोहांसबर्ग में ही 'मॉरीशस : छोटा भारत' को मॉरीशसीय पाठकों के लिए लोकार्पित किया मॉरीशस के कला एवं संस्कृति मंत्री श्री मुकेश्वर चुन्नी ने, जिन्होंने दोनों देशों को जोड़नेवाले ऐसे प्रयोगों तथा प्रयासों को बढ़ावा देने की आवश्यकता पर बल दिया, विशेषकर उस भाषा में, जो दोनों के लिए अपनी है। विश्व हिंदी सचिवालय की महासचिव श्रीमती पूनम जुनेजा और उप-महासचिव श्री गंगाधर सिंह सुखलाल की उपस्थिति में यह संक्षिप्त कार्यक्रम संपन्न हुआ।

एक प्रयोग सफल रहा और हिंदी की तथाकथित तकनीकी सीमाओं के बारे में एक और गलतफहमी के शमन में सफलता प्राप्त हुई। परियोजना जारी है और धीरे-धीरे और भी लेखक जुट रहे हैं अपनी पुस्तकों को ई-बुक के रूप में ऑनलाइन विश्व में वितरित करने के लिए कैलाश बुधवार, अजय भाम्भी, स्मिता मिश्र। हिंदी के प्रकाशक भी इस दिशा में आकर्षित हुए हैं। हालाँकि अभी लंबा सफर तय करना बाकी है।

दुनिया बदल रही है

पुस्तकों की दुनिया बदल रही है। उन्हें लिखने, पढ़ने, सहेजने और उपहार में देने के तौर-तरीके बदल रहे हैं। बहुत से लोग, विशेषकर प्रकाशकों के बीच इस ई-बुक विस्फोट को लेकर आशंकाएँ भी पैदा हुई हैं। ई-बुक्स का तेज़ी से आता सुनामी कहीं उनके लिए अस्तित्व का संकट तो खड़ा नहीं कर देगा? लेकिन ये बदलते वक्त की रिवायतें हैं, जिन्हें आना ही है। दुर्भाग्य से आधुनिक समय के साथ आगे बढ़ने के मामले में हमारा प्रकाशन उद्योग उतना चुस्त-चपल नहीं रहा। वह आज भी पंद्रह-बीस साल पुराने तौर-तरीकों, पद्धतियों और तकनीकों का इस्तेमाल कर रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी के युग में, जब हर पल नई चीज़ें ईजाद हो रही हैं, नए बिजनेस मॉडल तैयार हो रहे हैं और विषयवस्तु को ग्रहण करने के नए माध्यम उभर रहे हैं, उन्हें बहुत प्रतिद्वंद्वी रुख अपनाने की जरूरत है। यदि आप इस धारा के साथ

खड़े होते हैं तो ई-बुक्स की क्रांति आपके लिए नए अवसर लेकर आई है। पूरी दुनिया आपका बाज़ार हो सकती है। लेकिन यदि आप पुराने तौर-तरीकों में ही सुविधा महसूस करते हैं और जोखिम लेने के लिए तैयार नहीं हैं तो पीछे छूट जाएँगे।

चाहे प्रकाशन उद्योग हो या फिर लेखकों की दुनिया, ई-बुक आपके लिए चुनौती जरूर लाई है। लेकिन वह उपहार में जितने प्रचंड अवसर प्रदान कर रही है, उसके मुकाबले यह चुनौती कुछ भी नहीं है और वह चुनौती है, तकनीक को अंगीकार करने की चुनौती; क्योंकि आपके-हमारे आस-पास, हमारे इर्द-गिर्द, हमारी आँखों के सामने और हमारे हाथों में सूचना व संचार की ऐसी क्रांति घटित हो रही है, जिससे दूरी बनाए रखना कोई विकल्प नहीं है। यह क्रांति बहुत ताकतवर है। वह अनगिनत चीज़ों, अनगिनत आदतों और परिपाटियों को इतिहास के कूड़ेदान के हवाले कर चुकी है। वह जो तकनीकें

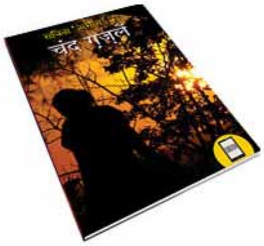

सविता 'असीम' की चंद ग़ज़लें
लेखिका : सविता 'असीम'

सहयात्री हैं हम
लेखिक : जय वर्मा

मॉरीशस : छोटा भारत
लेखक : बालेंदु शर्मा दाधीच

लाई हैं, वे न सिर्फ ताकतवर हैं बल्कि लगातार अपने आपको पुनर्परिभाषित कर रही हैं। अपने आसपास ही नजर डालिए, आप देखेंगे कि डिजिटल उपकरण आकार में जितने छोटे होते जा रहे हैं, क्षमताओं में उतने ही बड़े। आज हर हाथ में टैबलेट और स्मार्टफोन है, जो अपने आप में न सिर्फ एक पूरा-का-पूरा कंप्यूटर है, बल्कि टेलीविजन, म्यूजिक प्लेयर, कैमरा और टेलीफोन भी है। और उसी के भीतर मौजूद है पुस्तकों की एक अद्‌भुत दुनिया। एक पूरा-का-पूरा पुस्तकालय। हमेशा आपके साथ, आपकी जरूरत के लिहाज से पढ़े जाने के लिए तैयार। तकनीकी दुनिया में इसे ऑन-डिमांड (जब माँगो तब हाजिर) क्रांति कहा जाता है।

लेखकों, कवियों, प्रकाशकों, पाठकों, शिक्षकों, छात्रों, पत्रकारों, विद्वानों, तकनीकविदों, भाषाविदों, कोशकारों और आम लोगों को भी इस तकनीकी परिघटना को समझना है। हममें से हर एक के लिए इसमें कुछ-न-कुछ मौजूद है। लेखक अपनी प्रकाशकीय बाधाओं और उबाऊ इंतजार से मुक्त हो सकते हैं, क्योंकि ई-बुक का निर्माण मुद्रित पुस्तक की अपेक्षा दसवाँ हिस्सा मात्र है और बाज़ार दस गुना ज्यादा बड़ा। छात्रों के लिए उच्च कोटि की पुस्तकों को सस्ती दरों पर डाउनलोड करने का अवसर है और संस्थानों के लिए अपनी सूचनाओं का आसान डॉक्यूमेंटेशन करने की सुविधा। जरूरी नहीं कि आप पुस्तक के लिए कुछ महीने या कुछ साल काम करें। यदि आपने पाँच अच्छे लेख और बीस अच्छी कविताएँ लिखी हैं तो उनकी भी ई-बुक संभव है, क्योंकि यहाँ पुस्तक की मोटाई कोई पैमाना नहीं है। वह होना भी नहीं चाहिए। लोकप्रियता का अगर कोई पैमाना है तो वह है—विषयवस्तु। वह जितना समृद्ध, नया, दिलचस्प, गहरा और दमदार होगा, ई-बुक की सफलता के आसार उतने ही बढ़ जाएँगे। ई-बुक्स का सौंदर्य यह है कि उन्होंने पाठक और पुस्तक के बीच मौजूद तमाम दीवारें खत्म कर दी हैं। पाठक सीधे पुस्तक तक पहुँचता है और डाउनलोड कर लेता है। लेखक और पाठक दोनों के लिए इससे अच्छा और क्या होगा?

प्रकाशकों को चिंतित होने की जरूरत नहीं है। ई-बुक्स उनके लिए नए अवसर लेकर आई हैं। हर लोकप्रिय पुस्तक का ई-बुक संस्करण लाकर वे न सिर्फ खुद लाभ उठा सकते हैं, बल्कि उसे लेखक तक भी पहुँचा सकते हैं। इसके लिए जरूरी है पुस्तक के मुद्रित और डिजिटल स्वरूपों के बीच तालमेल पैदा करना। ई-प्रकाशक कॉम जैसे संस्थान, जिनकी प्रधान प्रकृति व्यावसायिक नहीं है, बहुत कम कीमत पर मुद्रित पुस्तकों को ई-बुक्स में बदल रहे हैं।

पेंग्विन इंडिया ने हाल ही में 250 अंग्रेजी ई-बुक्स जारी की हैं। हार्पर कॉलिंस, पुस्तक महल, डी.सी. बुक्स वगैरह भी अपनी पुस्तकें ई-बुक फॉरमैट में रिलीज कर रहे हैं। जब सत्तर फीसदी भारतीयों के पास मोबाइल फोन या दूसरी डिजिटल डिवाइस है तो प्रकाशक भी उन तक पहुँचना चाहेंगे और लेखक भी।

इतनी खास कैसे

जिस रफ्तार से डिजिटल तकनीकों का फैलाव हो रहा है और लोगों की मशरूफियत बढ़ रही है, उस लिहाज से ई-बुक्स की लोकप्रियता का बढ़ना तय है। लोगों के पास पुस्तकें खरीदने के लिए बुकस्टोर तक जाने का समय नहीं है और न ही इत्मीनान से पुस्तक पढ़ने की फुरसत। ई-बुक्स को इंटरनेट से डाउनलोड करना कुछ क्लिक्स का ही काम है, इसलिए पुस्तक खरीदने की सहूलियत बहुत है। फिर ये छपी पुस्तकों की तुलना में सस्ती भी हैं और कई तरह की सुविधाजनक सबस्क्रिप्शन योजनाएँ उपलब्ध हैं।

अगर आपने हैरी पॉटर की फिल्में देखी हैं तो इन फिल्मों में दिखने वाले खास अखबारों, पुस्तकों में लगी तसवीरों पर नजर जरूर गई होगी, जो स्थिर नहीं बल्कि चलने-फिरने और बोलने वाली तसवीरें हैं। बड़ी असंभव सी मगर दिलचस्प कल्पना है वह। अब जरा ई-बुक्स पर नजर डालिए। क्या ये वैसी ही नहीं हैं?

ई-बुक में छपी पुस्तकों जैसी सारी खूबियाँ (मुद्रित पाठ, चित्र, तालिका वगैरह) तो हैं ही, ऐसी भी कई खासियतें हैं जो पुस्तकों के पास हो ही नहीं सकतीं। ये ऐसी पुस्तकें हैं, जिन्हें ज्यादा दिलचस्प और दमदार बनाने के लिए ऑडियो और वीडियो भी शामिल किए जा सकते हैं। पेजों को आपस में जोड़ने (लिंक करने) की सुविधा भी है। कुछ विशेषताओं पर दृष्टि डालना प्रासंगिक होगा—

- टेक्स्ट और चित्रों के साथ-साथ ऑडियो-वीडियो भी शामिल करना संभव
- तकनीकी अनुवाद सुविधाओं का इस्तेमाल संभव
- टेक्स्ट टू स्पीच के जरिए पुस्तकों की सामग्री सुनना संभव
- छपी पुस्तकों की तुलना में सस्ती
- डाउनलोड के जरिए तुरंत उपलब्ध, डाक से डिलीवरी की जरूरत नहीं
- एक ही उपकरण में हजारों ई-बुक रखना संभव
- दूसरे पाठकों से टिप्पणियाँ साझा करना संभव
- पर्यावरण के लिहाज से अनुकूल, कागज-स्याही का इस्तेमाल नहीं
- वाइस के आकार के मुताबिक बदल जाता है पुस्तक का साइज
- मुद्रित पाठ (टेक्स्ट) को छोटा-बड़ा करने की सुविधा
- भीतर की सामग्री की खोज (सर्च) संभव
- पारंपरिक पुस्तकों की ही तरह बुकमार्क करना संभव
- लाखों ई-बुक्स बिलकुल फ्री उपलब्ध
- पुरानी पुस्तकों को हमेशा के लिए सहेजना संभव
- कभी भी आउट ऑफ प्रिंट नहीं होती
- भविष्य में सामग्री को अपडेट या संशोधित करना संभव
- प्रकाशन पर लागत काफी कम

दो तरह के मॉडल

ई-बुक्स के मामले में दोनों तरह के मॉडल चल रहे हैं। मुद्रित पुस्तक से ई-बुक की ओर तथा ई-बुक से मुद्रित संस्करण की ओर ऐसा इसलिए कि जो पुस्तकें मुद्रित नहीं हुई हैं, उन्हें भी ई-बुक्स के रूप में सामने लाने में कोई रुकावट नहीं है। उनकी अपनी अलग, स्वतंत्र और मज़बूत पहचान होती है। लेखक के लिए यह एक नया विकल्प है। यदि ई-बुक सफल हो जाती है तो वह उसका मुद्रित संस्करण भी जारी कर सकता है।

ई-बुक की डिलीवरी के लिए डाउनलोड का तरीका भी अपनाया जाता है और सी.डी., डी.वी.डी. के जरिए भी वितरण किया जाता है। अपनी डिजिटल डिवाइस पर ई-बुक डाउनलोड करने के लिए प्रकाशक की वेबसाइट या फिर किसी ई-बुक मार्केटिंग वेबसाइट पर जाएँ और माँगी गई रकम का क्रेडिट कार्ड से भुगतान कर ई-बुक डाउनलोड कर लें। चूँकि ये डिजिटल फाइलें भर हैं, इसलिए अपने पास मौजूद ई-बुक्स को ई-मेल, फाइल शेयरिंग, सोशल नेटवर्किंग या दूसरे डिजिटल तरीकों से भी दूसरों को भेज सकते हैं।

लेकिन ऐसा नहीं है कि एक बार खरीदने के बाद आप उस ई-बुक की कितनी भी प्रतियाँ दूसरों को दे सकते हैं। ई-बुक्स के भीतर डिजिटल अधिकार प्रबंधन (डिजिटल राइट्स मैनेजमेंट या डी.आर.एम.) की व्यवस्था होती है, इसलिए उन्हें एक बार में एक ही शख्स इस्तेमाल कर सकता है, बिलकुल उसी तरह, जैसे छपी पुस्तकों के साथ होता है। ऐसा लेखकों के हितों की रक्षा के लिए है।

ई-बुक्स से लेखकों को अधिक फायदा है, क्योंकि उनके लिए इंटरनेट के जरिए विशाल और विश्वव्यापी बाज़ार खुल जाता है। इकोनॉमी ऑफ स्केल (बड़े पैमाने पर बिक्री) का लाभ उठाकर कई ई-बुक लेखक करोड़पति बन गए हैं। पारंपरिक पुस्तकों की तुलना में इंटरनेट पर बिकने वाली ई-बुक्स की संख्या की निगरानी करना भी आसान है, क्योंकि इन्हें बहुत ही पेशेवराना ढंग से बेचनेवाली वेबसाइट्स उपलब्ध हैं, जैसे अमेजॉन कॉम। लेखक छपी पुस्तक के साथ-साथ उसका ई-बुक संस्करण भी निकालने लगे हैं, हालाँकि लिखने, टाइपिंग आदि का खर्चा एक बार ही होता है। अपडेट करना आसान होने से आपकी ई-बुक हमेशा ताजा और प्रासंगिक बनी रहेगी।

ई-बुक प्रकाशकों के रूप में प्रकाशकों का एक नया वर्ग उभर रहा है, जो बेहद आसान शर्तों पर और फटाफट लेखकों की आकर्षक, पेशेवर गुणवत्ता की ई-बुक्स तैयार करके देते हैं। यह पुराने जमाने के प्रकाशकों से उलट है, जहाँ लेखकों को महीनों और कई बार बरसों चक्कर काटने पड़ते थे।

यह फॉरमैट पाठकों के भी अनुकूल है, क्योंकि ई-बुक्स सिर्फ सस्ती मिलती हैं बल्कि हमेशा सुलभ भी हैं। जिन पुस्तकों के मुद्रित संस्करण खरीदना महँगा पड़ता है, उनके ई-बुक संस्करण आसानी से खरीदे जा सकते हैं। विदेशों में छपी मशहूर पुस्तकों के छपे संस्करण मँगवाना भले ही मुश्किल हो, उनके ई-बुक संस्करण चुटकियों में खरीदे और पढ़े जा सकते हैं। सर्च और कॉपी पेस्ट की सुविधा शोधकर्ताओ, छात्रों वगैरह के बहुत काम की है।

जहाँ तक प्रकाशकों का प्रश्न है, वे अपनी पुस्तकों के ई-बुक संस्करण जारी कर ऐसे बाज़ार तक पहुँच सकते हैं, जहाँ पहले उनकी पहुँच नहीं थी। वे ई-बुक प्रकाशकों से व्यावसायिक गठबंधन कर ई-बुक क्रांति को अपने नुकसान की बजाय फायदे में बदल सकते हैं। छपी पुस्तकों के उलट, इस फॉरमैट में चाहे जितनी प्रतियाँ बनाएँ, कीमत में खास फर्क नहीं आता।

यह भौगोलिक सीमाओं से परे वर्चुअल बाज़ार है, जिसके लाभ वर्चुअल नहीं बल्कि असली हैं। मुहाने पर खड़ी ई-बुक क्रांति हिंदी पाठकों के बीच साहित्यिक अभिरुचि की पुनर्स्थापना करनेवाली सिद्ध हो सकती है।

❑

26

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का राष्ट्रभाषा दर्शन

–डॉ. राजेंद्र पी. सिंह

- **जन्म :** 18 अप्रैल, 1959
- डी.ए.वी. कॉलेज, देहरादून से एम.ए. हिंदी, एम.ए. अंग्रेज़ी, पी-एच.डी. हिंदी।
- स्कूल स्तर पर अंग्रेज़ी पढ़ाई है तथा कुछ समय के लिए लाल बहादुर शास्त्री नेशनल अकादमी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, मसूरी में सिविल सेवकों को हिंदी पढ़ाई। वर्तमान में आधिकारिक भाषा सेवा और भारत सरकार में अधिकारी के रूप में कार्यरत हैं। इनकी कई पुस्तकें, लेख और कविताएँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने अपने चिंतन से संपूर्ण विश्व को प्रभावित कर 'महात्मा' की उपाधि प्राप्त की थी और विश्व को 'गांधी दर्शन' की अनुपम सौगात प्रदान की थी। स्वनामधन्य दार्शनिक रोम्या रोलाँ ने तो गांधीजी को महामानव घोषित किया था। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के योद्धा और भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपने विश्व प्रसिद्ध ग्रंथ 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' में लिखा है, ''महात्मा गांधी ने देश के करोड़ों लोगों को प्रभावित किया है, कुछ पर थोड़ा बहुत ही प्रभाव पड़ा अथवा उन पर यह प्रभाव धीरे-धीरे कम होता गया। परंतु उनका प्रभाव कभी भी पूरी तरह समाप्त नहीं हो पाया और यह कमोबेश निरंतर बना रहा है।'' पंडित नेहरू का यह वक्तव्य न केवल भारतीय समाज पर वरन् संपूर्ण विश्व समाज पर बापू के सार्वजनीन प्रभाव की स्वीकारोक्ति तो है ही, इस बात का भी प्रतीक है कि बापू की चिंतन धारा सार्वदेशिक, सार्वकालिक और सार्वविषयक थी। जीवन का कोई भी ऐसा पहलू नहीं, जिस पर उन्होंने चिंतन न किया हो। 'रामराज्य', 'अहिंसा', 'सत्याग्रह', 'स्वभाषा' और 'स्वराज्य' गांधी चिंतन के कुछ प्रमुख बिंदु हैं और कालांतर में 'सुराज' भी उनके चिंतन का अभिन्न अंग बनकर हमारे समक्ष आता है।

जैसा कि उल्लेख किया गया है, गांधीजी ने राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक पहलू पर न केवल विचार किया वरन् उन पर अपनी सुविचारित और सारगर्भित सम्मतियाँ देकर हमें लाभान्वित किया है। स्वभाषा और राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर गांधीजी के वक्तव्य हमें उनके अफ्रीका से स्वदेश लौटने के समय से ही प्राप्त होने लगते हैं। अत: इस संबंध में यह जानना रुचिकर हो सकता है कि राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर उनके विचारों के पल्लवन और सुदृढ़ीकरण का क्रमिक स्वरूप क्या रहा है। दूसरे शब्दों में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के राष्ट्रभाषा दर्शन का विकास ही हमारे विचार का विषय है। बापू के चिंतन का यह क्रम मातृभाषा, स्वभाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में विकसित होता हुआ राजभाषा तक पहुँचता है। वास्तव में, मातृभाषा से राजभाषा तक उनकी चिंतन धारा को उनके अनुभवों का निचोड़ माना जा सकता है— जहाँ विदेशी सत्ता, विदेशी भाषा के विरोध के साथ ही स्वशासन और स्वभाषा चिंतन को विकसित होते देखा जा सकता है। 'इंडियन ओपिनियन' में 28.12.1907 को ही उन्होंने लिखा था कि ''स्वदेशाभिमान की एक शाखा यह है कि हम अपनी भाषा का मान रखें, उसे ठीक तरह से बोलना सीखें और विदेशी भाषा के शब्दों का उपयोग यथासंभव कम करें।''

गांधीजी इस बात को जानते थे कि आज़ादी की लड़ाई के लिए और उसके बाद स्वतंत्र राष्ट्र के लिए संपर्क भाषा के रूप में किसी एक भाषा का चयन जरूरी है, जिसे देश के सभी भागों के लोग आसानी से सीख सकें और स्वीकार कर सकें। इसके साथ ही विदेशी भाषा के बोझ से छुटकारा दिलाना भी उनका प्रमुख लक्ष्य था। शिक्षा व्यवस्था में सुधार के लिए सन् 1937 में वर्धा में 22-23 अक्तूबर को, गांधीजी की अध्यक्षता में शिक्षा सम्मेलन आयोजित किया गया था। इस सम्मेलन में डॉ. जाकिर हुसैन, श्री टी.के. शाह, पंडित रविशंकर शुक्ल तथा काका कालेलकर ने भाग लिया था

तथा अपने विचार प्रस्तुत किए थे। इस सम्मेलन में शिक्षा के विषय में जो प्रस्ताव पारित किए गए थे, उनमें एक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव शिक्षा को मातृभाषा के माध्यम से दिए जाने के विषय में था। गांधीजी शिक्षा का माध्यम विदेशी भाषा को बनाए जाने के प्रबल विरोधी थे। स्वभाषा की भूमिका के विषय में गांधीजी ने कहा था, ''मैंने अपने देश के बच्चों के लिए यह जरूरी नहीं समझा कि वे अपनी बुद्धि के विकास के लिए एक विदेशी भाषा का बोझ अपने सिर ढोएँ और अपनी उगती हुई शक्तियों का ह्रास होने दें। दुनियाँ में और कहीं ऐसा नहीं होता। इसके कारण देश का जो नुकसान हुआ है, उसकी तो हम कल्पना नहीं कर सकते, क्योंकि हम स्वयं उस सर्वनाश से घिरे हुए हैं।''

गांधीजी का मानना था कि सच्ची स्वाधीनता का मार्ग स्वभाषा से होकर निकलता है। विदेशी भाषा से अपने देश, अपनी संस्कृति के प्रति आदर और प्रेम के विकास की कल्पना करना कोरी मूर्खता होगी और इससे बच्चों का स्वाभाविक, सम्यक् और सर्वांगीण विकास भी संभव नहीं है। 5 फरवरी, 1916 को काशी नागरी प्रचारिणी सभा में व्याख्यान देते हुए उन्होंने कहा था, ''लोगों को अपनी भाषा की असीम उन्नति करनी चाहिए, क्योंकि सच्चा गौरव उसी भाषा को प्राप्त होगा जिसमें अच्छे-अच्छे विद्वान जन्म लेंगे और उसी का सारे देश में प्रचार भी होगा।'' गुजरात में 5 नवंबर, 1917 को एक सभा को संबोधित करते हुए बापू ने कहा था कि ''विदेशी भाषा स्वर्णमयी होने पर भी उपयोगी नहीं हो सकती। हमारी भाषा तृणवत हो तो उसे स्वर्णमयी बनाना चाहिए।''

इंदौर हिंदी साहित्य सम्मेलन में उन्होंने कहा था कि ''हिंदू-मुसलमानों के बीच जो भेद किया जाता है, वह कृत्रिम है। ऐसी ही कृत्रिमता हिंदी और उर्दू के भेद में है। दोनों का स्वाभाविक संगम गंगा-यमुना के संगम सा शोभित और अचल रहेगा। मुझे उम्मीद है कि हम हिंदी कहें या हिंदुस्तानी, मेरे लिए तो दोनों एक ही हैं। हमारा कर्तव्य यह है कि हम अपना राष्ट्रीय कार्य हिंदी भाषा में करें।''

स्वदेशी और स्वभाषा के प्रति गांधीजी का आग्रह उन्हें धीरे-धीरे एक ऐसी सर्वमान्य भाषा की खोज के लिए प्रेरित करता रहा जो कि इस देश की मिश्रित संस्कृति और भौगोलिक-धार्मिक अनेकता के मध्य सेतु का कार्य कर सके। यह कार्य इतना आसान नहीं था। यहाँ यह भी ध्यान रखना होगा कि गांधीजी जन-जागरण के दौरान प्रायः संपूर्ण देश का भ्रमण कर चुके थे और वे देश की सांस्कृतिक, धार्मिक तथा भाषाई अनेकता के साक्षात दर्शन कर चुके थे। अगर कहा जाए कि उनके हाथ में देश की नब्ज थी तो अतिशयोक्ति न होगी। यही कारण था कि हिंदी भाषी न होते हुए भी उन्होंने हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाए जाने की वकालत की और इसके लिए सबसे पहले स्वयं हिंदी सीखी। उनका मानना था कि देश की साझी विरासत को जितना रामचरित मानस और गीता ने प्रभावित किया है, उतना किसी और ग्रंथ ने नहीं। 1917 में, भागलपुर में एक विशाल जनसमूह को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा था कि ''तुलसीदासजी की भाषा संपूर्ण है, अमर है। इस भाषा में हम अपने विचार न प्रकट कर सकें तो दोष हमारा ही है।'' इससे पूर्व 1916 में, काशी नागरी प्रचारिणी सभा को संबोधन में उन्होंने कहा था कि ''जिस भाषा में तुलसीदास जैसे कवि ने कविता की हो, वह अवश्य पवित्र है और उसके सामने कोई भाषा नहीं ठहर सकती।'' इससे बहुत पहले 1908 में ही गांधीजी 'इंडियन ओपिनियन' में घोषित कर चुके थे कि ''हिंदी लिपि और भाषा जानना हर भारतीय का कर्तव्य है। उस भाषा का स्वरूप जानने के लिए 'रामायण' जैसी दूसरी पुस्तक शायद ही मिलेगी।''

इस प्रकार राष्ट्रभाषा संबंधी गांधीजी का विचार प्रवाह धीरे-धीरे एक सर्वस्वीकार्य और सुगम भाषा की ओर बढ़ता पाया जाता है। उनकी यह खोज हिंदी पर जाकर समाप्त होती है और उसके बाद वे पीछे मुड़कर नहीं देखते तथा हिंदी भाषा का तादात्म्य राष्ट्रीय अस्मिता तथा स्वराज्य के साथ करते हैं। सर्वसामान्य राष्ट्रभाषा की खोज की इस यात्रा में वे भाषाई अनेकता, हिंदी-उर्दू, हिंदू-मुसलमान, लिपिगत अनेकता जैसे प्रश्नों से टकराते और उनका सटीक समादान प्रस्तुत करते हुए नजर आते हैं। मातृभाषा और राष्ट्रभाषा के बीच अनेकता में एकता का भाव लाना उनका प्रमुख ध्येय था। कहना न होगा कि वे इतने विशाल देश की जमीनी हकीकतों से अच्छी तरह वाकिफ थे। उन्होंने 1916 में लखनऊ तथा कलकत्ता के कांग्रेस अधिवेशनों में दक्षिण भारतीय राज्यों में राजभाषा हिंदी की स्वीकार्यता और उसके प्रचार-प्रसार के प्रयासों की जरूरत पर बल दिया था। उन्होंने कहा था कि ''जब तक दक्षिण के तमिल, तेलुगु, कन्नड, मलयालम भाषी लोग भी राष्ट्रभाषा हिंदी का काम-चलाऊ ज्ञान हासिल नहीं कर लेंगे, तब तक सारे भारतवर्ष की एकता और सांस्कृतिक समानता की समस्या हल नहीं हो सकेगी।'' उनकी प्रेरणा से राजगोपालाचारी, लोकमान्य तिलक जैसे राजनेता हिंदी सीखकर उसके मुखर समर्थक बनकर सामने आए और श्री श्रीनिवास शास्त्री, रवींद्रनाथ ठाकुर, काका कालेलकर जैसे जननायकों ने हिंदी को सर्वव्यापक राष्ट्रभाषा बनाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया। वर्ष 1918 में ही गांधीजी के कनिष्ठ पुत्र श्री देवदास गांधी ने मद्रास पहुँचकर श्रीमती एनी बेसेंट, डॉ. सी.पी. रामास्वामी अय्यर और श्री श्रीनिवास शास्त्री के साथ मिलकर राष्ट्रभाषा प्रचार आंदोलन की

शुरुआत की। इस आंदोलन के अंतर्गत कुछ दक्षिण भारतीय युवकों को हिंदी अध्ययन के लिए प्रयाग भेजा गया, जिन्होंने वापस लौटकर प्रचार आंदोलन का ध्वज अपने हाथ में लिया। गांधीजी ने 21.01.1920 को 'यंग इंडिया' में 'अपील टु मद्रास' नामक लेख में लिखा था कि ''मैं सोच-समझकर इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि राष्ट्र का कारबार चलाने के लिए या विचार-विनिमय के लिए हिंदुस्तानी को छोड़कर कोई भाषा शायद ही राष्ट्रीय माध्यम बन सकेगी।'' गांधीजी ने 1927 में बंगलौर में 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' की स्थापना की। उन्होंने इस दौरान सभा को एक लक्ष्य वाक्य दिया था ''Hindi not in the place of the mother tongue, but in addition to it.'' गांधीजी की ही प्रेरणा से, 1937 में मद्रास के सरकारी स्कूलों में हिंदी की पढ़ाई अनिवार्य कर दी गई थी। उन्होंने हिंदी के प्रचार को राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय एकता और भारतीय संस्कृति के एकीकरण से जोड़ दिया। केरल भ्रमण के दौरान उन्होंने 1934 में हिंदी में व्याख्यान देते हुए सभी केरलवासियों का आह्वान किया कि वे हिंदी अवश्य सीखें।

हिंदी और उर्दू के प्रश्न पर गांधीजी के विचार 'हरिजन सेवक', 'यंग इंडिया' आदि पत्रों में निरंतर प्राप्त होते हैं। उन्होंने 'हरिजन सेवक' में लिखा था ''हिंदी, हिंदुस्तानी और उर्दू एक भाषा के मुख्तलिफ नाम हैं। हमारा मतलब आज एक नई भाषा बनाने का नहीं है, बल्कि जिस भाषा को हिंदी, हिंदुस्तानी और उर्दू कहते हैं—उसे अंतरप्रांतीय भाषा बनाने का हमारा उद्देश्य है।'' इंदौर हिंदी साहित्य सम्मेलन में उन्होंने कहा था कि ''हिंदू-मुसलमानों के बीच जो भेद किया जाता है, वह कृत्रिम है। ऐसी ही कृत्रिमता हिंदी और उर्दू के भेद में है। दोनों का स्वाभाविक संगम गंगा-यमुना के संगम सा शोभित और अचल रहेगा। मुझे उम्मीद है कि हम हिंदी कहें या हिंदुस्तानी, मेरे लिए तो दोनों एक ही हैं। हमारा कर्तव्य यह है कि हम अपना राष्ट्रीय कार्य हिंदी भाषा में करें।''

राष्ट्रीय एकता के लिए साझी लिपि के प्रश्न पर भी गांधीजी ने अपने विचार दिए। उनका मानना था कि चूँकि देश की अधिकांश भाषाओं का मूल एक ही लिपि है, इसलिए नागरी लिपि ही भारत की विभिन्न भाषाओं की साझी लिपि का दायित्व निभा सकती है। उन्होंने इस बात पर बल भी दिया था कि ज्ञान और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के लिए भी एक साझी लिपि का होना जरूरी है। एक स्थान पर उन्होंने कहा है, ''लिपि विभिन्नता के कारण प्रांतीय भाषाओं का ज्ञान आज असंभव सा हो गया है। बँगला लिपि में लिखी हुई गुरुदेव की गीतांजलि को सिवाय बंगालियों के और कौन पढ़ेगा। पर यदि वह देवनागरी में लिखी जाए तो उसे सभी पढ़ सकते हैं।'' हरिजन सेवक में 23.05.1936 को उन्होंने लिखा था—''लेकिन इसमें शक नहीं है कि देवनागरी लिपि का एक आंदोलन चल रहा है, जिसका साथ मैं हृदय से दे रहा हूँ और वह यह है कि विभिन्न प्रांतों में खासकर जिन प्रांतों में संस्कृत शब्दों का बहुत उपयोग होता है—बोली जानेवाली तमाम भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि को सामान्य लिपि मान लिया जाए।'' इस प्रकार उनका यह दृढ़ मत था कि ''हिंदुस्तान में सर्वमान्य हो सकने वाली यदि कोई लिपि है तो देवनागरी ही है। मुझे विश्वास है कि देवनागरी द्वारा ही दक्षिण की भाषाएँ आसानी से सीखी जा सकती हैं।''

गांधीजी की राष्ट्रभाषा संबंधी विचारधारा केवल एकांगी विचार नहीं वरन् एक संपूर्ण दर्शन है। उनका 'राष्ट्रभाषा दर्शन' कोरी भावुकतापूर्ण आदर्श संकल्पना नहीं है, वह वास्तविकता के ठोस धरातल पर अनुभवसिद्ध निष्कर्षों का सार है। वास्तव में उनके 'राष्ट्रभाषा' दर्शन का क्रमिक विकास मानव से महामानव के रूप में उनके व्यक्तित्व के क्रमिक विकास के साथ-साथ होता है। राष्ट्रीय जीवन के अन्य सभी पहलुओं के समान ही उन्होंने इस विषय पर भी गंभीर चिंतन और मनन के बाद अपनी राय प्रकट की। हिंदी को राष्ट्रभाषा और अंततः स्वतंत्र देश की राजभाषा के रूप में स्थापित करने का उनका प्रयास इस क्रमिक विकास की परिणति थी।

अतः गांधीजी की राष्ट्रभाषा संबंधी विचारधारा केवल एकांगी विचार नहीं वरन् एक संपूर्ण दर्शन है। उनका 'राष्ट्रभाषा दर्शन' कोरी भावुकतापूर्ण आदर्श संकल्पना नहीं है, वह वास्तविकता के ठोस धरातल पर अनुभवसिद्ध निष्कर्षों का सार है। वास्तव में उनके 'राष्ट्रभाषा' दर्शन का क्रमिक विकास मानव से महामानव के रूप में उनके व्यक्तित्व के क्रमिक विकास के साथ-साथ होता है। राष्ट्रीय जीवन के अन्य सभी पहलुओं के समान ही उन्होंने इस विषय पर भी गंभीर चिंतन और मनन के बाद अपनी राय प्रकट की। हिंदी को राष्ट्रभाषा और अंततः स्वतंत्र देश की राजभाषा के रूप में स्थापित करने का उनका प्रयास इस क्रमिक विकास की परिणति थी। अतः आज 'गांधी दर्शन' के समान ही उनके 'राष्ट्रभाषा' दर्शन पर संयुक्त विचार करते हुए उसे व्यवहार में उतारे जाने की जरूरत है।

—विशेष कार्याधिकारी
हिंदी राष्ट्रपति सचिवालय,
राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली-110004
इ-मेल :drraj59@yahoo.co.in

❑

27

राजस्थान में हिंदी : लोकभाषा से राजभाषा तक

–डॉ. नीरज के. चतुर्वेदी

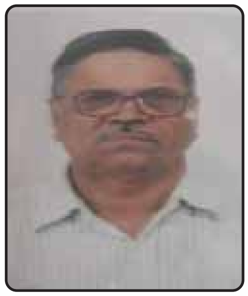

- **जन्म :** 7 जनवरी, 1956 ई., आगरा, उत्तर प्रदेश।
- **भाषा ज्ञान :** हिंदी, अंग्रेज़ी, राजस्थानी।
- **शिक्षा :** बी.ए., एम.ए. (इतिहास), एल.एल.बी., आगरा विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश, पी-एच.डी., 'फॉरमेशन ऑफ जम्मू ऐंड काश्मीर स्टेट ऐंड महाराजा गुलाब सिंह' (1982), आगरा विश्वविद्यालय।
- **शैक्षणिक अनुभव :** 1982–85 तक आगरा कॉलेज, आगरा में इतिहास विभाग में प्रवक्ता पद पर। 1987 से इतिहास विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य कर रहे हैं और 1998 से एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर सेवारत हैं।
- **प्रकाशन :** ग्रंथ—आधुनिक भारत का इतिहास, भाग-1, ओरियंटल पब्लिशर, आगरा। आधुनिक भारत का इतिहास, भाग-2, ओरियंटल पब्लिशर, आगरा। 'जम्मू कश्मीर के महाराजा गुलाब सिंह' (1845–1857), राजस्थान ग्रंथागार, जोधपुर।
- **शोधपत्र एवं लेख :** 20 से अधिक शोधपत्र एवं लेख प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।

हिंदी भाषा एवं उसके साहित्य के सृजन, विकास एवं प्रचार-प्रसार में भारतवर्ष के जिन-जिन प्रांतों ने भाग लिया है उनमें राजस्थान का अपना एक विशेष स्थान है। राजस्थानवासियों को इस बात का गर्व है कि उनके कवि-कोविदों ने हिंदी के प्रचार के साथ ही हिंदी साहित्य के प्राय: सभी अंगों पर अनेक ग्रंथों की रचना कर उनके द्वारा हिंदी के भंडार को भरा है। हिंदी के आदिकाल का इतिहास तो एक तरह से राजस्थान के ही कवियों की कृतियों का इतिहास है। यह समस्त साहित्य बहुत सजीव, उज्ज्वल एवं मार्मिक है और साहित्यिक एवं भाषाशास्त्र की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होने के साथ-साथ ऐतिहासिक दृष्टि से भी बहुत उपयोगी है। भारतीय इतिहास के इस आधुनिक कालखंड में, जब भारत के कई प्रांतों में हिंदी आंदोलन आरंभ हुए तो राजस्थान के भी हिंदी सेवी व्यक्तियों, संस्थाओं एवं प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं ने इसमें भाग लेकर इसे व्यापक धरातल प्रदान किया और लोकभाषा हिंदी को राजभाषा का पद प्रदान करवाने तक एक सतत एवं सुदीर्घ संघर्ष किया।

राजस्थान भारतवर्ष के उस भाग का सामान्य एवं शास्त्रीय नाम है जो कि (राजपूत) राजाओं का निवास स्थान रहा है। इन देशों की प्रचलित भाषा में उसे 'रजवाड़ा' पुकारा जाता है; किंतु अंग्रेज़ी में राजपूत राज्यों को निर्दिष्ट करने के लिए अधिक संस्कृत नाम 'रायथान' जो कि परिवर्तित होकर 'राजस्थान' हो गया है, सामान्य रूप में प्रचलित है। इस संपूर्ण क्षेत्र का अधिक प्रचलित नाम 'राजपूताना' है जो कि अंग्रेज़ों का रखा हुआ है। जिस समय उनका संपर्क इस क्षेत्र से हुआ उस समय बहुधा यह सारा क्षेत्र, भरतपुर राज्य को छोड़कर, राजपूत राजाओं के अधीन होने से उन्होंने गोंडवाना, तेलंगाना आदि के ढंग पर इसका नाम भी 'राजपूताना' अर्थात् राजपूतों का देश रखा। राजपूताने के प्रथम और प्रसिद्ध इतिहास-लेखक कर्नल जेम्स टॉड ने अपनी पुस्तक 'एनल्स ऐंड ऐंटिक्यूटिज ऑफ राजस्थान' में इस देश का नाम राजस्थान या रायथान दिया है, जो राजाओं या उनके राज्यों के स्थान का सूचक है, परंतु इससे पूर्व यह सारा देश उस नाम से कभी प्रसिद्ध रहा हो ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता। विभाजन से पूर्व (विवेच्य समय) राजस्थान 23^{0} 3'' से 30^{0} 12'' उत्तर अक्षांश और 69^{0} 30'' से 78^{0} 17'' पूर्व देशांतर के बीच फैला था, जिसका क्षेत्रफल लगभग 130462 वर्गमील था और इसमें 18 राज्य थे। इसके पश्चिम में सिंध, उत्तर-पश्चिम में पंजाब, पूर्व में संयुक्त प्रांत और मध्य प्रदेश तथा दक्षिण में मुंबई और गुजरात की सीमाएँ मिलती हैं।

भारतवर्ष के अन्य प्रांतों के समान राजस्थान में भी हिंदी को राजभाषा बनाने के लिए जो आंदोलन हुआ उस दौरान सर्वत्र उसे 'राष्ट्रभाषा आंदोलन' ही कहा गया। यहाँ 'राष्ट्रभाषा' एवं 'राजभाषा'

को स्पष्ट करना आवश्यक है। 'राष्ट्रभाषा' का अर्थ है राष्ट्र की भाषा अर्थात् वह भाषा जिसके माध्यम से संपूर्ण देश में विचार संपर्क किया जा सके। जबकि 'राजभाषा' से तात्पर्य राजकार्य की भाषा से है। सामान्यत: किसी भी देश में बहुसंख्यक जनता द्वारा व्यवहृत भाषा (राष्ट्रभाषा) को ही राजभाषा का पद दिया जाता है और राजभाषा और राष्ट्रभाषा दोनों देश की अधिसंख्य जनता की भाषा होती है।

भारतीय इतिहास पर यदि दृष्टिपात किया जाए तो यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में देश की भाषाएँ क्रमश: संस्कृत, पाली, शौरसेनी और शौरसेनी अपभ्रंश थी और इन्हीं भाषाओं के माध्यम से तत्कालीन शासक शासनकार्य किया करते थे। 7वीं शताब्दी से 11वीं सदी तक अपभ्रंश की प्रधानता रही और फिर वह पुरानी हिंदी में परिणत हो गई। हिंदी क्रमश: अपभ्रंश से ही निकली है। भारतवर्ष में मुसलमानों के आगमन के पूर्व देशभाषा हिंदी तथा लिपि नागरी या नागरी ही के रूपांतरवाली थी और उसी के द्वारा देश के राजा एवं प्रजा का काम चलता था।

मुसलमानों के भारत पर आक्रमण एवं सत्ता पर काबिज होने के साथ ही सदियों से चली आई राजभाषा की परंपरा खंडित हो गई और फारसी राजभाषा के पद पर काबिज हो गई तथा हिंदी को द्वितीय श्रेणी में ढकेल दिया गया। दिल्ली सल्तनत के आरंभ से लेकर अकबर के राज्यकाल के मध्य तक (1565 ई.) माल विभाग में हिंदी का और कचहरियों में फारसी का प्रचलन था। राजा टोडरमल के सुझाव पर अकबर ने माल विभाग में भी फारसी का प्रचलन कर दिया। इस प्रकार दिल्ली सल्तनत और विशेषकर मुगलकाल में दिल्ली के प्रभाव के कारण राजस्थान के रजवाड़ों में भी एक के बाद एक फारसी जारी होती चली गई। उत्तर मुगलकाल में फारसी भाषा के बासी पड़ जाने के कारण उर्दू राजभाषा के रूप में चालू की गई। इस प्रकार फारसी भाषा तो कचहरियों से उठ गई पर फारसी लिपि यहाँ बनी रह गई।

भारत में अंग्रेज़ी सत्ता स्थापित होने पर धीरे-धीरे इसमें परिवर्तन आया और 1837 ई. में कचहरियों और दफ्तरों में देशी भाषाओं के प्रयोग की आज्ञाएँ निकलीं। इस आज्ञा के पालन न किए जाने के कारण पुन: 1840, 1854 और 1876 ई. में राजाज्ञाएँ निकलीं जिसके फलस्वरूप भारत के अनेक प्रांतों में वहाँ की भाषाएँ जारी कर दी गईं, परंतु राजस्थान में उर्दू का ही बोलबाला रहा।

19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारत के कई प्रांतों में हिंदी को भी उर्दू के समान मान्यता दिलाने के लिए प्रबल आंदोलन आरंभ हुए और इसमें अनेक व्यक्तियों, सभा-संगठनों और पत्र-पत्रिकाओं ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया, जिसका प्रभाव राजस्थान पर भी पड़े बिना न रह सका। वर्तमान उत्तर प्रदेश में 19वीं सदी के 7वें और 8वें दशक में प्रयाग, मेरठ और अलीगढ़ में हिंदी संस्थाएँ स्थापित हुईं, जिनसे प्रेरणा ग्रहण करते हुए अन्य प्रांतों से पिछड़े हुए राजस्थान में भी हिंदी संस्थाओं के निर्माण का कार्य आरंभ हुआ। 1885 ई. में राजस्थान में दो हिंदी संस्थाएँ स्थापित हुईं—प्रथम, हिंदी उद्धारिणी प्रतिनिधि सभा, श्रीनाथद्वारा; और दूसरी, श्रीराम सभा, जयपुर। श्रीनाथद्वारा की सभा ने शुरुआती दौर में हिंदी का प्रचार कर जहाँ अन्य संस्थाओं की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया, वहीं, जयपुर की संस्था ने पं. बालचंद्र शास्त्री के संपादन में 'सदाचार मार्तंड' नामक मासिक पत्र का भी प्रकाशन किया, जिसकी हिंदी सेवाओं की बड़ी ही सुंदर समालोचना कलकत्ता से प्रकाशित 'धर्म दिवाकर' नामक मासिक पत्र ने किया। संस्थागत रूप से राजस्थान में ये दोनों हिंदी प्रचार के प्रथम प्रयास थे।

1893 ई. का वर्ष भारत के अन्य प्रांतों के समान राजस्थान में भी हिंदी के प्रचार के लिए स्वर्णिम साबित हुआ। इस वर्ष वाराणसी में कॉलेज के छोटे-छोटे विद्यार्थियों द्वारा, जिनमें श्यामसुंदर दास प्रमुख थे, काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हिंदी के प्रचारार्थ की गई। इस संस्था ने प्रथम वर्ष से ही राजस्थान में भी हिंदी के प्रचार के लिए राजस्थानवासियों का हर संभव सहयोग प्राप्त करने का प्रयास आरंभ किया फलस्वरूप प्रथम वर्ष में ही मुंशी समर्थदान (अजमेर) और कुँवर फतेहलाल मेहता एवं कुँवर जोधसिंह मेहता (दोनों उदयपुर) काशी की इस सभा के सभासद बन गए। 1919-20 ई. तक अजमेर से 19; अलवर से 2; उदयपुर से 14; कृष्णगढ़ से 1; कोटा से 5; जयपुर से 15; झालरापाटन से 4; बीकानेर से 5; बूँदी से 3; भरतपुर से 1; सिरोही से 2 और जोधपुर मारवाड़ से 8 लोग इस सभा के सभासद थे। 1943 ई. तक समूचे राजस्थान के हज़ारों लोगों ने हिंदी प्रचार कार्य में, पुस्तकों से अथवा धन से इस सभा को सहयोग दिया।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा के प्रयास और राजस्थान के कतिपय सभ्यों के सहयोग से 19वीं सदी के अंतिम दशक में राजस्थान में हिंदी का प्रचार बढ़ा और उसमें अत्यंत ही सराहनीय उद्योग खेतड़ी के महाराज अजीत सिंह (1861-1901 ई.) का था। जिस समय राजपूताने में सर्वत्र उर्दू भाषा का ही प्रचार था उस समय अनेक कठिनाइयों का सफलतापूर्वक सामना करते हुए उन्होंने अपने राज्य के न्यायालयों में हिंदी को प्रतिष्ठित किया और साथ ही अनेक कवियों एवं साहित्यकारों को प्रोत्साहन प्रदान कर पूरे राजस्थान की रियासतों के लिए मार्गदर्शन का कार्य किया। इस कड़ी में दूसरा नाम जोधपुर के मुंशी देवीप्रसाद (1847-1923 ई.) का था। जिस समय अधिकांश कायस्थ हिंदी के विरोधी और उर्दू के पक्षपाती थे, यहाँ तक कि स्वयं इनके पूर्वज मुसलमानी राज्यों के संपर्क के कारण फारसी सेवी थे, उसी कुल में 'कीचड़ में कमल के समान'

मुंशी देवीप्रसाद ने आजीवन हिंदी की सेवा की। मुंशी देवीप्रसाद इतिहास के प्रकांड विद्वान थे और हिंदी से संबंधित चार पुस्तकों— 'राजरसनामृत', 'महिला मृदुवाणी', 'कविरत्नमाला', और 'राजस्थान में हिंदी पुस्तकों की खोज' लिखी। राजरसनामृत नामक पुस्तक में मुंशीजी ने राजपूताने के शासक कवियों का विवेचन किया है। इस पुस्तक में मुंशीजी ने जैसलमेर, उदयपुर, जयपुर, बीकानेर, कृष्णगढ़ और बूँदी के शासक कवियों का वर्णन किया है और साथ ही उनकी कविताओं का भी प्रमाण दिया है। इसके साथ ही इस पुस्तक में इन राज्यों के शासकों की पूरी वंशावली कालक्रम से दी है जो कि संवत् 800 के बाद से है और यह बात ऐतिहासिक दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण है। 'कविरत्नमाला' नामक ग्रंथ में मुंशीजी ने राजस्थानी रियासतों के प्राचीन-नवीन 108 कवियों का जीवन-चरित्र और परिचय लिखा है जिनके समय शाहजहाँ के काल से लेकर 20वीं सदी के प्रथम दशक तक है। 'महिला मृदुवाणी' नामक पुस्तक में 35 कवयित्रियों, जिनमें अधिकांश राजस्थान की थीं, का परिचय लिखा है। 'राजस्थान में हिंदी-पुस्तकों की खोज' नामक ग्रंथ में मुंशी देवीप्रसादजी ने 338 ग्रंथों और उनके रचयिताओं का नाम दिया है और इसके साथ-ही-साथ उनके विषय, रचनाकाल और यदि उस पुस्तक के बारे में कुछ खास बात है तो विशेष करके सूचना दिया है, जिनमें सबसे प्राचीन ग्रंथ 15वीं सदी का है। इन पुस्तकों में इतिहास और अनुसंधान के आधार पर यह बात प्रमाणित है कि न केवल आम जनता बल्कि शासक लोग भी हिंदी का प्रयोग करते थे और उससे अनुराग रखते थे।

मुंशी देवीप्रसाद ने न केवल खोज का काम किया बल्कि अपनी लगन और अथक प्रयासों से एक राज्य में अकेले अपने दम पर हिंदी को जारी करवा दिया। संवत 1936 में मुंशीजी जोधपुर में नौकरी करने आए। उस समय अदालत का काम उर्दू में और माल, खज़ाना, फौज और बाहर की कचहरियों का काम हिंदी में होता था। उस समय महाराजा प्रताप सिंह प्रधानमंत्री थे और हिंदी के पक्षपाती थे। उनके समर्थन और मुंशी देवीप्रसाद के प्रयास से 4-5 वर्ष बाद ही न्यायालय में भी हिंदी को स्थान मिलने लगा और फैसले लिखे जाने लगे। एक दिन रात को अर्जियाँ सुनते समय महाराजा प्रताप सिंह ने उर्दू की 50-60 अर्जियाँ फड़वा डालीं और वहाँ का सब काम हिंदी में होने लगा। इस घटना के बाद मुंशी देवीप्रसाद के कई मित्रों ने इन्हें सब फसादों की जड़ समझा और इन्हें खरी-खोटी भी सुनाई, परंतु ये अडिग रहे। वास्तव में राजस्थान में हिंदी के लिए अकेले जितना प्रयास मुंशी देवीप्रसाद ने किया उतना शायद ही किसी व्यक्ति ने किया होगा।

मुंशी देवीप्रसाद के समान ही राजस्थान के विभिन्न भागों के अन्य व्यक्तियों ने भी हिंदी के लिए कार्य किया। मनीशी समर्थदान (1857-1907 ई.) ने जयपुर में हिंदी के लिए कार्य किया। इन्होंने 'राजस्थान यंत्रालय' नामक प्रेस खोला जहाँ से 'राजस्थान समाचार' नामक प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन हुआ, जो बाद में अर्द्ध-साप्ताहिक हो गया और अत्यधिक घाटा होने के कारण 1907 ई. में बंद भी हो गया। भरतपुर, झालरापाटन, कोटा और झालावाड़ में हिंदी के प्रचार में गिरिधर शर्मा नवरत्न (1881-1961 ई.) का योगदान भी अविस्मरणीय रहा। इन्होंने 'भरतपुर हिंदी साहित्य समिति' के निर्माण में मुख्य भूमिका निभाई। कोटा की 'भारतेंदु समिति' की स्थापना के पीछे मुख्य निर्देशक ये ही थे। इनकी हिंदी सेवाओं को ही ध्यान में रखकर हिंदी साहित्य सम्मेलन ने इन्हें 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि प्रदान की। झालावाड़ में मुंशी हीरामल जालौरी (1888-1944 ई.) ने हिंदी का व्यापक प्रचार किया और 'राजस्थान साहित्यमाला' प्रकाशन संस्था का भी सूत्रपात किया। वहीं, भरतपुर में यह कार्य युधिष्ठिर प्रसाद चतुर्वेदी (1893-1978 ई.) ने किया। चतुर्वेदीजी भरतपुर के पुराने हिंदी सेवकों में थे। 1926 ई. का अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन, जो पं. गौरीशंकर हीराचंद ओझा की अध्यक्षता में भरतपुर में हुआ था, के प्रमुख आयोजक चतुर्वेदीजी ही थे।

राजस्थान में हिंदी के प्रचार में जोधपुर के श्री शिवदानमल थानवी (1868-1955 ई.) का योगदान भी साहसपूर्ण था। थानवीजी अंग्रेज़ी, हिंदी और उर्दू के अच्छे जानकार थे। उन्होंने 1889 ई. में जोधपुर में 'डायमंड जुबली बुक डिपो' नामक पुस्तक की दुकान खोली जो कि जोधपुर शहर में एकमात्र दुकान थी। इसी वर्ष उन्होंने 'मरुधर हितैषी' नामक प्रथम साप्ताहिक पत्र निकालने की सरकार से अनुमति ली थी। 1919 ई. में, जब मारवाड़ में 'टाइपराइटर' तक रखना जुर्म था, तब उन्होंने 'श्री सुमेर प्रिंटिंग प्रेस' की स्थापना करके अपने साहस और हिंदी प्रेम का परिचय दिया था। दैनिक हिंदुस्तान (कालाकांकर), मारवाड़ साप्ताहिक (नागपुर) और राजस्थान समाचार (अजमेर) आदि के ये कुशल संवाददाता भी रहे।

इसी कालखंड में जयपुर के दो व्यक्तियों की हिंदी सेवाएँ अविस्मरणीय रहीं जिन्होंने अपने कार्यों द्वारा एक प्रतिमान स्थापित किया—इनमें प्रथम थे मिस्टर जैनवैद्य और दूसरे पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी। मिस्टर जैनवैद्य (1880-1909 ई.) का वास्तविक नाम जवाहर मल था। उन्होंने प्रसिद्ध पुस्तक 'हिंदी क्या है?' लिखी जो काशी की नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हुई। उन्होंने 1902 ई. से जयपुर से 'समालोचक' नामक मासिक पत्र गोपालराम गहमरी के संपादकत्व में प्रकाशित किया। चार वर्षों तक प्रकाशित यह समाचार-पत्र समालोचना विषयक हिंदी का प्रथम मासिक पत्र था। जयपुर के ही पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी (1883-1922 ई.) का योगदान

भी हिंदी के उत्थान में अविस्मरणीय रहा। ये काशी की नागरी प्रचारिणी सभा के अग्रणी सभासद एवं कितने ही अधिकारी पद को सुशोभित किया था। अपनी ही प्रेरणा से खेतड़ी नरेश जयसिंह एवं शाहपुराधीश उम्मेदसिंह से बड़ी-बड़ी रकमें काशी की नागरी प्रचारिणी सभा को हिंदी की पुस्तकमालाओं के प्रकाशनार्थ दिलवाई एवं साथ ही 'पुरानी हिंदी' एवं 'उसने कहा था' जैसी कालजयी पुस्तकें लिखकर हिंदी के क्षेत्र में अपना नाम स्वर्णाक्षरों में लिखवा लिया। इससे भी आगे बढ़कर गुलेरीजी ने जैनवैद्य के साथ मिलकर हिंदी के प्रचारार्थ 1900 ई. में जयपुर में 'नागरी भवन' स्थापित किया, जिसका राजस्थान में हिंदी के प्रचार में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में इतना सब कुछ होते हुए भी हिंदी की अवस्था अत्यंत दयनीय थी और वह 'गँवारू भाषा' समझी जाती थी। पाश्चात्य शिक्षा में शिक्षित लोग अंग्रेज़ी की तरफ ही आकर्षित हो रहे थे। इस रुझान को देखकर हिंदी के प्रसिद्ध लेखक श्रीधर पाठक ने न केवल अंग्रेज़ शासकों को बल्कि हिंदू रजवाड़ों को, अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे बाबुओं एवं कायस्थों को हिंदी का दुश्मन माना था। रजवाड़े सिर्फ इसलिए हिंदी को महत्त्व नहीं देते थे, क्योंकि उनके आकाओं को (अंग्रेज़ों को) उर्दू प्यारी थी। अक्तूबर 1884 ई. को 'हिंदी प्रदीप' नामक पत्रिका में इस संदर्भ में एक व्यंग्यपरक ग़ज़ल लिखा जिससे तत्कालीन समय में भारत और राजस्थान में हिंदी की अवस्था का बहुत कुछ यथार्थ ज्ञान होता है। उन्होंने लिखा कि—

हिंदी का अब तो कोई कद्र दाँ रहा नहीं,
बाइस परी है उसका रुतबा जरा नहीं।
कायस्थ हैं जितने मुल्क में पढ़ते हैं फारसी,
हिंदी का नाम लेना भी उनको रवा नहीं॥
अंग्रेज़ी पढ़े बाबू को हिंदी से क्या गरज,
इंग्लिश के बराबर तो किसी में मजा नहीं।
रजवाड़ों का उर्दू से ही चलता है कारोबार,
हिंदी को दें रिवाज क्यों, सर तो दु:खा नहीं॥

1901 ई. में आरा (बिहार) में 'आरा नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना हुई जिसने भारतवर्ष के विभिन्न रजवाड़ों के कार्यालयों में हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि के प्रचलन हेतु अथक परिश्रम किया। 1904 ई. में अलवर नरेश जयसिंह के कलकत्ता जाते समय आरा रेलवे स्टेशन पर, अलवर की कचहरी में उर्दू और फारसी के स्थान पर हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि के प्रचलन हेतु एक ज्ञापन दिया। 1904 ई. में ही इस सभा ने भारत के विभिन्न रजवाड़ों से अपने-अपने राज्यों की कचहरियों में हिंदी भाषा एवं देवनागरी लिपि के पूर्ण प्रचलन हेतु निवेदन किया फलस्वरूप राजस्थान के मात्र बीकानेर नरेश ने 1904 ई. में अपने राज्य के एक विभाग में फारसी के स्थान पर नागरी लिपि के प्रयोग हेतु आदेश प्रदान किया। बीकानेर राज्य की पहल का फल यह हुआ कि राजपूताने के कितने ही शासकों ने अपने-अपने राज्यों में हिंदी के प्रचार पर बल दिया। 1908 ई. में कोटा राज्य के न्यायालय व कार्यालय की लिपि देवनागरी हो गई। 1909 में अलवर राज्य की कचहरी नागरी लिपि में कर दी गई। मुठौलिया और झालावाड़ के नरेशों ने भी अपने-अपने राज्यों में नागरी के प्रचार का स्वागत किया। अपने प्रथम प्रयास की सफलता से उत्साहित होकर आरा नागरी प्रचारिणी सभा ने 1909 ई. में तत्कालीन संयुक्त प्रांत व राजस्थान के प्राय: सभी राजाओं और महाराजाओं की सेवा में अपने-अपने कार्यालयों में नागरी प्रचार की आज्ञा प्रदान करने के लिए ज्ञापन दिया।

प्रारंभ में काशी और बाद में आरा की नागरी प्रचारिणी सभा के राजस्थान में हिंदी के प्रचार का जो प्रयास किया गया उसका फल यह हुआ कि राजस्थान के विभिन्न भागों में हिंदी प्रचारक सभा-संगठनों की स्थापना की धूम मच गई। 1900-1912 ई. तक राजस्थान में हिंदी प्रचार विषयक जो संगठन अस्तित्व में आए उनमें देवनागरी प्रचारक सभा (1907), मुन्नालाल नागरी प्रचारिणी सभा, सनातन धर्म पुस्तकालय एवं जैन पुस्तकालय अजमेर में; नागरी प्रचारिणी सभा (चैत्रवदी 8, वि. सं. 1968) व्यावर में; सर्वहितकारिणी सभा चुरु एवं कोरोनेशन सनातन धर्म पुस्तकालय, चुरु में और हिंदी पुस्तकालय, मंत्रा, कोटा में स्थापित हुई।

1910 ई. के अक्तूबर महीने में काशी की नागरी प्रचारिणी सभा ने काशी में ही संपूर्ण भारत को एक भाषा के माध्यम से जोड़ने के उद्देश्य से प्रथम हिंदी साहित्य सम्मेलन का आयोजन किया। अन्य संस्थाओं के समान ही इस संस्था ने भी राजस्थान में हिंदी के प्रचार का महत्त्वपूर्ण उद्योग किया। इन समस्त उद्योगों के बाद भी राजस्थान की स्थिति विद्या और बुद्धि दोनों में काफी दयनीय थी जैसा कि हिंदी साहित्य सम्मेलन के प्रचारक पं. जीवानंद ने 1913 ई. में राजस्थान के विभिन्न भागों में भ्रमण कर हिंदी की स्थिति और विद्योन्नति के संबंध में जो रिपोर्ट सम्मेलन के मंत्री के पास भेजी थी उससे बहुत कुछ यथार्थ स्थिति का ज्ञान होता है जिसमें उन्होंने लिखा था—''राजपूताना जैसा अज्ञान गह्वर में पड़ा हुआ है वैसा और प्रांत कदाचित ही होगा। इधर के कितने विद्या-दिग्गज हिंदी के प्रचार से अपनी रोटी मारी जाना समझते हैं। उनकी धारणा है कि वैश्यों के पढ़ जाने से हमारे गुलछर्रे नहीं उड़ेंगे और हम उनको जिधर चाहेंगे उधर उनकी नाक पकड़कर नहीं ले जा सकेंगे।'' उन्होंने जहाँ केकड़ी, उदयपुर और बीकानेर राज्यों में जागृति की प्रशंसा की; यहाँ तक कि बीकानेर को 'राजपूताना की कीचड़ में कमल' की संज्ञा दी, वहीं, अजमेर, नसीराबाद, पीपाड़,

चुरु, सरदारशहर, भरतपुर, कोटा और चित्तौड़ जैसे जगहों की दयनीय स्थिति का वर्णन किया और सबसे खराब स्थिति मारवाड़ की बताई और अपनी रिपोर्ट में लिखा कि ''यहाँ की दशा सबसे शोचनीय थी। सिवाय जुआ और मादक द्रव्यों के सेवन के लोग यह भी नहीं सोचते कि विद्या भी कोई वस्तु है।''

1913 ई. में सम्मेलन द्वारा पं. जीवानंद को राजस्थान में हिंदी के प्रचार के लिए भेजा गया। पं. जीवानंद ने अत्यधिक परेशानियों एवं असुविधाओं का सामना करते हुए भी तीन महीने पंद्रह दिन राजस्थान के विभिन्न भागों में भ्रमण किया, व्याख्यान दिया एवं लोगों को हिंदी का प्रयोग करने हेतु प्रेरित किया। इस प्रचार कार्य के दौरान व्यावर, अजमेर, नसीराबाद, केकड़ी, पीपाड़, मारवाड़, बीकानेर, चुरु, सरदारशहर, भरतपुर, कोटा, चित्तौड़ और उदयपुर इत्यादि स्थानों का भ्रमण किया। उनके प्रचार के दौरान व्यावर में उनके 6 व्याख्यान हुए और व्यावर की नागरी प्रचारिणी सभा ने और अधिक उत्साह से कार्य करना आरंभ किया। अजमेर में कई व्याख्यान दिया और एक अलग नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना की। नसीराबाद में 6 व्याख्यान दिया एवं एक नागरी प्रचारिणी सभा एवं एक हिंदी पुस्तकालय स्थापित किया। पीपाड़ में लोगों में हिंदी के लिए अत्यधिक उत्साह दिखा। मारवाड़ में लोगों ने चतुर्भुज मंदिर में शपथ ली कि आज से अपने लड़कों को हिंदी पढ़ाते हुए इसी भाषा में उच्च शिक्षा भी देंगे। बीकानेर में तो ऐसा उत्साह दिखा कि 'नागरी भवन' के लिए 10,000 रुपए तत्काल इकट्ठा हो गया। चुरु में सनातन धर्म सभा स्थापित हुई। भरतपुर में हिंदी-साहित्य समिति के सहयोग से हिंदी का झंडा फहरने लगा। कोटा में एक हिंदी साहित्य समिति की स्थापना हुई। पहले से ही कार्यरत चित्तौड़ की विद्या प्रचारिणी सभा ने सम्मेलन से अपना संबंध स्थापित कर लिया और उदयपुर में 5 व्याख्यान के फलस्वरूप हिंदी के प्रति ऐसा उत्साह दिखा जिसकी कल्पना स्वयं प्रचारक महोदय ने भी नहीं की थी।

हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा राजस्थान में भेजे गए हिंदी प्रचारक के प्रचार का परिणाम यह हुआ कि राजपूताना के विभिन्न भागों में हिंदी के प्रचार की धूम मच गई और कितनी ही हिंदी प्रचारक संस्थाएँ, विद्यालय और पुस्तकालय राजस्थान के विभिन्न भागों में स्थापित हो गए। इन सब प्रयासों का समष्टिगत प्रभाव यह हुआ कि 1913-14 ई. में ही मारवाड़ की रिजेंसी कौंसिल ने अपने राज्य में सब अधिकारियों में यह आज्ञा प्रचारित कर दी कि वे तीन साल के भीतर देवनागरी अक्षर लिखना-पढ़ना सीख लें। इस अवधि के बाद देवनागरी अक्षरों का प्रचार हो जाएगा। इसी वर्ष राजपूताने के चीफ कमिश्नर ने देवनागरी अक्षरों के प्रचार की आज्ञा दे दी और अजमेर में तो यह आज्ञा कार्यरूप में भी परिणत हो गई तथा केकड़ी व नसीराबाद की अदालतों में भी नागरी अक्षरों का प्रचार हो चला।

चूँकि हिंदी राष्ट्रीय आंदोलन से अभिन्न रूप से जुड़ चुकी थी अतएव जहाँ हिंदी पहुँच जाती वहाँ राष्ट्रीयता अपने आप पहुँच जाती थी। 1920 ई. के असहयोग आंदोलन का प्रभाव राजस्थान पर भी पड़ा और देश के अन्य भागों के समान राजस्थान में भी आंदोलन के दौरान जो व्याख्यान इत्यादि हुए वे अधिकांशतः हिंदी में ही हुए जिसके फलस्वरूप राजस्थान में भी हिंदी का प्रचार तीव्र वेग से हुआ। हिंदी के बढ़ते हुए प्रभाव का ही परिणाम था कि 20 मार्च, 1920 ई. को भरतपुर रियासत में यह आज्ञा निकली कि राज्य का काम जिस प्रकार उर्दू में होता है, उसी तरह हिंदी में भी होगा। यद्यपि इससे पूर्व 4 अक्तूबर, 1919 ई. को भरतपुर में राज्य कर्मचारियों के लिए आज्ञा हुई थी कि वे 3 माह के भीतर हिंदी सीख ले पर यह आज्ञा असफल हो गई थी। राजस्थान में हिंदी के प्रति बढ़ रहे अनुराग का ही फल था कि 1928 ई. में कांकरौली (मेवाड़) में 'विद्या भवन' की स्थापना हुई। मेवाड़ में हिंदी और संस्कृत के प्रचार में इस संस्था का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। इस संस्था के पुस्तकालय, 'सरस्वती भंडार', में संगृहीत दुर्लभ पुस्तकें और पांडुलिपियाँ इसके महत्त्व को स्वयं ही स्पष्ट कर देती हैं।

चूँकि हिंदी राष्ट्रीय आंदोलन से अभिन्न रूप से जुड़ चुकी थी अतएव जहाँ हिंदी पहुँच जाती वहाँ राष्ट्रीयता अपने आप पहुँच जाती थी। 1920 ई. के असहयोग आंदोलन का प्रभाव राजस्थान पर भी पड़ा और देश के अन्य भागों के समान राजस्थान में भी आंदोलन के दौरान जो व्याख्यान इत्यादि हुए वे अधिकांशतः हिंदी में ही हुए जिसके फलस्वरूप राजस्थान में भी हिंदी का प्रचार तीव्र वेग से हुआ। हिंदी के बढ़ते हुए प्रभाव का ही परिणाम था कि 20 मार्च, 1920 ई. को भरतपुर रियासत में यह आज्ञा निकली कि राज्य का काम जिस प्रकार उर्दू में होता है, उसी तरह हिंदी में भी होगा।

राजस्थान में हिंदी के बढ़ते प्रचार और राजस्थानवासियों के हिंदी के प्रति उत्साह को ध्यान में रखते हुए और इस आंदोलन को और बल प्रदान करने के उद्देश्य से हिंदी साहित्य सम्मेलन का 17वाँ अधिवेशन संवत 1983 वि. (1926 ई.) में भरतपुर में आयोजित किया गया। इस सम्मेलन के मुख्य आयोजक भरतपुर के महान हिंदी सेवी युधिष्ठिर प्रसाद चतुर्वेदीजी थे। यह सम्मेलन

हिंदी के उद्भट्ट विद्वान और प्रख्यात इतिहासकार पं. गौरीशंकर हीराचंद ओझा की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। इस सम्मेलन के दौरान राजस्थानवासियों में हिंदी के प्रति जो उत्साह दिखा वह उल्लेखनीय था। सम्मेलन के अधिवेशन का ही प्रभाव था कि भरतपुर रियासत ने अपने राज्य में हिंदी के प्रचार के लिए 27 जनवरी, 1928 ई. को विधिवत राजाज्ञा जारी की।

1930 ई. में गांधीजी द्वारा सविनय अवज्ञा आंदोलन आरंभ हुआ तो इसके फलस्वरूप राष्ट्रभाषा हिंदी का संपूर्ण देश में व्यापक प्रचार हो गया और इस समय तक हिंदी राष्ट्रव्यापी हो गई थी और हिंदी समाचार-पत्रों की संख्या और पढ़नेवालों की संख्या में तो आशातीत वृद्धि हुई। परंतु जिस प्रकार हिंदी का प्रचार बढ़ रहा था उसी क्रम में उसका विरोध भी बढ़ रहा था। गांधीजी और कांग्रेस हिंदी और उर्दू के मेल से बनी हिंदुस्तानी (जो नागरी लिपि में लिखी एक प्रकार से उर्दू ही थी) भाषा का प्रचार कर रहे थे और 1935 के शासन विधान के अनुसार 1937 के चुनाव में जब प्रांतों में कांग्रेस की सरकारें बनीं तो कांग्रेस ने प्रांतीय भाषाओं के साथ ही हिंदुस्तानी का राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचार आरंभ किया। राजस्थान में, जहाँ सैकड़ों वर्षों से उर्दू और फारसी का प्राबल्य था, इस बात से उर्दू को काफी बल मिला।

परंतु जनता नि:संदेह हिंदी के पक्ष में थी और रजवाड़ों द्वारा उर्दू और अंग्रेज़ी को प्रोत्साहन देने के कारण राजस्थान की जनता आंदोलन पर उतर आई। 1935 ई. में जयपुर में जनतंत्रीय व्यवस्था के विकास के लिए 'प्रजा मंडल' की स्थापना की गई, जिसकी माँगों में हिंदी का प्रयोग भी एक था। नाथद्वारा रियासत के मुंसिफ मजिस्ट्रेट शिवकुमार शास्त्री ने 1937 ई. में 'साहित्य मंडल' की स्थापना की। यह संस्था काशी की नागरी प्रचारिणी सभा और हिंदी साहित्य सम्मेलन से संबद्ध थी। हिंदी प्रचार के साथ ही साहित्यिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक गतिविधियों को इसने खूब क्रियान्वित किया। इसी समय 1938 ई. में इस आशय का धूल उड़ा कि 'अलवर राज्य की राजभाषा उर्दू हो गई है' तो राजस्थान में जनता आंदोलन पर उतर आई, तब काशी की नागरी प्रचारिणी सभा ने वास्तविकता जानने हेतु अलवर राज्य से पत्र व्यवहार किया तो वहाँ के प्रधानमंत्री के सचिव ने उत्तर दिया कि ''मैं आपके पत्र सं. 1157/46 तारीख 29 सितंबर, 1938 के अनुसार आपको सूचित करता हूँ कि इस प्रकार की कोई विज्ञप्ति नहीं प्रकाशित हुई है कि अलवर राज्य के न्यायालयों की भाषा उर्दू कर दी गई है।'' इस प्रकार 1940 ई. तक राजस्थान में अनेक व्यक्ति एवं संस्थाएँ हिंदी के लिए कार्यरत थीं और हिंदी की माँग जोर पकड़ती जा रही थी।

1940 ई. में जिन्ना के एक अलग राष्ट्र की माँग और उर्दू को उसकी राष्ट्रभाषा बनाए जाने की बात पर राजस्थान में हिंदी के लिए उग्र आंदोलन आरंभ हो गया। स्थिति को देखते हुए भरतपुर कौंसिल ने 29 जुलाई, 1941 ई. को शुद्ध हिंदी के व्यवहार के लिए प्रस्ताव संख्या 342 पास किया और हिंदी के व्यवहार को प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए 6 अगस्त, 1941 ई. को आज्ञा संख्या 17388 जारी किया। 1942 ई. में 'जोधपुर नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना हुई, जिसके पहले वार्षिक अधिवेशन में भाग लेने के लिए पं. रामनारायण मिश्र और चंद्रबली पांडे महावीर सिंह गहलौत के साथ काशी से जोधपुर गए। 1 जनवरी, 1943 ई. को पं. रामनारायण मिश्र और चंद्रबली पांडे के बड़े ही प्रभावपूर्ण व्याख्यान हुए। इसी अधिवेशन में रामचंद्र शर्मा 'वीर' ने यह घोषणा की कि यदि जयपुर राज्य में हिंदी को प्रमुख स्थान नहीं दिया गया तो मैं आमरण अनशन करूँगा। इस घोषणा के फलस्वरूप 15 जनवरी, 1943 ई. को अनशन आरंभ कर दिया जो जयपुर राज्य के जनवरी 1943 ई. के अंत के इस आदेश कि 'रियासत का सब काम हिंदी में होगा', अनशन समाप्त हुआ, पर इस आदेश के पूर्ण क्रियान्वयन के न होने पर पुन: अनशन आरंभ हो गया।

राजस्थान में हिंदी की माँग की उग्रता को देखते हुए और हिंदी आंदोलन को बल प्रदान करने के उद्देश्य से हिंदी साहित्य सम्मेलन का 32वाँ अधिवेशन 24, 25 और 26 सितंबर, 1944 ई. को जयपुर में आयोजित किया गया। इस सम्मेलन के कार्यवाहक अध्यक्ष स्वामी जयरामदास और अध्यक्ष गोस्वामी गणेशदत्त थे। इस सम्मेलन के स्वागत समिति के अध्यक्ष सेठ रामनाथ पोद्दार थे। इस सम्मेलन में दो ही विषय मुख्य रूप से छाया रहा-प्रथम, गांधीजी का सम्मेलन से इस्तीफा (गांधीजी ने हिंदुस्तानी के समर्थन में सम्मेलन की स्थायी समिति से इस्तीफा दे दिया था) और दूसरा, रियासतों में हिंदी को राजभाषा बनाने का प्रश्न। सम्मेलन के प्रयत्नों से इंदौर, ग्वालियर, बड़ौदा आदि अहिंदी भाषी रियासतों में हिंदी राजभाषा मान ली गई थी और राजपूताने में बीकानेर, जयपुर, जोधपुर, भरतपुर, अलवर आदि रियासतों में पहले से ही हिंदी को राजभाषा माना जा चुका था, किंतु अंग्रेज़ी और उर्दू के अधिक चलन के विरुद्ध इस सम्मेलन में प्रस्ताव पारित किया गया। इतना ही नहीं, राजस्थान में हिंदी की अत्यधिक माँग को देखते हुए सम्मेलन का 33वाँ अधिवेशन भी राजस्थान के उदयपुर नगर में ही आयोजित किया गया जो कि काफी महत्त्वपूर्ण था।

भारत के लिए संविधान निर्माण के लिए बनी संविधान निर्मात्री सभा की कार्यवाही आरंभ होने के साथ ही हिंदी को राजभाषा बनाने की माँग उठने लगी और कार्यवाही के दौरान राजस्थान के सभी सदस्यों ने एक स्वर से हिंदी को राजभाषा बनाने की माँग की। 15 अगस्त, 1947 ई. को भारत की आज़ादी के साथ ही नवंबर 1947 ई. में संयुक्त प्रांत की सरकार ने हिंदी को प्रांत की

राजभाषा और नागरी को राज्य की अधिकृत लिपि घोषित कर दिया। जब केंद्रीय सरकार ने इसके विरुद्ध कोई कार्यवाही न की, तब समझा गया कि यह प्रांतों का नैसर्गिक अधिकार है, फलस्वरूप मध्य प्रांत, बिहार इत्यादि प्रांतों ने हिंदी को राजभाषा घोषित कर दिया। इस बात से उत्साहित होकर जयपुर विधानसभा ने 2 फरवरी, 1948 ई. को हिंदी को राजभाषा घोषित कर दिया।

14 अगस्त, 1949 ई. को एक अति महत्त्वपूर्ण घटना घटी जब राजस्थान राज्य संघ ने बड़ी तेज़स्विता का परिचय दिया और संघ के राजप्रमुख (जयपुर नरेश) ने एक ऑर्डिनेंस पर हस्ताक्षर करके यह घोषित किया कि ''राजस्थान हाईकोर्ट की भाषा हिंदी और लिपि नागरी होगी। हाईकोर्ट का सब काम नागरी-हिंदी में होगा।'' भारतवर्ष में इस प्रकार की यह पहली ही घोषणा थी। राजस्थान सरकार को और सरकार के राजप्रमुख को इस ओजस्वी काम से अत्यधिक सम्मान प्राप्त हुआ। राजस्थान की हाईकोर्ट ने भी तत्काल आर्डिनेंस को प्रभाव से लागू करते हुए 13 सितंबर, 1949 ई. को सभी मातहद अदालतों को हिंदी फैसला लिखने और देने का आदेश दिया और साथ ही यह भी आदेश दिया कि ''अदालतों के सभी कागज-पत्र हिंदी में रखे जाएँ और कर्मचारी यथाशीघ्र हिंदी सीख लें।''

संविधान निर्मात्री सभा में भी भारत की केंद्रीय सरकार की राजभाषा एवं राजलिपि के लिए राजस्थान के समस्त सभासदों ने एक स्वर से नागरी (हिंदी भाषा और नागरी लिपि) का समर्थन किया। इस प्रश्न पर विचार करने के लिए जब 6-7 अगस्त, 1949 ई. को दिल्ली में 'राष्ट्रभाषा सम्मेलन' का आयोजन किया गया, जिसमें भारतभर के सौ से अधिक विद्वान सम्मिलित हुए, में भी राजस्थान के सदस्यों ने हिंदी का ही समर्थन किया। संविधान निर्मात्री सभा में अंकों के प्रश्न पर भी राजस्थान के सदस्यों ने देवनागरी अंकों का ही समर्थन किया। अंत में 300 संशोधन के बाद राजशक्ति के बल और नेहरूजी के इस आदेश कि 'कांग्रेस दल का कोई भी सदस्य विधान परिषद में 'मुंशी आयंगर सूत्र' के विरुद्ध न तो मत दे और न इस पर कोई संशोधन पेश करें' के आधार पर 14 सितंबर, 1949 ई. को 'मुंशी आयंगर सूत्र' के आधार पर अनुच्छेद 343(1) में यह विधान किया गया कि ''संघ की भाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा।'' पर साथ ही 342(2) खंड (1) द्वारा 15 वर्षों तक अंग्रेज़ी के प्रयोग की स्वीकृति प्रदान कर दी गई। अंग्रेज़ी को इस प्रकार स्वीकृति मिलने पर भी संयुक्त राजस्थान बनने के बाद 1952 ई. में 1948 ई. के निर्णय को अधिनियम के रूप में पुन: दोहराया गया। 1956 ई. में अजमेर के विलय के बाद एक नियम के रूप में हिंदी को पुन: राजभाषा के रूप में घोषित किया गया और वह आज भी राजकार्य में प्रतिष्ठित और व्यवहृत है।

इस प्रकार राजस्थान में हिंदी की विकास यात्रा का अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत में मुसलमानों के आक्रमणों के पूर्व राजस्थान में हिंदी का ही व्यवहार था। मुसलिम प्रभाव स्थापित होने पर यद्यपि राजकार्य में फारसी और बाद में उर्दू का प्रचलन हुआ, परंतु आम जनता की भाषा हिंदी ही थी। अंग्रेज़ों के आगमन और भारतीय नवजागरण के साथ ही राजस्थान में भी सभा-संगठनों की स्थापना एवं हिंदी का प्रचार बढ़ा। 20वीं सदी के आरंभ के साथ ही राजस्थान में हिंदी का प्रचार तेज़ी से बढ़ता गया और आम जनता ने इस आंदोलन में सक्रिय भागीदारी दी। राजस्थान की जनता के साथ ही सभा-संगठनों ने देश की समानधर्मा संस्थाओं के साथ मिलकर हिंदी आंदोलन को व्यापक रूप प्रदान किया और राष्ट्रीय आंदोलन के साथ ही हिंदी राष्ट्रव्यापी होती चली गई तथा राजस्थान में हिंदी के लिए उग्र आंदोलन एवं अनशन हुए। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही भारत के अन्य प्रांतों के समान राजस्थान की विधान परिषद और यहाँ तक कि हाईकोर्ट ने भी हिंदी को जारी कर अग्रगामिता का परिचय दिया और भारत की संविधान निर्मात्री सभा में राजस्थान के सभासदों ने हिंदी के प्रति जो सहानुभूति दिखलाई वह प्रशंसनीय थी। संयुक्त राजस्थान बनने के बाद भी हिंदी के प्रति जो वचनबद्धता दोहराई गई वह उल्लेखनीय है। आज जबकि सर्वत्र अंग्रेज़ी का बोलबाला है फिर भी राजस्थान में सरकारी कामकाज, शिक्षा के माध्यम और संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का काफी प्रचलन है तथा राजस्थान में हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है।

—ए-338, सरस्वती नगर
जोधपुर-342005, राजस्थान (भारत)
इ-मेल : nkchat19@gmail.com

❑

सर्वोत्तम विजय प्रेम की है, जो सदा के लिए विजेताओं का हृदय बाँध लेती है।

— अशोक

28

विदेशों में हिंदी दिवस के आयाम

–डॉ. कौशल किशोर श्रीवास्तव

- भारत के बिहार प्रदेश में जन्म, भारत में ही 'मास्टर और साइंस' की डिग्री।
- ऑस्ट्रेलियन नेशनल विश्वविद्यालय, कैनबेरा से 1977 में भौतिक विज्ञान में 'पी-एच.डी.'। बाद के वर्षों में ब्रिटेन, अमेरिका और भारत के विश्वविद्यालयों में अनुसंधान और शिक्षण का कार्य।
- हिंदी में कविता लेखन, ऑस्ट्रेलिया की मासिक पत्रिका 'हिंदी पुष्प' में कई कविताओं का प्रकाशन। बिहार (भारत) से प्रकाशित विज्ञान पत्रिका लेख।
- मेलबोर्न में एक भारतीय संघ में सक्रिय रूप से कार्य तथा अंग्रेज़ी भाषा में भी समयानुसार लेखन।

सितंबर 2012 में यह लेख लिखते हुए मुझे 'हिंदी दिवस' और 'शिक्षक दिवस' की याद आती है। दोनों अपनी महत्ता के लिए मशहूर हैं। एक जहाँ भारत सहित पूरे विश्व में हिंदी प्रचार-प्रसार का प्रतीक बन गया है, वहीं दूसरा शिक्षा के सर्वांगीण विकास का स्तंभ और वस्तुत: दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। मेरा यह लेख हिंदी दिवस को समर्पित है और यही भावना इसके शीर्षक में समाहित है।

'हिंदी दिवस' हिंदी भाषा की पौराणिकता, गरिमा और भारतीय संस्कृति की अनवरत धारा का पर्याय है। यह हमारे गौरव और आत्मसम्मान का प्रतीक है। इसके सर्वांगीण विकास और प्रचार के लिए समर्पित लोगों के प्रति हम सभी आभारी हैं। प्रति वर्ष 'हिंदी दिवस' पर साहित्यकारों, प्रभावशाली लेखकों, कवियों और राजनीतिज्ञों द्वारा अपना उदगार व्यक्त करना और हिंदी को जीवन में प्रमुख स्थान का आग्रह करना एक परंपरा जैसी है। हम उनके सभी विचारों और प्रयासों का सम्मान करते हैं। मैं कोई पेशेवर लेखक या कवि नहीं हूँ और न किसी दुराग्रह से प्रभावित हूँ। कुछ वर्षों से मेलबॉर्न (ऑस्ट्रेलिया) में रहते हुए हिंदी प्रचार के संदर्भ में मैंने जो अनुभव किया है, उसे कहना चाहूँगा।

हिंदी दिवस कैसे मनाया जाए, इसपर कैसे संदेश दिए जाएँ। कैसे लेख लिखे जाएँ, इत्यादि एक विस्तृत विविधतापूर्ण विषय है और इसकी समालोचना करना मेरा उद्देश्य नहीं है। मेरी दृष्टि में विदेशों में हिंदी दिवस मनाने का एक मुख्य उद्देश्य 'हिंदी भाषा का प्रचार और उत्थान' होना चाहिए, यह संदेश वहाँ के लोगों के बीच जाना चाहिए और उनकी प्रशंसा होनी चाहिए जो इसमें सक्रिय रूप से सहायक हैं। कहने का तात्पर्य यह कि यह अवसर विशेष रूप से स्थानीय लोगों के प्रति समर्पित होना चाहिए। उदाहरणस्वरूप, भारतवर्ष से लिखे किसी लेख के प्रकाशन की तुलना में स्थानीय लेखकों को उचित अनुपात में स्थान दिया जाना चाहिए। भारतवर्ष तो हिंदी की जननी है, इसके भीतर रहकर लेखकों, कवियों,उपन्यासकारों ने हिंदी साहित्य का अनुपम सृजन किया है और इसकी परंपरा जीवित है। ऐसे कर्मठ विद्वानों के लेख विदेशों में रहनेवाले हिंदी प्रेमियों का उत्साह बढ़ाते हैं और समय-समय पर विदेशी पत्रिकाओं में उनके लेखों का प्रकाशन काफी महत्त्वपूर्ण है।

मेलबॉर्न से ही करीब एक दर्जन मासिक पत्रिकाएँ भारतीयों के लिए निकलती हैं—सिडनी एवं अन्य शहर भी पीछे नहीं हैं। ये पत्रिकाएँ मुख्यत: अंग्रेज़ी भाषा में होती हैं जो तरह-तरह के विज्ञापनों से भरी रहती हैं।

इन्हीं कुछ पत्रिकाओं में दो-चार पृष्ठ ही हिंदी के होते हैं जिनमें साहित्य परक लेखों के लिए स्थान और भी सीमित होता है। इस सीमित स्थान में ही ऑस्ट्रेलियावासी हिंदी प्रेमियों और अन्य देशों (भारत भी) से भेजे लेखों का समावेश होता है। कई लोगों के बातचीत के आधार पर मुझे ऐसा लगता है कि जैसे काफी लोग इन्हें विज्ञापनों की ही पत्रिका मानते हैं और इनके अंदर की हिंदी सामग्री पढ़ने से दूर रहते हैं। ऐसे परिप्रेक्ष्य में हिंदी लेखकों की बातें लोगों के बीच कैसे पहुँचाया जाए, एक विचारणीय प्रश्न है। एक दूसरा पहलू है अन्य भारतीय भाषाओं का प्रवेश—जैसे पंजाबी, गुजराती, तमिल इत्यादि भाषाओं का इन

पत्रिकाओं में मुख्य स्थान ग्रहण करना। भारत एक बहुभाषी देश है और सभी भाषाएँ सम्मानित हैं। यह सर्वविदित है कि पंजाब और गुजरात से आए लोग व्यापार में विशेष रूप से शामिल हैं, अधिक सुविधा संपन्न हैं और साथ ही अपनी भाषा का मेरी दृष्टि में अधिक प्रयोग करते हैं। वहीं पर हिंदी भाषी भारतीय बोलचाल में अंग्रेज़ी भाषा का अधिक प्रयोग करते हैं और शायद यह झुकाव उनके परिवार में भी प्रतिबिंबित है। इस परिप्रेक्ष्य में हिंदी की गति यदि धीमी हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

यहाँ हिंदी भाषी भारतीयों को मुख्यत: दो श्रेणियों में रखा जा सकता है।

1. जिनकी स्कूली/कॉलेज शिक्षा भारत में हुई है और फलस्वरूप हिंदी में दक्षता रखते हैं। तथा कालांतर में विशेष कार्यवश विदेश (ऑस्ट्रेलिया) आए।
2. दूसरी पीढ़ी के बच्चे/युवक वर्ग जिनकी शिक्षा मुख्यत: यहीं हुई है या हो रही है। इस श्रेणी के युवकों/युवतियों का हिंदी ज्ञान मुख्यत: उनके परिवार के अंदर बोलचाल पर आश्रित है। ये सभी शिक्षा, व्यवसाय, भाषा तथा सामाजिक दृष्टि से विदेशी मुख्यधारा के अंग हैं और वे ही भारतीय संस्कृति के भविष्य-गामी राजदूत भी हैं। मेरे खयाल में हिंदी भाषा से इनकी दूरी बढ़ती जा रही है जो अस्वाभाविक नहीं है। कुछ प्राथमिक स्कूलों में, जिनकी संख्या मेलबॉर्न में शायद उँगलियों पर गिनी जा सकती है, हिंदी भाषा की औपचारिक शिक्षा हाल में ही शुरू हुई है और इसका प्रभाव निकट भविष्य में देखा जा सकता है। इस मार्ग से शिक्षित बच्चे भी दूसरी श्रेणी में ही आएँगे। इसीलिए आवश्यक है कि हिंदी दिवस पर हम सोचें कि इस वर्ग को (जिसमें अहिंदी समुदाय भी शामिल है) हिंदी के विस्तृत आँचल में कैसे समेटा जाए। श्रेणी-1 के लोग मार्गदर्शन कर सकते हैं, अपनी लेखनी की कला से उत्प्रेरक बन सकते हैं, भारतीय मूल्यों के साथ-साथ पश्चिमी विचारों का यथासंभव आलिंगन कर सकते हैं।

यदि भावनाओं से ऊपर उठकर धरातल पर हम देखें तो पाएँगे कि अंग्रेज़ी भाषा भारत में मज़बूती से स्थापित है। उच्च शिक्षा, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, व्यवसाय इत्यादि में तो इसकी प्रमुखता है ही, राजनीति में भी यह स्थापित है। भारतीय संसद में अंग्रेज़ी का प्रयोग प्राय: देखने को मिलता है, प्रधानमंत्री भी इसी भाषा का प्रयोग करते हैं, नौकरशाहों के बीच भी यही स्थिति है। भारत से अन्य देशों में जानेवाले राजकीय दल या प्रतिनिधि मुख्यत: अंग्रेज़ी भाषा का इस्तेमाल करते हैं, इत्यादि। कहने का तात्पर्य यह है कि विश्व स्तर पर भारत एक अंग्रेज़ी भाषा प्रमुख देश माना जाता है।

ऑस्ट्रेलिया में पिछले दो दशकों के भीतर भारत से बड़ी संख्या में लोग शिक्षा अथवा नौकरी के लिए आए हैं और इनमें युवक वर्ग का बाहुल्य है जो अंग्रेज़ी भाषा में दक्षता रखते हैं। शिक्षा या नौकरी की दौड़ में आगे आने के लिए अंग्रेज़ी भाषा का उच्चतर ज्ञान पाना इनकी नजर में अधिक आवश्यक है, जो स्वाभाविक है। इस वर्ग को हिंदी भाषा के प्रति जागरूक रखना महत्त्वपूर्ण होगा।

यह प्रश्न बराबर उठता है कि ऑस्ट्रेलिया में रहनेवाले बच्चे या युवक वर्ग, चाहे वे भारतीय मूल के हों अथवा नहीं, हिंदी भाषा क्यों पढ़ें? मैं हिंदी भाषा को दो स्तर पर देखता हूँ, बोलचाल के स्तर पर और लिखने-पढ़ने के स्तर पर। बोलचाल के स्तर पर हिंदी सीखना परिवार के अंदर संभव है और शायद आसान भी, पर लिखने-पढ़ने के स्तर पर हिंदी के उचित ज्ञान के लिए औपचारिक शिक्षा जरूरी है जिसके लिए 'समय, रुचि और धन' का निवेश आवश्यक है। आज के व्यावसायिक युग में कोई भी निवेश यह देखता है कि इसका फल क्या है और यह भाषा सीखने के संदर्भ में भी प्राय: लागू होता है। भारत और ऑस्ट्रेलिया के बीच आर्थिक और व्यापारिक संबंध बढ़ रहा है जो दोनों देशों के लोगों के बीच संपर्क बढ़ाएगा। सैलानियों की परस्पर बढ़ती संख्या भी इसी बात को दरशाती है। इस आलोक में यह आशा है कि यहाँ पर हिंदी भाषा की औपचारिक शिक्षा का विकास होगा। परंतु उपयोग के कारण हिंदी की उपयोगिता कम हो सकती है।

इसी मान्यता को यदि चीन देश के संदर्भ में देखा जाए तो निष्कर्ष अलग दिखता है। चीन के साथ ऑस्ट्रेलिया के गहरे आर्थिक और व्यापारिक संबंध हैं जो मज़बूत राजनीतिक संबंध का भी आधार है और ऐसी धारणा को व्यापक समर्थन मिला है कि दोनों देश एक-दूसरे के विकास में अनिवार्य रूप से पूरक हैं। चीन एक आर्थिक महाशक्ति के रूप में भी उभरा है और यह विश्व का केंद्रबिंदु बन चुका है। एक सर्वेक्षण ने प्रकट किया है कि चीन से आए सैलानियों ने ऑस्ट्रेलिया में प्रचुर मात्रा में धन खर्च किया है जो यहाँ की अर्थव्यवस्था में सहायक है और भविष्य में भी इसकी पूर्ण आशा है। इन सबों के बीच चीन में अंग्रेज़ी भाषा प्रचलित नहीं है, इसीलिए यह आवश्यक है कि ऑस्ट्रेलियावासी चीन की भाषा (मंदारीन) पढ़ें और चीनवासी अंग्रेज़ी भाषा पढ़ें। इस पारस्परिक आवश्यकता के कारण चीन की भाषा में यहाँ अधिक रुचि पैदा हुई है। यही दृष्टिकोण चीनी भाषा के औपचारिक प्रचार में सहायक होगा और सरकार भी इसके लिए प्रयत्नशील है।

उच्च शिक्षा के स्तर पर संस्कृत और हिंदी भाषा में पढ़ाई तथा अनुसंधान के लिए ऑस्ट्रेलिया नेशनल विश्वविद्यालय पिछले पैंतीस-चालीस वर्षों से विख्यात रहा है, जब भारतीयों की संख्या यहाँ काफी कम रही होगी। इसका मुख्य उद्‌देश्य प्राचीन भारतीय संस्कृति, दर्शन और इतिहास का अध्ययन रहा होगा और साथ ही कुछ हिंदी भाषी योग्य व्यक्ति तैयार करना जो विदेश सेवा में योगदान कर सकें। अन्य पश्चिम देशों जैसे जर्मनी, ब्रिटेन, जापान इत्यादि में भी

ऐसे शिक्षा केंद्र पहले से कार्यरत हैं और आज अनेकों देश इसमें शामिल हैं। विश्व में फैले ऐसे अध्ययन केंद्रों ने हिंदी साहित्य का सम्मान बढ़ाया है, हिंदी प्रसार में योगदान दिया है और यह सिलसिला जारी है। हाल के वर्षों में चीन के कई विश्वविद्यालयों में भी हिंदी की पढ़ाई शुरू हुई है जो दोनों देशों के बीच बढ़ते व्यापारिक एवं सांस्कृतिक संबंधों के लिए आवश्यक है। देशों के बीच भाषाओं का परस्पर अध्ययन आज अनिवार्य हो गया है और भारत भी इसमें शामिल है। उदाहरणस्वरूप जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, में जर्मन, फ्रेंच, रूसी, मंदारीन सहित कई विदेशी भाषाओं की पढ़ाई होती है, जिसका एक उद्देश्य बहुभाषी कार्यबल तैयार करना भी है। ऐसे प्रयासों से साहित्य को बहुमुखी बनाने के साथ-साथ बंधुत्व भावना का विकास भी होता है।

अभी मैंने जो विचार व्यक्त किए हैं वह एक आशावादी स्वरूप दरशाता है जो स्वाभाविक है। पर हिंदी प्रसार की दृष्टि से मेरी परिकल्पना थोड़ी संकुचित है। मैं मानता हूँ कि समुचित हिंदी प्रसार के लिए सर्वसाधारण को, बच्चों को, युवाओं को, हिंदी भाषा के करीब लाना होगा जिसके लिए स्कूली शिक्षा में हिंदी का प्रवेश अपेक्षित है। हमें एक ऐसे पिरामिड की कल्पना करनी होगी जिसके आधार में भी हिंदी को जगह मिले, न कि केवल शीर्षक पर। आशा है विदेशों में रहनेवाले भारतीय मूल के लोग इस दिशा में प्रयत्नशील रहेंगे।

मैं मानता हूँ कि समुचित हिंदी प्रसार के लिए सर्वसाधारण को, बच्चों को, युवाओं को, हिंदी भाषा के करीब लाना होगा जिसके लिए स्कूली शिक्षा में हिंदी का प्रवेश अपेक्षित है। हमें एक ऐसे पिरामिड की कल्पना करनी होगी जिसके आधार में भी हिंदी को जगह मिले, न कि केवल शीर्षक पर। आशा है विदेशों में रहनेवाले भारतीय मूल के लोग इस दिशा में प्रयत्नशील रहेंगे।

जब हम विदेशों में हिंदी प्रसार की बात करते हैं तो शायद एक प्रभावशाली माध्यम को प्राय: भूल जाते हैं या उसका उचित आकलन नहीं करते हैं। यह माध्यम है हिंदी सिनेमा और इसका दूरगामी प्रभाव। इस विषय में शायद हम भारतीय साहित्यकारों, कवियों, लेखकों, उपन्यासकारों इत्यादि के विचारों से ग्रसित होकर बाहर नहीं निकल पाते हैं। इस समुदाय का शुरू से ही विश्वास रहा है कि सिनेमा जगत ने अपने संगीत, बातचीत, भाषा, प्रवाह शैली, इत्यादि से 'प्रामाणिक हिंदी' या 'हिंदी साहित्य' के स्तर को ऊँचा उठाने में कोई अनुकरणीय योगदान नहीं दिया है। दूसरे शब्दों में साहित्य जगत और सिनेमा जगत में विरोध रहा है।

मेलबॉर्न में रहते हुए मैंने देखा है हिंदी सिनेमा, बॉलीवुड संगीत और नृत्य का प्रसार और इसके प्रति सभी समुदायों का आकर्षण। आज मेलबॉर्न में अनेक पेशेवर संस्थाएँ हैं जो बॉलीवुड नृत्य का प्रशिक्षण देती हैं जिनमें बच्चे और युवा वर्ग का उत्साहवर्धक प्रवेश है, सिनेमा में प्रचलित भारतीय पोशाकों और आभूषणों की माँग है, संगीत और वार्तालापों में निहित भाव को समझने के लिए हिंदी सीखने की चाह है। आज हिंदी सिनेमा जगत के अनेक संगीतकारों और कलाकारों द्वारा ऑस्ट्रेलिया के शहरों में विभिन्न कार्यक्रम प्रस्तुत किए जा रहे हैं, जिनमें सभी समुदायों के लोग अच्छी संख्या में आते हैं। शायद विश्व के अनेक देशों में भी समान स्थिति है। स्पष्ट है कि हिंदी सिनेमा ने हिंदी भाषा के प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है और इसको स्वीकार किया जाना चाहिए। यह आवश्यक नहीं कि विदेशों में बसे लोगों का दृष्टिकोण पूर्णतया देशवासियों से मिले। हमारे विचारों में समय और परिवेश के समरूप परिपक्वता होनी चाहिए।

हमारा उद्देश्य विदेशों में हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार है। कई क्षेत्रों के लोग तथा अनेक संगठन अपने-अपने तरीके से इसमे प्रयत्नशील हैं और विश्व हिंदी सचिवालय भी इसमें एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। एक शौकिया कवि/लेखक होने के नाते इस संदर्भ में मैं अपना विचार रखना चाहूँगा।

कोई भी लेखक रचना करते समय अपने संभावित पाठक वर्ग को ध्यान में रखता है। 'साहित्य समाज का दर्पण होता है' एक मान्य स्तंभ है, इसीलिए यदि हमारी रचनाओं में वर्तमान समाज की झलक हो। परिवेश की महक हो, तो लेख जीवंत होता है और शायद आकर्षक भी। मेलबॉर्न में रहते हुए यदि मैं कुछ लिखता हूँ तो प्रयास होता है यहाँ का सामाजिक परिप्रेक्ष्य भी सामने रखूँ और अपने भारतीय भावों को भी उजागर करूँ, ऐसी कार्यशैली में सफलता पाने का कोई मापदंड हमारे पास नहीं है, विदेशी और स्वदेशी भावों का कैसा संतुलन होना चाहिए एक व्यक्तिगत निर्णय है, फिर भी मैं इस दिशा में कोशिश करता हूँ।

मैं मानता हूँ कि युवा पीढ़ी को नए विचारों से प्रभावित किया जा सकता है और मेरी कविताओं में यही प्रवृत्ति झलकती है। हिंदी में लिखना अधिक स्वाभाविक लगता है और मैं इसकी चेष्टा करता हूँ। विचारों के साथ-साथ लिखने की शैली भी महत्त्वपूर्ण है जो सहज हो पर आकर्षक हो, खासकर जब अहिंदी भाषी समुदाय के बीच हिंदी प्रसार का उद्देश्य हो। यदि युवा वर्ग को हम आकर्षित कर सकें तो यह हिंदी प्रचार-प्रसार की दिशा में एक सफल प्रयास होगा। इसी संकल्प के साथ मैं विदा लेता हूँ।

—श्रीवास्तव
मेलबर्न, ऑस्ट्रेलिया
इ-मेल : kkps44@yahoo.com

❑

29

रवींद्रनाथ ठाकुर का हिंदी अभिग्रहण

–डॉ. रणजीत साहा

अपनी रचनात्मक व्याप्ति में संस्कृति शब्द के जितने आयाम हो सकते हैं, रवींद्रनाथ उसकी साक्षात् प्रतिमूर्ति ही नहीं, अनन्य प्रवक्ता भी थे। इस तथ्य को दोहराते हुए कि साहित्य और कला की प्रायः सभी विधाओं में उनके अप्रतिम योगदान से संपूर्ण भारतीय साहित्य और संस्कृति का, संपूर्ण विश्व में सम्मान बढ़ा है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। भारतीय संस्कृति में अंतर्निहित विभिन्नता में स्वाभाविक एकता के आदर्श को उन्होंने आजीवन अपने संपूर्ण सृजन कर्म में ढाल दिया, इसीलिए उनकी विपुल संख्यक रचनाओं में कोई भी भारतीय पाठक अपनी छवि देख सकता है। उनके द्वारा रचित 'जन गण मन अधिनायक जय हे', इसीलिए हमारे देश का गौरवपूर्ण राष्ट्रगान बना, जिसमें सारे देश संकल्प व्यंजित है।

रवींद्रनाथ की रचनाओं की रचनात्मक पहचान की विशेषता थी—अपने समय से निरत और गहन संवाद। उनकी कालावधि वैदिक काल से भी पूर्व की किसी सभ्यता और संस्कृति से पूर्व की अलिखित और अचिह्नित कालावधि थी और उनका कार्य-संकल्प किसी समाज या देश काल विशेष में स्थित था। वह निश्चय ही व्यापक और बृहत्तर था और निरंतर प्रवाहमान भी। रवींद्रनाथ विश्वमानव और विश्वकवि थे और उनकी कृतियाँ इसी आकांक्षा और उदात्तता को चरितार्थ करती हैं। इसलिए पूर्ववर्ती पुराधाओं और शास्त्रानुमोदित तथा लोक-संयोजित मूल्यों एवं मर्यादाओं के प्रति भावात्मक एवं रचनात्मक सम्मान ज्ञापित करते हुए भी, वे अपने समकाल को भी पर्याप्त महत्त्व देते रहे। इसलिए अपनी कई पूर्वलिखित रचनाओं को, जो यत्र-तत्र पत्र-पत्रिकाओं और टिप्पणी की शक्ल में, समय-समय पर संशोधित या पुनर्लिखित होती रहीं, उनमें पर्याप्त संशोधन एवं समायोजन करने से वे कभी नहीं चूकते थे और ऐसे में वे रचनाएँ बहुधा नई हो जाती थीं या रूपांतरित हो जाती थीं। यह केवल सर्जनात्मक साहित्य की परिधि तक ही सीमित नहीं रहा। उनके निबंधों और व्याख्यानों में भी यह वैचारिक परिवर्तन देखा जा सकता है।

- **जन्म :** 21 जुलाई, 1946।
- शांतिनिकेतन से पी-एच.डी. तथा तुलनात्मक साहित्य एवं ललित कला अधिकाय में भी उपाधियाँ प्राप्त हैं।
- दिल्ली विश्वविद्यालय, साहित्य अकादेमी और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में अपनी सेवाएँ दे चुके हैं।
- लगभग तीन दर्जन पुस्तकें और कई शोधपूर्ण लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं।
- बांग्ला, अंग्रेज़ी और गुजराती से कई कृतियों का अनुवाद किया है।
- समकालीन रोमानियाई कविता और गीतांजलि के लिए सराहना हुई है।
- कई संस्थाओं और प्रतिष्ठानों से पुरस्कृत एवं सम्मानित हैं।

संप्रति : स्वतंत्र लेखन के अलावा समकालीन भारतीय साहित्य (साहित्य अकादेमी) पत्रिका के अतिथि-संपादक हैं।

रवींद्रनाथ ठाकुर की महत्ता और उनकी उपस्थिति को विभिन्न विधाओं में उनके विपुल लेखन, प्रथम एशियाई रचनाकार के नाते प्राप्त नोबेल पुरस्कार, अन्य साहित्यिक सम्मान, शांतिनिकेतन में विश्वभारती की स्थापना, देश चिंता को विश्वभावना से जोड़ने का आग्रह से जोड़कर देखा गया है। लेकिन उनके सर्जक, साधक एवं चिंतक पक्ष पर हिंदी में व्यवस्थित ढंग से विद्वानों और विशेषज्ञों द्वारा विचार नहीं किया गया।

रवींद्रनाथ का महिमामंडन—निर्विवाद हो या विवादास्पद—केवल उनकी साहित्यिक कीर्ति के लिए ही नहीं साहित्येतर योगदान—कला, संस्कृति , शिक्षा संगीत, सहकारिता एवं ग्रामोन्नयन के लिए भी याद किया जाता रहा है। ऐसी रचनात्मक साहित्य के आधारभूत ही नहीं, किंतु अनिवार्य पक्षों की तरफ भी न केवल पहल करने के लिए बल्कि लेखकों को अनुप्रेरित करने के लिए भी किया जाता है। शिशु साहित्य, ग्राम साहित्य और लोक

साहित्य तथा मंगल काव्य आदि की ओर पहली बार उन्होंने पाठक समाज का ध्यान खींचा। ऐसा करने के लिए न केवल बांग्ला साहित्य उनका ऋणी है बल्कि हिंदी साहित्य के साथ संपूर्ण भारतीय साहित्य भी, क्योंकि उनकी अनुप्रेरणा से उक्त क्षेत्रों एवं अनुशासनों में कार्य करने और अनुसंधान की दिशा में भी काफी प्रगति हुई। उदाहरणस्वरूप, उनके द्वारा लिखित एक महत्त्वपूर्ण निबंध 'काव्येर उपेक्षिता' उर्मिला विषयक उदासीनता' ने हिंदी के कई कवियों में इस विचार का संचार किया था कि उन स्त्री-पात्रों की भूमिका और मानसिकता पर ध्यान देने की आवश्यकता है; जिनके सहयोग, समर्पण या बलिदान के कारण ही कोई पुरुष नायक इतिहास और समाज में सम्मानित स्थान एवं गौरव प्राप्त करता है, जबकि उसकी पत्नी, प्रेयसी और माँ नेपथ्य में उपेक्षिता की तरह पड़ी रहती है। कोई भूलकर भी उनकी सुध नहीं लेता, इससे आंदोलित आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' में एक लेख लिखकर कवियों को उर्मिला का उद्धार करने का आह्वान किया था। फलत: मैथिलीशरण गुप्त ने 'उर्मिला उत्ताप' शीर्षक से एक काव्य के चार सर्ग भी लिख डाले, लेकिन बाद में रामकथा विषयक 'साकेत' महाकाव्य में उस लिखित सामग्री को समायोजित कर लिया। इस चिंता का सुपरिणाम यह हुआ कि मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, पंत, प्रसाद, निराला, दिनकर, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', 'अज्ञेय', जानकीवल्लभ शास्त्री आदि कवि रचनाकार किसी-न-किसी रूप में रवींद्रनाथ से प्रभावित और अनुप्रेरित अवश्य हुए। 'यशोधरा', 'गोपा', 'उर्मिला', 'कोशा', 'अंबपाली' ही नहीं; 'कैकेयी का अंतर्द्वंद्व' और इस तरह के कई काव्य-ग्रंथों का प्रणयन हुआ।

पुरुष जाति की अहंमन्यता एवं वर्चस्व के प्रतिरोध में स्त्री-सत्ता और स्त्री-चेतना को उद्दीप्त करने का महत् एवं युगानुकूल कार्य रवि ठाकुर ने ही आरंभ किया था। उनके एक लघु नाटक 'ताशेर देश' में निर्जीव ताश के पत्तों के घराने की लाल पान की बेगम में जब आत्मचेतना की स्फुरण जगती है तो ताश के पत्तों पर बने चित्रों की तरह जड़ और पत्थर पुरुषों की अहंमन्यता ही नहीं, उनका साम्राज्य भी ताश के पत्तों की तरह ढह जाता है। ऐसा ही एक अन्य उदाहरण है, रवींद्रनाथ द्वारा पल्ली गीति या ग्राम गीति के महत्त्व और अनुसंधान का, जिसने साहित्य और समाज के निर्माण में लोक तत्त्वों की भूमिका और उनके अनिवार्य अंगों और अनुषंगों की ओर बांग्ला भाषा के विद्वानों और समाज-वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित किया। शिशु-गीत, माँ-मौसी, दादी-नानी की कहानियों, लोरियों; यहाँ तक कि लोक-समाज में प्रचलित उटपटाँग तुक्तकों (बांग्ला में खापछाड़ा 'छड़ा') की ओर भी उनका ध्यान गया, जो किसी समाज के निर्माण के साथ पलती-बढ़ती है और फिर स्वीकृति पाकर उसका अनिवार्य अंग बन जाती है। उन कथकों और उक्तियों की ओर भी निस्संदेह रवींद्रनाथ ने बड़ी गंभीरता से अपने युग का ध्यान आकर्षित किया। उन्हें अपनी निर्मितियों और रचनात्मक उद्धृतियों में स्थान दिया। वर्ष 1907 ई. में प्रकाशित विचित्र प्रबंध एवं अन्य लघु पुस्तिकाओं में रवींद्रनाथ ने साहित्य एवं समाज को परस्पर प्रभावित करनेवाले तत्त्वों एवं कारकों पर बहुत गंभीरता से विचार किया था। निश्चित ही यह उनके पिछले कई वर्षों के गहन चिंतन का प्रतिफल था और हिंदी के वे लेखक, जो बांग्ला भाषा-साहित्य में भी गति रखते थे, वे रवींद्रनाथ के कवि रूप के ही नहीं, उनके चिंतक रूप के भी प्रशंसक हो गए थे।

नोबेल पुरस्कार (13 नवंबर, 1913) प्राप्त होने के पूर्व ही वर्ष 28 जनवरी, 1912 में बंगीय साहित्य परिषद् द्वारा कोलकाता के टाउन हॉल में उनका जन्मोत्सव आयोजित किया गया था। रवींद्रनाथ के जीवनीकार प्रभातकुमार मुखर्जी ने लिखा है कि बंगाल में किसी साहित्यिक प्रतिभा के नागरिकों द्वारा सम्मान का यह पहला अवसर था। रवींद्रनाथ के पहले किसी भी साहित्यकार को ऐसा सम्मान प्राप्त नहीं हुआ था।[1]

उक्त आयोजन की धमक को हिंदी साहित्य जगत ने भी महसूस किया था। 'सरस्वती' के यशस्वी संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसके मार्च अंक (1914 ई.) में 'कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर' शीर्षक आलेख में उनके व्यक्तित्व एवं 'विश्वकविकुल गुरु' के रूप में प्रतिष्ठित उनकी मनीषा की संवर्धना निम्न प्रकार से की थी—

''कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर बंगाल के प्रसिद्ध पुरुषों में से हैं। वह बंग-साहित्य के दैदीप्यमान रत्न हैं। बंगाल में ऐसा कोई भी घर नहीं होगा, जिसमें उनके काव्य और निबंध; उनके उपन्यास और नाटक; उनकी आख्यायिकाएँ और गान न पढ़े जाते हों। उन्होंने अपनी लेखनी के बल से शिक्षित बंगालियों के विचारों में बहुत बड़ा परिवर्तन कर डाला है। इसलिए वह इस समय बंग भाषा के अद्वितीय लेखक समझे जाते हैं।...''धन्य है वह देश और वह जाति, जो अपने साहित्य-सेवियों का आदर करके भगवती सरस्वती की उपासना करे और धन्य है वह महान पुरुष, जो सरस्वती-मंदिर का पुजारी होने के कारण अपने देश और जाति वालों से सम्मानित हो।''[2]

रवींद्रनाथ की सुप्रसिद्ध काव्य-नाटिका 'चित्रांगदा' (रचना एवं प्रकाशन वर्ष 1892 ई.) का हिंदी अनुवाद प्रसिद्ध कथाकार और अनुवादक गोपाल राम गहमरी (1866-1946) ने 1895 में ही किया था। लेकिन उस अनुवाद का नोटिस इसलिए नहीं लिया गया,

---

1. प्रभातकुमार मुखर्जी, रवींद्र जीवनी, पृ. 152
2. महावीर प्रसाद द्विवेदी, रचनावली, खंड 15, पृ. 347

क्योंकि एक गेय और अभिनेय नाटिका को जब तक प्रेक्षक मंच पर न देखें, तब तक उसका वांछित प्रभाव नहीं पड़ता। तब हिंदी का बृहत्तर पाठक समाज या प्रेक्षक वर्ग इससे वंचित था। लेकिन एक साहित्यिक विधा के नाते यह एक प्रशंसनीय पहल थी, क्योंकि उसके पहले बांग्ला से हिंदी में अनूदित होनेवाली कृतियों में सबसे अधिक अनुवाद उपन्यासों के ही रहे थे।

रवींद्रनाथ की कृतियों के हिंदी अनुवाद में जिस प्रकाशक ने रुचि ली, उसमें प्रथम और सर्वप्रमुख नाम इंडियन प्रेस, प्रयाग का है। यहाँ से वर्ष 1900 ई. में नियमित रूप से प्रकाशित 'सरस्वती' मासिक पत्रिका के प्रकाशन के साथ ही रवींद्रनाथ की रचनाओं विशेषकर—उनकी कहानियों के हिंदी अनुवाद छपने लगे थे। लेकिन इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि 'सरस्वती' के आरंभिक (प्रवेशांक) में ही महावीर प्रसाद द्विवेदीजी ने 'कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर' शीर्षक लेख लिखा था। इंडियन प्रेस के व्यवस्थापक गिरिजाकुमार घोष, जो 'पार्वतीनंदन' उपनाम से मौलिक हिंदी कहानियाँ लिखा करते थे, उन्होंने अगले ही वर्ष, यानी 1901 ई. में रवींद्रनाथ की कुछेक कहानियों के हिंदी अनुवाद को प्रकाशित किया। ये कहानियाँ उनकी हाल में प्रकाशित विचित्र गल्प (दो खंडों में प्रकाशित, 1894 ई.), 'छोटो गल्प' (1994 ई.) तथा 'गल्प दशक' (1895 ई.) में संगृहीत कहानियों से ली गई थीं। इस प्रकार एक कवि के मुकाबले रवींद्रनाथ के कहानीकार रूप से ही हिंदी पाठकों का प्रथम परिचय हुआ था।

लेकिन रवींद्रनाथ के जीवनकाल में ही कवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने 'रवींद्र कविता कानन' ग्रंथ लिखकर रवींद्रनाथ की काव्य सर्जना की भरपूर संस्तुति की थी और उनकी कुछ कविताओं का हिंदी में अनुवाद भी किया था। साथ ही, कवि के भाव के अनुरूप अपनी प्रारंभिक कविताओं का हिंदी में अनुवाद किया था। साथ ही कवि के भाव के अनुरूप अपनी प्रारंभिक कविताओं का भी प्रणयन किया। उनके द्वारा संपादित 'मतवाला' में रवींद्रनाथ की 'निरुद्देश्य यात्रा' कविता का व्याख्या सहित अनुवाद 3 मई, 1924 को प्रकाशित हुआ था। निराला ने रवींद्र संगीत की तर्ज पर अपनी कुछ कविताओं को भी 'निराला संगीत' के नाम से गेय बनाने के लिए संगीतबद्ध करने का प्रयास किया। हालाँकि इसमें निराला को आंशिक सफलता ही मिली। रवींद्रनाथ और निराला के साहित्यिक योगदान और व्यक्तित्व एवं कृतित्व को लेकर बाद में तुलनात्मक अध्ययन भी किए गए, लेकिन इसका दायरा उपाधि हेतु शोधकार्य और संबंधित विश्वविद्यालय तक ही सीमित रहा। बौद्धिक विलास या अकादमिक हस्तक्षेप से किसी कृति या कृतिकार का समुचित मूल्यांकन तब तक नहीं किया जा सकता, जब तक संबंधित पाठक समाज की उसमें वैचारिक या भावनात्मक सहभागिता न हो।

लेकिन दूसरी ओर कबीर के साथ रवींद्रनाथ ने तुलसीदास का स्मरण और उनकी महान कृति रामचरितमानस का उल्लेख कई स्थानों पर किया है। वर्ष 1940 में तुलसीदास की जयंती के अवसर पर शांतिनिकेतन में उन्होंने बताया था कि बचपन से ही उन्होंने अपने जोड़ासाँको (ठाकुर परिवार का विशाल पैतृक भवन) में उन दरबानों और नौकरों को ध्यान से देखा था, जो शाम के समय दिन भर की थकान मिटाने के लिए तुलसी रामायण गाते थे और सारे परिवेश को रसमय कर डालते थे। उनके माध्यम से बालक रवि ने सबसे पहले तुलसीदास की प्रतिभा का परिचय प्राप्त किया था।

एक और प्रसंग में तुलसीदास की महत्ता स्वीकारते हुए उन्होंने लिखा कि उनकी रचना ने हिंदी साहित्य की धारा को आगे बढ़ाया है। परिवर्तन के पथ पर नूतन गति का संचार किया है और हिंदी भाषा के गौरव में वृद्धि की है।

चूँकि रवींद्रनाथ भारतवर्ष के निर्माण में प्राचीन इतिहास और संस्कृति तथा साहित्य की अंतर्धारा से परिचित थे, इसलिए भक्तिकाल के विभिन्न उपादानों का महत्त्व भी समझते थे। उनका मानना था, "तुलसीदास ने अपने रामचरितमानस का उपकरण संग्रह किया था वाल्मीकि की रचना से, किंतु उसे उन्होंने अपनी भक्ति से पूरी तरह रस समृद्ध कर नूतन रूप प्रदान किया। यह उनका अपना दान है, पुरातन की आवृत्ति नहीं।···भक्ति द्वारा जिस व्याख्या के माध्यम से उन्होंने रामायण को नूतन परिणति दी, वह साहित्य के लिए असाधारण दान है।"[3]

लेकिन एक महत्त्वपूर्ण उल्लेख के बिना तुलसीदास का प्रसंग समाप्त नहीं किया जा सकता और वह यह कि रवींद्रनाथ ने एक कविता उन्हें केंद्र में रखकर लिखी थी, जिसका शीर्षक है—'स्वामी-लाभ'। इसमें एक ऐसी युवा विधवा की कथा कही गई है, जो नदी तट पर सजी पति की चिता में कूदकर अपने प्राण दे देना चाहती है। ऐसी घड़ी में तुलसीदास वहाँ आ जाते हैं और उसे समझा-बुझाकर घर लौट जाने को कहते हैं। यह तर्क देते हैं कि हे माता, तुम अपने प्राण देकर कौन-सा स्वर्ग पाना चाहती हो? जिस विधाता का वह स्वर्ग है, क्या उसकी यह धरा नहीं है? साथ ही उसे आश्वस्त करते हैं कि महीने भर बाद तुम अपने पति को पा जाओगी। संक्षेप में यह कि मृत पति सशरीर तो नहीं लौटता, लेकिन निरंतर उसकी ध्यानमग्नता, उस युवती ने बाद में यह बताया कि पति तो सदैव उसके अंतर में ही विराजते हैं।

उक्त कविता का आशय और संदेश दोनों स्पष्ट हैं और तुलसीदास के बहाने रवींद्रनाथ ने सती प्रथा का विरोध बहुत प्रभावी

3. रवींद्र जीवनी : प्रभात कुमार मुखोपाध्याय, चतुर्थ खंड, पृ. 223

ढंग से किया है। हालाँकि तुलसीदास से जुड़ी इस कथा की पुष्टि कहीं से नहीं हो पाई है, लेकिन संभव है अपनी लोक-यात्रा के दौरान रवींद्रनाथ को किसी से ऐसी कोई कहानी सुनने को मिली हो और कवि ने उसे एक सोद्‍देश्य कविता का रूप दे दिया।

हिंदी भवन इन साहित्यिक उपक्रमों का यह सुफल ही था। शांतिनिकेतन में सेवारत पं. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने, रवींद्रनाथ की स्नेह छाया में उनकी कुछ महत्त्वपूर्ण रचनाओं के अनुवाद किए, जिनमें शांतिनिकेतन पहला है। इसमें रवींद्रनाथ के वे उद्‍बोधन संगृहीत हैं, जो 1908-1909 के दौरान नियमित रूप से शांतिनिकेतन प्रार्थना मंदिर में दिए गए थे और रवींद्रनाथ की उस आध्यात्मिक भाव-यात्रा को समझने में बहुत सहायक हैं, जो उनकी परवर्ती रचनाओं—विशेषकर 'गीतांजलि', 'गीतालि' और 'गीतिमाल्य' में प्रकट हुईं। औपनिषदिक रहस्यवाद और आत्म-परमात्म सत्ता का संज्ञान प्राप्त कर एक साधक कवि किस तरह इन्हें परिभाषित करता है, यह देखना यहाँ बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसे ही आधार बनाकर पंडित हज़ारीप्रसादजी ने मृत्युंजय रवींद्र नामक पुस्तक का प्रणयन किया, जो उनके कवि, सादहक, चिंतक व्यक्तित्व को दरशाता है।

हिंदी साहित्य की छायावादी रचनाओं पर रवींद्रनाथ ठाकुर की रचनाओं का स्पष्ट प्रभाव था। यही नहीं, रवींद्रनाथ प्रणीत 'गीतांजलि', 'नैवेद्य', 'खेया', 'गीतालि', 'गीतिमाल्य' और 'बलामा' आदि काव्य की अनुप्रेरणा भी हिंदी के शीर्षस्य कवियों की रचनाओं में देखी जा सकती है। यह प्रत्येक युग की एक सहज और स्वाभाविक कवि-वृत्ति है और स्वयं रवींद्रनाथ की आरंभिक कविताओं पर उनके पूर्ववर्ती कवियों (विशेषकर, बिहारीलाल चक्रवर्ती) का स्पष्ट प्रभाव था। स्वयं रवींद्रनाथ ने हिंदी के भक्ति साहित्य और कबीर की रचनाओं का गहन अध्ययन किया था और 'वन हंड्रेड पॉइम्स ऑफ कबीर' में उनके एक सौ पदों को अंग्रेज़ी में रूपांतरित कर संपूर्ण विश्व को कबीर के अप्रतिम काव्य व्यक्तित्व और योगदान से परिचित कराया था। यह ग्रंथ 1914 ई. में एवलिन अंडरहिल की भूमिका और उनकी सहायता से प्रकाशित हुआ था। कहना न होगा, कबीर वाणी को विश्वपटल पर समादृत स्थान दिलाने में रवींद्रनाथ की भूमिका की कभी अनदेखी नहीं हो सकती। इस तरह वर्ष 1939 में जब शांतिनिकेतन में हिंदी भवन की स्थापना हुई तो मध्यकालीन हिंदी साहित्य के पठन-पाठन को पाठ्‍यक्रम का अनिवार्य हिस्सा बनाया गया। इसी का सुपरिणाम था कि पं. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने न केवल कबीर और सूरदास (सूर साहित्य) पर ही ग्रंथ लिखे, बल्कि 'हिंदी साहित्य की भूमिका' और 'मध्यकालीन बोध का स्वरूप' जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के द्वारा हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि की।

रवींद्रनाथ ने हिंदी की शक्ति और संभावना को स्वीकारते हुए किसी प्रवक्ता के नाते नहीं बल्कि उसके प्रशंसक और एक चिंतक के नाते कहा था कि भारतवर्ष की राजनीतिक पराधीनता के कारण वह अब तक उचित स्थान प्राप्त नहीं कर सकी है, जिसकी वह अधिकारिणी है। परंतु यह निश्चित है कि कुछ ही दिनों में यह संसार की प्रमुख भाषाओं में गिनी जाएगी। वह लाखों-करोड़ों लोगों के सुख-दु:ख और आशा-आकांक्षा को प्रकट करनेवाली ऐसी लोकभाषा है, जिसे संस्कृत, प्राकृत, पालि के साथ ही अरबी-फारसी और अंग्रेज़ी जैसी अत्यंत समृद्ध भाषाओं के संपर्क में आने का अवसर मिला है। वह ऐसी भाषा है, जो गुलामी का बंधन काटते-काटते बड़ी हुई है, संघर्ष में जनमी है, संघर्ष में ही पली है और संघर्ष में ही शक्ति संचय करती है।

रवींद्रनाथ ने अपनी मातृभाषा बांग्ला के प्रति समय-समय पर बहुत गंभीरता से और विस्तारपूर्वक विचार किया है। इसी प्रकार देश की संपर्क भाषा के बारे में भी अवसर मिलने पर अपने विचारों को दो टूक शब्दों में रखा है। निस्संदेह वे हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाए जाने के गांधीजी और उनके समर्थकों द्वारा चलाए जाने के प्रयास और प्रश्न पर अपने विचार प्रकट कर रहे थे, जो उन्होंने वाराणसी में आयोजित प्रवासी बंग साहित्य सम्मेलन के अवसर पर (3 मार्च, 1923 को) व्यक्त किए थे। उनका यह व्याख्यान जून 1923 को 'शांतिनिकेतन पत्रिका' में प्रकाशित हुआ, जिसका निम्नांश विशेष उल्लेख है—

''आजकल भारतवर्ष में परस्पर भावों के आदान-प्रदान की भाषा अंग्रेज़ी है। दूसरी एक भाषा (हिंदी) को भी भारतव्यापी मिलन का वाहन बनाने का प्रस्ताव रखा गया है, लेकिन इस तरह यथार्थ समन्वय नहीं हो सकता। संभव है, एकाकारता हो जाए, लेकिन एकता नहीं हो सकती। क्योंकि यह एकाकारता कृत्रिम और संकीर्ण वस्तु है। यह केवल बाहर से सबको एक ही रस्सी में बाँधकर मिलाने का प्रयास मात्र है। जहाँ पर दृश्यों का विनिमय होता है, वहाँ पर स्वतंत्रता एवं विशिष्टता रहने पर ही यथार्थ मिलन हो सकता है।''

वस्तुत: रवींद्रनाथ आरंभ से ही वैविध्य और वैचित्र्य के आराधक एवं प्रशंसक थे। तभी कोई व्यक्ति प्रकृति के साथ जीवन और जगत की लीला का अधिकाधिक आनंद उठा सकता है। वह इस मामले में तर्क जुटाते हैं और कहते हैं—''यूरोप में एक समय लैटिन भाषा ज्ञान-चर्चा की एकमात्र सामान्य भाषा थी। जब तक वह रही, तब तक यूरोप की एकता बाह्य एकता रही और उसमें गहराई नहीं थी।

लेकिन आजकल यूरोप ने अनेक विद्या–धाराओं के सम्मान से जो महत्त्व प्राप्त किया है, वह आज तक किसी देश में संभव नहीं हुआ। इन अलग–अलग देशों की विद्याओं का निरंतर गतिशील सम्मिलन युरोप के अनेक देश की भाषाओं के परस्पर संबंध से ही हो पाया है, जो लैटिन भाषा ज्ञान–चर्चा की एकमात्र सामान्य भाषा थी। जब तक वह रही, तक तक यूरोप की एकता बाह्य एकता रही और उसमें गहराई नहीं थी। लेकिन आजकल यूरोप ने अनेक विद्या–धाराओं के सम्मेलन से जो महत्त्व प्राप्त किया है, वह आज तक अन्य किसी देश में संभव नहीं हुआ। इन अलग–अलग देशों की विद्याओं का निरंतर गतिशील सम्मिलन यूरोप के अनेक देश की भाषाओं के परस्पर संबंध से ही हो पाया है, जो एक भाषा द्वारा कभी संभव न था। आज के दिन यूरोप में राष्ट्रीय वैषम्य का अंत नहीं है, लेकिन उसकी विद्या का साम्य आज भी प्रबल है।''

रवींद्रनाथ ने बांग्ला भाषा के उन्नयन एवं माध्यम के तौर पर इसके अधिकाधिक उपयोग पर जो बल दिया और इसके लिए अथक प्रयास किए, उसकी चर्चा अन्यत्र की जा चुकी है। लेकिन उन्होंने इसी प्रबंधात्मक व्याख्यान में प्रवासी बंगालियों को संबोधित करते हुए उन्हें भाषाई दायित्व के प्रति सचेष्ट एवं सतर्कता बरतने की भी सलाह दी है। वे उनसे कहते हैं—इस उत्तर भारत की काशी में उन्हें क्या मिला, क्या देखा है और आत्मीयजनों की सहयोगिता से क्या पाया है, यह उन्हें हमें बतलाना होगा। हम लोग जो दूर रहते हैं, वे यहाँ की इन सब बातों से परिचित नहीं। बंगाली जब अपनी भाषा के माध्यम से उनके साथ परिचय बढ़ाकर सौहार्द का रास्ता खोलेंगे तो उससे कल्याण होगा। प्रेम की साधना का एक प्रधान सोपान ज्ञान की साधना है।

हिंदी के प्रति अपने प्रेम और अध्यवसाय का रवींद्रनाथ ने इस प्रबंध में उल्लेख भी किया है—''मैं हिंदी नहीं जानता, लेकिन अपने आश्रम में एक मित्र से मैंने सबसे पहले प्राचीन हिंदी साहित्य की अद्‌भुत रत्न–राशि का थोड़ा–बहुत परिचय प्राप्त किया है। प्राचीन हिंदी कवियों के ऐसे सब गान मैंने उनसे सुने हैं, जिन्हें सुनकर ऐसा लगता है, जैसे वे आधुनिक युग के हों। इसका मतलब है कि सच्चा काव्य सदा आधुनिक रहता है। मैंने समझा कि जिस हिंदी भाषा के क्षेत्र में भावों की ऐसा स्वर्णिम फसल उगी है, वह भाषा अगर कुछ दिन परती भी पड़ी रही तो भी उसकी स्वाभाविक उर्वरता मर नहीं सकती, वहाँ पर एक बार फिर खेती का सुदिन आएगा और पौष मास का नवान्न उत्सव होगा। इस प्रकार एक समय अपने मित्र की सहायता से इस देश की भाषा और साहित्य के साथ मेरी श्रद्धा का संबंध स्थापित हुआ था। उत्तर–पश्चिम के साथ यह श्रद्धा का संबंध ही हमारी साधना का विषय होना चाहिए—'मा विद्विषावहे।'

उक्त निबंध की बात को आगे बढ़ाते हुए और वह भी हिंदी के संदर्भ में उनके उस लिखित व्याख्यान का उल्लेख किया जा सकता है, जो मूलत: हिंदी में लिखा और पढ़ा गया था। यह व्याख्यान महात्मा गांधी के अनुरोध पर 6 अप्रैल, 1920 को काठियानाड़, भावनगर (गुजरात) में गुजराती साहित्य सम्मेलन में सभापति के पद से दिया गया था। यह व्याख्यान 'शांतिनिकेतन पत्रिका' (वर्ष 5, संख्या 12, पौष बंगाब्द 1331 (1926 ई.) में छपा था। इसमें रवींद्रनाथ ने जिस हिंदी का प्रयोग किया है, उसका नमूना अवश्य ही दर्शनीय है

''आपकी सेवा में खड़ा होकर विदेशीय भाषा कहूँ, यह हम चाहते नहीं। पर जिस प्रांत में मेरा घर है, वहाँ सभा में कहने लायक हिंदी का व्यवहार है नहीं।''

हिंदी में कहने के लिए, ''महात्मा गांधी महाराज की भी आज्ञा है। यदि हम समर्थ होता, तब उससे बड़ा आनंद और कुछ होता नहीं। असमर्थ होने पर भी आपकी सेवा में मैं दो–चार बात हिंदी में बोलूँगा।...''

''लेकिन मैं सिर्फ कवि हूँ। वाक्य तो मेरा कंठ में है नहीं, है दिल में। मेरी वाणी ऐसा जलसा में बाहर होना तो चाहती नहीं, वह रहती है, छंद का अंदर महल में। उसी वाणी की साधना में सारी जिंदगी भर मैंने निर्ज्जनवास को स्वीकार किया है, मैं तो पौरसभा के योग्य नहीं हो सकता हूँ।...''

''यह पृथ्वी सुंदर है, यह नील आकाश उदार है, यह सूर्यालोक पवित्र है। मनुष्य जो जनम लिया है, मार–काट करने के लिए नहीं। यह सुंदर जगत में चिरसुंदर के स्पर्श लाभ करने के लिए, यह पवित्र आलोक में चिरमानन के आशीर्वाद को लाभ करने के लिए।''

इस संक्षिप्त और संश्लिष्ट व्याख्यान में लोगों के प्रति एक कवि के नाते रवींद्रनाथ ने कृतज्ञता का भाव ही जताया है। उनकी वाणी में देश की दरिद्रता और अपमान के भाव से ऊपर उठकर ऐक्य की भावना को पूरे देश में फैलाने का संदेश सबको दिया गया है। उनका संकल्प है—''भारत को सारी दुनिया के लिए तत्पश्चर्या करना है, क्योंकि दुर्दिन आज आ पड़ा है। विश्व वसुंधरा तपित है, श्यामला वसुधा शोणित से पंकिल और पाप से मलिन है। आज भारत के चिरदिन की साधना का शून्य आसन फिर ग्रहण करना है।''

अपने महत्त्वपूर्ण उपन्यास योगायोग (1929 ई.) में रवींद्रनाथ ने मीरा के पदों की पंक्तियों का हवाला दिया है। उपन्यास की एक पात्रा कुमुदिनी अपनी मानसिक पीड़ा व्यक्त करने के लिए इन्हें गाती–गुनगुनाती है—

'मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोही।
बाप छोड़े, माए छोड़े छोड़े सगा सोही।
मीरा प्रभु लगन लागी जो न होए होई।'

पिया घर आए सोही प्रीतम पिया प्यारे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल बलिहर रे!'

रवींद्रनाथ, कबीर, गुरुनानक, रैदास, मीराबाई, तुलसीदास और सूरदास की रचनाओं से तो परिचित थे ही, बिहारीलाल और दादू आदि संतों के योगदान के बारे में भी जानते थे। शब्द तत्त्व (1923 ई) नामक ग्रंथ में भाषिक संरचना और पद रचनाक्रम में बांग्ला के साथ उन्होंने अन्य सहोदरा (विशेषकर उत्तर भारतीय) भाषाओं के बारे में लिखा है। उन्होंने भाषिक और व्याकरणिक परिवर्तन के प्रसंग में उनके उद्धरण भी प्रस्तुत किए हैं। रवींद्रनाथ की भाषा-दृष्टि और भाषा-चिंतन पर अभी भी बहुत कम लिखा गया है। एकाध विद्वान (डॉ. राधाकृष्ण सहाय) को छोड़कर हिंदी में तो इस बारे में विचार ही नहीं किया गया है।

बनारसीदास चतुर्वेदी ('विशाल भारत' के संपादक), जो रवींद्रनाथ और विश्वभारती से सक्रिय रूप से जुड़े थे, उन्होंने कथाकार प्रेमचंद को शांतिनिकेतन आकर रवींद्रनाथ के साथ भेंट करने का आमंत्रण भी दिया था। लेकिन प्रेमचंद समय नहीं निकाल पाए। प्रेमचंद की मृत्यु (1936 ई.) पर रवींद्रनाथ ने शोक प्रकट करते हुए कहा था, 'वे किसी एक प्रदेश के नहीं थे। उनके निधन से हम सबको क्षति पहुँची है।'

इसलिए जब संत साहित्य (मोटे तौर पर हिंदी भाषा-भाषी समाज में मान्य) से रवींद्रनाथ को परिचित कराने का श्रेय क्षितिमोहन सेन को दिया जाने लगा तो स्वयं सेन महाशय को बड़ी हैरानी हुई। यह भी सही है कि मध्ययुगीन संतों पर उन्होंने पर्याप्त शोध किया था, लेकिन रवींद्रनाथ उनके इस योगदान के पूर्व ही अपना लेखन कार्य संपन्न कर चुके थे।

रवींद्रनाथ के पाठकों और प्रशंसकों में अभिजात और आम दोनों ही वर्ग समान रूप से सम्मिलित रहे हैं। यह देखकर किसी भी भाषा वर्ग और समाज को गर्वमिश्रित हर्ष हो सकता है कि भारत के गौरव को जिस कवि ने बल्कि प्रथम एशियाई नागरिक ने साहित्य का नोबेल पुरस्कार प्राप्त किया था। वह उनके जीवनकाल में ही नहीं, उनके निधन (1941 ई) के सत्तर साल बाद पहले से भी ज्यादा पढ़ा जा रहा है। उनका साहित्य न केवल हिंदी समेत भारतीय भाषाओं में बल्कि विश्व की प्रमुख भाषाओं में निरंतर अनूदित और रूपांतरित हो रहा है। यह भी सच है कि भारत और विश्व की अग्रणी भाषा के नाते हिंदी में ही सबसे पहले रवींद्रनाथ की रचनाएँ अनूदित हुईं। यदि रवींद्र साहित्य के हिंदी अनुवादों की कोई प्रमाणित सूची तैयार कराई जाए (जैसाकि प्रयास किया जा रहा है) तो एक अनुमान के अनुसार, केवल हिंदी में ही उनकी रचनाओं के ढाई हज़ार से अधिक अनुवाद उपलब्ध हैं। इसका एक कारण उनकी एक ही रचना के कई-कई अनुवाद एवं रूपांतर प्रकाशित हैं। उदाहरण के लिए, गीतांजलि में ही लगभग पचास अनुवाद (गद्य, पद्य और रूपांतर में) प्राप्त हैं। इनमें से कुछ अनुपलब्ध हैं। इन पंक्तियों के लेखक ने भी गीतांजलि का मूल बांग्ला से हिंदी अनुवाद किया है और उसे प्रसन्नता है कि किताब घर, नई दिल्ली से प्रकाशित इस काव्य कृति के अब तक पाँच संस्करण छप चुके हैं, जो इसकी प्रमाणिकता एवं पठनीयता की पुष्टि करते हैं।

रवींद्रनाथ की कहानियों, उपन्यासों, काव्य-संग्रहों, नाटकों, बाल रचनाओं और पत्रादि के अनुवाद विभिन्न प्रकाशकों; जिनमें साहित्य अकादेमी, विश्वभारती और नेशनल बुक ट्रस्ट की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, उनके द्वारा प्रकाशित हैं। हिंदी के कई विशिष्ट रचनाकारों—जिनमें निराला, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, भवानी प्रसाद तिवारी, रामधारी सिंह दिनकर, धन्य कुमार हैन, हंस कुमार तिवारी, भारतभूषण अग्रवाल आदि प्रमुख हैं। रवींद्रनाथ की काव्य कृतियों के अनुवाद किए हैं। इसी प्रकार अज्ञेय, नरेश मेहता, इलाचंद्र जोशी, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, रामनाथ सुमन, अमृत राय, विश्वनाथ नरवणे, रामसिंह तोमर आदि उन प्रारंभिक और प्रमुख अनुवादकों में हैं, जिन्होंने रवींद्रनाथ की गद्य रचनाओं के सफल और सटीक अनुवाद किए हैं। 'गोरा', 'नौका डूबी', 'चोखेर बाली', 'आँख की किरकिरी', 'योगायोग', 'राजा और रानी', 'लाल कनेर (रक्त करबी)', 'ताश का देश' तथा उनकी कहानियों के अनुवाद विभिन्न प्रकाशनों से प्रकाशित हैं। इनका विवरण इस संक्षिप्त आलेख में दे पाना संभव नहीं। रवींद्रनाथ की रचनाओं से कॉपीराइट खत्म हो जाने के बाद बांग्ला मूल के साथ हिंदी में अनूदित कृतियों की बाढ़ सी आ गई है। इनमें से कई अनुवाद मूल की हलकी-फुलकी प्रस्तुति भर ही हैं, लेकिन हिंदी के आम पाठकों को तो उनका प्रिय कवि लेखक और सर्जक रवींद्रनाथ चाहिए—वह चाहे जिस रूप में उपलब्ध हो।

—डॉ. रणजीत साहा
एम.जी.-1/26
विकासपुरी, नई दिल्ली-110018
इ-मेल : drsaharanjit@gmail.com,
sbseditor@gmail.com

❑

गोवा और हिंदी

–डॉ. अनीता गांगुली

प्राकृतिक सौंदर्य से आच्छादित नारियल, आम, काजू, कटहल एवं कोकम से पूर्ण भारत का नंदनवन जिसे परशुराम की भूमि गोवा कहते हैं। परशुराम ने अपने बाणों से इस भूमि की रचना की थी, ऐसी दंतकथा है। सागर और मछली यहाँ के लोगों का जीवन है। कला प्रियता यहाँ की विशेषता है। यहाँ के हरे-भरे पहाड़, जंगल, मुक्त हवा के झोंकों से झूमते खेत खलिहान, एक ओर मांडवी एवं जुआरी नदियाँ दूसरी ओर सुरम्य अरब सागर की लहरें दर्शकों के आँखों को तृप्त कर देते हैं। इन्हीं सब कारणों से आकर्षित होकर चार सौ वर्ष तक पुर्तगालियों ने यहाँ राज्य किया। उनकी संस्कृति का गहरा असर गोवा के जन-जीवन पर पड़ा।

गोवा 18.12.1961 को पुर्तगाली दासता से मुक्त हुआ था फिर कोंकणी भाषा को राज्य भाषा का दर्जा मिला जिसकी लिपि देवनागरी रखी गई। मराठी सह राजभाषा बनी। इससे पहले पुर्तगाली लोग कोंकणी के लिए रोमन लिपि का प्रयोग करते थे। गोवा भारत का सबसे छोटा राज्य है पर शिक्षा में इसका स्थान दूसरा है। यहाँ के 82 प्रतिशत लोग शिक्षित हैं। 18 प्रतिशत अशिक्षितों में स्थानीय लोग न के बराबर हैं। वरन् उनमें बाहर (बिहार, कर्नाटक, महाराष्ट्र आदि) से रोज़गार के सिलसिले में आए लोग ही अधिक हैं। जब गोवा स्वतंत्र हुआ था तब उसकी आबादी 5 लाख थी। अब लगभग 15 लाख है। जनसंख्या, शिक्षा और उत्पादन का संतुलन बना हुआ है इसलिए गोवा में बेरोज़गारी एवं भुखमरी दूसरे राज्यों की तुलना में कम है। हिंदी अध्यापकों के नवीकरण पाठ्यक्रम (रिफ्रेशर कोर्स) के संबंध में मुझे अनेक बार गोवा के हिंदी अध्यापकों से मिलने का मौका मिला है। इसी सिलसिले में मैं आठ बार गोवा गई हूँ। यहाँ का हर व्यक्ति बहुभाषी है। मेरा संबंध हिंदी से ही है। अतः मैं उसी की चर्चा करूँगी।

- **जन्म :** कोलकाता (1954)।
- **शिक्षा :** एम.ए. (संस्कृत, हिंदी), भाषा विज्ञान में डिप्लोमा, पी-एच.डी. हिंदी एवं बंगला क्रियाएँ (आगरा विश्वविद्यालय)।
- **व्यवसाय :** दस वर्षों तक हिंदी शिक्षण सामग्री का निर्माण। 20 वर्षों से हिंदीतर भाषी राज्यों (तमिल, तेलुगु, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, गोवा, पांडिचेरी एवं अंडमान निकोबार) के हिंदी अध्यापकों के अध्यापन में कार्यरत। हिंदी से संबंधित जानकारी प्राप्त करने के लिए स्वीडन, नॉर्वे, डेनमार्क, रूस, पौलेंड एवं इटली का दौरा किया। 1996 में फिनलैंड विश्वविद्यालय की ओर से त्रिनीडाड में हुए पंचम विश्व हिंदी सम्मेलन में भाग लिया।
- **लेख :** हिंदी एवं भाषाविज्ञान से संबंधित प्रकाशित एवं अप्रकाशित लगभग 100 लेख।
- **प्रकाशित पुस्तकें :** हिंदी एवं बंगला की सहायक क्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन, हिंदी फिनिश शब्दकोश, सरल हिंदी व्याकरण (सह लेखक) आदि।

1. शैक्षिक जगत में हिंदी—यहाँ तीन प्रकार के स्कूल हैं—

(क) निजी स्कूल—यहाँ बड़े-बड़े और बहुत प्रसिद्ध निजी स्कूल हैं पर उनमें से अधिकतर स्कूलों में गोवा बोर्ड के बने पाठ्यक्रम ही चलते हैं।

(ख) केंद्रीय विद्यालय—वहाँ भिन्न-भिन्न स्थानों में चार-पाँच केंद्रीय विद्यालय हैं। उनके अपने हिंदी के पाठ्यक्रम हैं।

(ग) सरकारी स्कूल—सरकारी स्कूलों में पहली कक्षा से चौथी तक मातृभाषा (कोंकणी/ मराठी) है। तीसरी कक्षा से छात्र अंग्रेज़ी सीखता है। गोवा मुक्ति के बाद गोवा के छात्रों के लिए हिंदी भाषा ऐच्छिक भाषा के रूप में थी पर 1975 में गोवा एस.एस.सी. बोर्ड की स्थापना हुई तब से हिंदी पाँचवीं से दसवीं तक अनिवार्य द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है। गोवा के नागरिक भाषा के संबंध में जागृत हैं, इसलिए दूसरे राज्यों की तुलना में यहाँ हिंदी की स्थिति थोड़ी

अलग है। पाँचवीं कक्षा से अंग्रेज़ी प्रथम भाषा, हिंदी द्वितीय भाषा एवं मातृभाषा तृतीय भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है। हिंदी की अनिवार्यता को समझते हुए वहाँ के स्कूल पाठ्यक्रम में उसे मातृभाषा से पहले स्थान दिया गया। हिंदी के प्रति प्रेम एवं अध्यापकों के परिश्रम के कारण हिंदी में अनुत्तीर्ण होने वाले छात्रों की संख्या नगण्य है।

यहाँ के माध्यमिक या उच्च माध्यमिक कक्षाओं के हिंदी शिक्षक अहिंदी भाषी भले ही हों, उच्चारण बहुत अच्छा है। लिखने में वर्तनी के प्रयोग में उन पर मातृभाषा कोंकणी या मराठी का प्रभाव जरूर देखने को मिलता है जो कि स्वाभाविक है। शब्दों का प्रयोग वे बड़े सोच-समझकर करते हैं। मन में उभरी शंकाओं का निवारण करने के लिए वे दूसरों से पूछने या चर्चा करने में नहीं हिचकते। उन लोगों को नौकरी के दौरान 45 दिनों की कार्यशाला/नवीकरण पाठ्यक्रम अनिवार्य होता है। 'गोवा राज्य शिक्षा संस्थान' के भाषा विभाग की ओर से इसकी व्यवस्था की जाती है। गोवा के हिंदी पाठ्यपुस्तकों का प्रकाशन शिक्षा संचालनालय पणजी, गोवा द्वारा किया जाता है। प्रारंभ में महाराष्ट्र में लागू पुस्तकें ही वहाँ चलती थीं। उसके बाद गोवा बोर्ड इस कार्य को करता था।

अभी इसी वर्ष नौवीं की नई पुस्तक 'गोमंत प्रसून' लागू की गई है। उसी के संबंध में अध्यापकों के लिए कार्यशाला का भी आयोजन जुलाई माह में रखा गया था। पाठ्यपुस्तकों के नाम भी उस प्रांत की संस्कृति पर आधारित होते हैं जैसे—मांडवी मल्हार आदि। गोवा में हिंदी शिक्षण को विकसित करने के लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान अपनी भूमिका निभाता आ रहा है। वर्ष 2009 में अल्तो परवरिम में स्थित डाइट में यह कार्यक्रम आयोजित किया गया था।

गोवा विश्वविद्यालय 1985 में बना। उससे पहले यहाँ मुंबई विश्वविद्यालय की परीक्षाएँ चलती थीं। लोग उच्च शिक्षा के लिए मुंबई, पुणे, बेलगाँव या धारवाड़ जाते थे, इसलिए यहाँ के अधिकतर अध्यापक कन्नड या मराठी भी जानते हैं। विश्वविद्यालय में फ्रेंच, इटली, पुर्तगाली आदि विदेशी भाषाएँ पढ़ाई जाती थीं। 1961 तक पुर्तगाली राज्य होने के कारण पुराने लोग पुर्तगाली भी अच्छी तरह जानते हैं। पुर्तगाली सीखकर उच्च शिक्षा के लिए पुर्तगाल जाने की सुविधा आज भी प्रदान की जाती है। विश्वविद्यालय में हिंदी के तीन प्रोफेसर हैं। उनसे बात करने पर पता चला कि वहाँ हिंदी में एम.ए. एवं शोध करनेवाले छात्रों की संख्या काफी अच्छी है।

2. हिंदी प्रचार संस्थाएँ—

(क) गोमंतक राष्ट्रभाषा विद्यापीठ—पहले-पहल गोवा में हिंदी के विकास में प्रचार संस्थाओं का बहुत योगदान है। किसी समय वहाँ महाराष्ट्र, पुणे एवं राष्ट्रभाषा प्रचार समिति थी। बाद में ये दोनों संस्थाएँ एक होकर 'गोमंतक राष्ट्रभाषा विद्यापीठ' बन गई। यह संस्था मडगाँव में कोमुनिदान बिल्डिंग में स्थित है। इस प्रचार संस्था का एक विशाल हिंदी पुस्तकालय भी है। यह संस्था 1985 से 'गोमांचल' नामक एक त्रैमासिक हिंदी पत्रिका भी निकालती है। यह पत्रिका हिंदी लेखन को प्रोत्साहित करती है तथा इससे गोवा के नए-नए रचनाकार उभरकर सामने आ रहे हैं। इसके संपादक मोहनदास सुर्लकरजी हैं। इस विद्यापीठ में हिंदी दिवस धूम-धाम से मनाते हैं। इसके साथ ही यहाँ पर बड़े-बड़े साहित्यकारों के जन्मदिन के उपलक्ष्य में संगोष्ठी आयोजित की जाती है। इस वर्ष मई 2012 में राजनेता एवं साहित्यकार स्वर्गीय शंकरदयाल सिंह पर संगोष्ठी आयोजित की गई थी।

(ख) मुंबई हिंदी विद्यापीठ—मुंबई हिंदी विद्यापीठ की पेडणे शाखा 1970 से गोवा में कार्य कर रही है। बहुत से विद्यार्थी हर वर्ष इसकी परीक्षा में बैठते हैं। यह विद्यापीठ गोवा के छात्रों के लिए निबंध प्रतियोगिताएँ, एकांकी प्रतियोगिताएँ तथा वाद-विवाद आयोजित करती है। मुझे कई बार मुंबई हिंदी विद्यापीठ द्वारा आयोजित हिंदी अध्यापक सम्मेलन में शामिल होने का मौका मिला तथा वहाँ उस समय हुई विभिन्न प्रतियोगिताओं का भी आनंद लिया। तत्पश्चात् पुरस्कार वितरण कर छात्र कलाकारों को प्रोत्साहित किया गया। इस प्रकार संपूर्ण गोवा में हिंदी का प्रचार-प्रसार जोर-शोर से हो रहा है।

(ग) दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा—इस सभा की मद्रास की एक शाखा गोवा के वास्को रोड पर स्थित है जो हिंदी प्रचार परीक्षाओं का आयोजन करती है। कोई भी सभा की परीक्षाएँ देकर अपनी योग्यताएँ बढ़ा सकता है।

(घ) प्रयास—पणजी में कार्यरत गोवा की यह संस्था शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से प्रशंसनीय कार्य कर रही है। यह संस्था हर वर्ष माध्यमिक, उच्च माध्यमिक तथा महाविद्यालयों के छात्रों के लिए निबंध प्रतियोगिताओं का आयोजन करती है। साथ ही राष्ट्रीय, प्रांतीय तथा स्थानीय हिंदी कवि सम्मेलन, हास्य कवि सम्मेलनों की व्यवस्था करवाने में भी सराहनीय योगदान देती है।

हिंदी प्रचार के क्षेत्र में यदि श्री माधव पंडित, विनायक नार्वेकर और डॉ. पाटणेकर का नाम न लें तो यह अधूरा ही होगा। हिंदी

दिवस भी वहाँ बड़े उल्लास से मनाया जाता है।

3. सांस्कृतिक कार्यक्रमों में हिंदी—

गोवा में हिंदी बड़े सम्मान से जी रही है। यहाँ के सांस्कृतिक कार्यक्रमों में हिंदी नाटक, हिंदी गाना और चुटकुलों का समावेश होता है। हिंदी सिनेमा, सीरियलों के नाम, गाने और डायलॉग हर जुबान पर होते हैं। हर वर्ष वहाँ हिंदी फिल्म संगीत प्रतियोगिता होती है। हिंदी एकांकी, हिंदी निबंध, हिंदी नाटक, हिंदी भाषण, हिंदी क्विज जैसे सांस्कृतिक कार्यक्रमों द्वारा यहाँ का वातावरण हिंदीमय रहता है। गोमंतक कवि सम्मेलन की अपनी अलग ही पहचान है।

एक बात यह भी है कि मछुआरों की संस्कृति पर आधारित कोंकणी गीतों ने पुराने हिंदी सिनेमाओं में धूम मचा दी थी। 1992 में जब मैं पहली बार गोवा गई थी तब वहाँ जहाँ–तहाँ हिंदी सिनेमाओं के शूटिंग होते दिखाई पड़ते थे। अब उतना नहीं होता। 'बॉम्बे टू गोवा' देखने लायक सिनेमा है। पणजी का मिनेझिस हॉल सांस्कृतिक कार्यक्रमों के लिए काफी चर्चित है। गोवा के सांस्कृतिक मंडल में बहुचर्चित कवि नारायण ए. कुलकर्णीजी ने कोंकणी भाषा को समृद्ध बनाया तथा कोंकणी से हिंदी को। उनकी 'चिंतन की चिनगारी' का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद भी हुआ है।

आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के गीतकार डॉ. पाटलेकरजी ने गोवा की पृष्ठभूमि में हिंदी गीत रचा है—

गोवा हमारा गोवा, यह राज दुलारा गोवा।
सपनों से प्यारा गोवा, जीना सिखाता गोवा॥
भारत भू के सिंधुतीर पर बसा हुआ है गोवा।
नवचेतन की मंगलता है, शान हमारा गोवा॥

यह धरती उगाए सोना
गोवा हमारा गोवा
मंगेशी हमारी काशी, मांडवी हमारी गंगा
शांतादुर्गा, अविनाशी है शांति यहाँ की अभगा

मछली है सागर का धन।
तरसे जिस बिन गोवा जन॥
गोवा हमारा गोवा

कलंगूट का मस्त किनारा, नव यौवन का है इशारा
वास्को बंदरगाह प्यारा, व्यापार जीवन का सहारा
पणजी है राजधानी, सुंदरता की हैरानी

दु:ख संकट को यह मिटाए
कश्ती को पार लगाए
गोवा हमारा गोवा।

एक बार कलंगूट में हिंदी शिविर का आयोजन था। कार्यक्रम के संयोजक ने शिविर के लिए उस स्थान को चुने जाने का कारण बताया कि यहाँ पर इस गाँव में भारतीय और विदेशी लाखों सैलानी आते हैं। कुछ सिर्फ घूमने आते हैं। कुछ फेनी (काजू के फल से बनी शराब) पीने आते हैं और कुछ सिर्फ देखने आते हैं। भिन्न–भिन्न वेशभूषाओं में आते हैं। इन सबके बीच भी भारतीय संस्कृति सुरक्षित है। हिंदी सुरक्षित है।

4. दूरदर्शन, आकाशवाणी और पत्र-पत्रिकाएँ—

गोवा के बच्चे जो अभी स्कूल नहीं गए, अच्छी हिंदी बोलते हैं। बूढ़े, जिन्होंने कभी स्कूल भी नहीं देखा, हिंदी समझते हैं। इसका कारण है दूरदर्शन। दूरदर्शन के सीरियल वे एक–दूसरे को भी सुनाते हैं। आकाशवाणी से भी महीने में एक–दो हिंदी वार्ताएँ प्रसारित होती हैं। आल्तीनों पर दूरदर्शन एवं आकाशवाणी केंद्र है जहाँ हिंदी के सिलसिले में मुझे कई बार जाना पड़ा था।

हिंदी के विकास में पत्र–पत्रिकाओं का भी योगदान रहता है। वास्तव में वहाँ हिंदी में कोई भी समाचार–पत्र प्रकाशित नहीं होता। हाँ! हिंदुस्तान, नवभारत टाइम्स या कुछ हिंदी की पत्र–पत्रिकाएँ प्रयास से पणजी में आपको प्राप्त हो जाती हैं। कुछ दूसरी प्रचार संस्थाएँ भी कभी–कभी हिंदी की विशेष स्मारिका (Souvenir) निकालती हैं। वैसे गोमांचल तो नियमित निकलती ही है।

5. कार्यालयों में हिंदी—

यहाँ कार्यालयी भाषा अंग्रेज़ी है। केवल 10 प्रतिशत कार्य कोंकणी या मराठी में होता है। कार्यालयों में कंप्यूटर में देवनागरी लिपि (स्क्रिप्ट) में वे चाहें तो मराठी, कोंकणी या हिंदी का कार्य कर सकते हैं। क्योंकि ये तीनों भाषाएँ देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं। इसके साथ ही राजभाषा विभाग तो अपने कार्य में कार्यरत है। चूँकि यहाँ 10वीं कक्षा तक हिंदी अनिवार्य विषय है, इसलिए हर पढ़ा लिखा व्यक्ति हिंदी में बातचीत कर लेता है। यहाँ के किसी भी सरकारी या गैर–सरकारी कार्यालय में (चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों को छोड़कर) हिंदी में पूछताछ कर कोई भी जानकारी हासिल की जा सकती है। गोवा के सरकारी कार्यालयों में भी हिंदी की स्थिति अच्छी है। जुआरी नदी के तट पर वास्को में स्थित गोवा शिपयार्ड लिमिटेड को हिंदी के प्रयोग, उसके अनुपालन, उसके निरंतर प्रयत्नों के लिए इस वर्ष छठी बार इंदिरा गांधी राजभाषा पुरस्कार 2012 दिया गया।

अन्य राज्यों से भी आए व्यापारियों, मज़दूरों और पर्यटकों के कारण गोवा के प्रमुख शहरों (होटलों) बाज़ारों और दुकानों में अंग्रेज़ी के साथ-साथ हिंदी भी संपर्क भाषा के रूप में उपयोग में लाई जाती है। हिंदी में दाम पूछे जाने पर ग्रामीण क्षेत्रों से आए व्यापारी भी हमें निराश नहीं करते भले ही उत्तर कोंकणी में देते हैं। यहाँ के रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज में हिंदी समाहित रहती है। सबको हिंदी के प्रति लगाव है।

6. भाषा और साहित्य में हिंदी—

बहुत समय तक पुर्तगालियों के संपर्क में रहने के कारण उनके बहुत से शब्द कोंकणी में आए, फिर हिंदी में। जैसे—पाव, पोदेर, काजू, कमीज़, कमरा, नीलाम, पादरी, अनानास आदि। गोवा में हर जगह स्थानों के नाम पुर्तगाली में हैं जैसे—Provorim, panjim, verem, kapem, kulem, navelim आदि का हिंदीकरण करके पर्वरी, पणजी, वेरे, केपे, कुले, नावेली हो जाता है। इसके अलावा अनुवाद भी साहित्य के समृद्धीकरण का कारण होता है। बहुत से कोंकणी साहित्य भी हिंदी में आ रहे हैं तथा हिंदी का साहित्य भी कोंकणी में अनुवाद के माध्यम से जा रहा है। साहित्य अकादमी के प्रोत्साहन से हिंदी अनुवाद में वृद्धि हो रही है। अनुवादक के रूप में मोहनदास सुर्लेकर, चंद्रलेखा डिसूजा, सोनिया सिरसात, किरण पोपकर, किरण बुडबुले, नारायण सेजवलकर तथा स्नेहलता जुलकीमठ का कार्य सराहनीय है परंतु कोंकणी का पुराना साहित्य जो रोमी लिपि में है हिंदी में आना चाहिए। गोवा विश्वविद्यालय के प्रो. रोहिताश्वरजी राजस्थानी भाषी हैं। वे गोवा संस्कृति को हिंदी कविता, कहानी एवं उपन्यासों में उतार रहे हैं। अभी हाल ही में उनकी गोवा की पृष्ठभूमि में लिखी कहानी 'दोना पावला और तीन औरतें' पढ़ी। कोंकणी हिंदी शब्दकोश भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर से तैयार हो चुकी है। हिंदी निदेशालय ने 2009 में 22 भाषाओं का शब्दकोश (तुलनात्मक) निकाला जिसमें कोंकणी भी एक है। इसके अलावा हिंदी-कोंकणी या कोंकणी-हिंदी कोश निजी प्रयास से भी बने हैं।

7. बोल-चाल की हिंदी—

अधिकांश लोगों की धारणा यह है कि 300 वर्षों तक यूरोपीय दासता में रहने के कारण वहाँ अंग्रेज़ी ने अपना प्रभुत्व जमा रखा होगा, परंतु वास्तव में ऐसा नहीं है। अन्य राज्यों से भी आए व्यापारियों, मज़दूरों और पर्यटकों के कारण गोवा के प्रमुख शहरों (होटलों) बाज़ारों और दुकानों में अंग्रेज़ी के साथ-साथ हिंदी भी संपर्क भाषा के रूप में उपयोग में लाई जाती है। हिंदी में दाम पूछे जाने पर ग्रामीण क्षेत्रों से आए व्यापारी भी हमें निराश नहीं करते भले ही उत्तर कोंकणी में देते हैं। यहाँ के रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज में हिंदी समाहित रहती है। सबको हिंदी के प्रति लगाव है।

वहाँ की व्यावहारिक हिंदी के कुछ नमूने इस प्रकार हैं—

1. "हड़ताल को दो दिन पीछे ढकेल दिया" अर्थात् हड़ताल दो दिन पीछे खिसक गया।
2. तुम कब तक बैठना माँगता? क्या माँगता?, हम तुमको कुछ देना माँगता है। अगर काम बनेगा तो हमें पार्टी देना माँगता—अर्थात् चाहने के अर्थ में माँगना का प्रयोग
3. जगह के बारे में पुलिसमैन से पूछा तो उसने जवाब दिया—पहला लाइन छोड़ने का, दूसरा छोड़ने का फिर टर्न मारने का। गोवा और महाराष्ट्र में मारना क्रिया का विशेष प्रयोग होता है जैसे—राइट मारो फिर लेफ्ट मारो।
4. हमने एक जानकारी आती है—अर्थात् हमें मालूम है।
5. हम समझा नहीं—हम का प्रयोग मैं के अर्थ में।
6. टेलीफोन पर—मैं गिरीश बोलता हूँ—इस प्रकार का प्रयोग अधिक है।
7. पूछने का है ऑफिस में हमारे लोगों का इसलिए—पूछने के अर्थ में।
8. हमने समझना चाहिए कि वह गोवा की भाषा नहीं समझता, को के अर्थ में 'ने' का प्रयोग

8. अन्य उदाहरण—

मैं मडगाँव में रहता हूँ। मैं पाठशाला में पढ़ाता हूँ। मैं पणजी में चलके जा रहा था उसके बाद क्या हुआ है मालूम अब्दुल आया और मुझे पिछे सू मारा। पिछे सू मारा सू मारा और गिराया और पिछे गिरा कू मेरा हाथ टूटया।

अंत मैं यह कहना चाहती हूँ कि गोवा में जिस प्रकार मांडवी और जुआरी का जल अरब सागर को समृद्ध बना रहा है वैसे ही कोंकणी और मराठी हिंदी की स्थिति को मज़बूत बनाने में सहयोग दे रही हैं।

—डॉ. अनीता गांगुली
एसोसिएट प्रोफेसर
केंद्रीय हिंदी संस्थान
सी-7, डी.डी. कॉलोनी
हैदराबाद-500007 (भारत)
इ-मेल : anitaganguly1954@gmail.com

❑

31

हिंदी हमारी राजभाषा

–अजय ओझा

- **जन्म :** 12 अगस्त, 1971।
- **अभ्यास :** पी.टी.सी.।
- **व्यवसाय :** शिक्षक।
- **प्रकाशित पुस्तकें :** 'सितारों की धूप' (हिंदी कहानियाँ)।
- **गुजराती कहानी संग्रह :** 'छीप' (सितंबर 2002, ब्रेइल रूपांतरण 2009), 'आराम कुरसी' (मई 2002)।
- **विशेष :** भावनगर गद्यसभा का सदस्य, सर्जक संवाद का संयोजक। गुजराती में अखंड आनंद, शब्द सृष्टि, उद्‌देश्य, नवनीत समर्पण, चित्रलेखा एवं हिंदी में मधुमती, अक्षर शिल्पी, ताप्ती लोक, रेन बसेरा, राष्ट्रवीणा, जैसी पत्रिकाओं में स्थान मिला है। उड़िया अनुवाद भी हुआ है। विभिन्न ब्लॉग्स में भी प्रकाशन होता रहता है।

हमारी राजभाषा हिंदी के प्रसार–प्रचार का कार्य करना वर्तमान समय का महत्त्वपूर्ण तकादा है। क्षेत्र कोई भी हो, हिंदी का प्रसार–प्रचार होना अत्यंत आवश्यक है। और हिंदी को चारों दिशाओं में फैलाने के लिए कोई भी आगे आ सकता है, कोई भी राष्ट्रप्रेमी ये काम कर सकता है। राष्ट्रप्रेमी का मतलब हिंदीप्रेमी ही तो होता है। तो बेहतर यही होगा कि शुरुआत हम अपने आप से करें ?

फिलहाल हिंदी को संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषाओं में शामिल करने के लिए दरख्वास्त चल रही है। लेकिन इस प्रस्ताव को पारित करवाने की जिम्मेदारी केवल डिप्लोमैसी के राजनीतिज्ञों के ऊपर थोप देना कतई मुनासिब न होगा। डिप्लोमेटिक राजपुरुषों को भी इन मामलों में हमारी ओर से योगदान देना अत्यंत आवश्यक है। सिर्फ प्रस्ताव से काम न चलनेवाला, हमें हिंदी की अनिवार्यता को प्रस्थापित करनी होगी। हमें ऐसा माहौल बनाना है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ को कदम–कदम पर हिंदी की आवश्यकता बन पड़े। हिंदी का इतना फैलाव करना होगा कि राष्ट्रसंघ के सारे महत्त्वपूर्ण कार्यों में हिंदी का उपयोग बेहद जरूरी हो जाए।

सवाल है कि कैसे किया जाए हिंदी का फैलाव ?

सबसे पहली बात, हमें सकारात्मक दृष्टिकोण से ही काम लेना होगा। आजकल चारों तरफ फरियाद के सूर अधिक सुनाई दे रहे हैं, जैसे कि हिंदी कमज़ोर होती जा रही है, किसी को हिंदी की फिक्र नहीं है, पढ़ाई में हिंदी का महत्त्व घटता जा रहा है, लोग हिंदी में रुचि नहीं रखते, हिंदी की अवहेलना हो रही है, राष्ट्रभाषा हिंदी को बचाना चाहिए···इत्यादि। फिर भी लोगों के कानों तक ये आवाज़ नहीं पहुँच पा रही, अगर पहुँच रही है तो लोग इस बात को ज्यादा महत्त्व नहीं दे रहे,···भई क्यों ?

ऐसा हरगिज़ नहीं है कि इन बातों में दम नहीं। इन फरियादों में कम या ज्यादा, थोड़ा या बहुत, पर दम तो होगा ही।

तात्पर्य यह है कि जैसे पानी अपना रास्ता खुद ही तय कर लेता है, विभिन्न भाषाएँ भी अपने बहाव का रास्ता खुद बना लेती हैं। भाषा तो हम सब इनसानों की अभिव्यक्ति का अनिवार्य माध्यम है। वस्तुत: हिंदी कभी मिट नहीं सकती। प्रश्न है तो महज इतना कि हम हिंदी को कितनी अहमियत देते हैं ? या हिंदी के महत्त्व को हम कितना समझते हैं ?

जब राजभाषा का महत्त्व कम होता दिख रहा हो तब सामूहिक जागृति का समय आना आवश्यक है। आज कई तरह के माध्यमों के आक्रमण के सामने हमारी हिंदी को लड़ना पड़ रहा है। ऐसे मौके पर हिंदी के प्रति पूरी दुनिया के लोगों में छुपी भावनाओं को उजागर करने के लिए किसी–न–किसी को तो एक महा अभियान का आरंभ करना होगा। एक ऐसा मिशन, एक ऐसा अभियान चलाया जाए, जिससे न सिर्फ भारतीयों का राष्ट्रभाषा प्रेम उजागर हो, बल्कि विश्व के सभी देशों के लोगों के दिल में भी हिंदी के प्रति सम्मान की भावना आरोपित हो। जब भावनाओं का समूह जाग उठे, फिर तो हिंदीप्रेम का विजय होना सुनिश्चित होगा ही।

ध्यान रहे, हिंदीप्रेमी की भावनाएँ होना काफी नहीं है, उन भावनाओं की अभिव्यक्ति भी जरूरी है। अमिताभ बच्चनजी के फैंस

अपने दीवानखंड़ में उनके बड़े-बड़े पोस्टर्स लगाकर रखते हैं। क्रिकेट के शौकीन लोगों को अपने कमरे में सचिन तेंदुलकर या महेंद्र सिंह धोनी की बड़ी-बड़ी तसवीरों को खुशी-खुशी चिपकाते हमने देखे हैं। भगवान के भक्त उन्हीं के चित्रवाले कैलेंडर्स अपनी दीवारों पर या दुकानों में रखकर दीये जलाते हैं, अगरबत्तियाँ रिखाते हैं। इस तरह से लोग अपनी अभिव्यक्ति का रास्ता ढूँढ निकालते हैं।

लेकिन···किंतु···परंतु···हमारी अपनी राष्ट्रभाषा का कोई भी हिंदी प्रेमी अपने घर में मुंशी प्रेमचंद, माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔधजी, श्यामनारायण पांडे, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', वृंदावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, विष्णु प्रभाकर, अमृता प्रीतम, राजी शेठ, मन्नू भंडारी, महादेवी वर्मा जैसे हिंदी के महान सर्जकों की कोई छोटी सी तसवीर भी नहीं रखता। हाँ, हिंदी के तरफ अप्रतिम लगाव होने के बावजूद भी, भई क्यों? ऐसा क्यों? कोई आकर देखे और कुछ उलटे-सीधे प्रश्न पूछ ले, तो?—शायद यही डर होगा क्यों? अपनी राजभाषा के शिल्पी समान महापुरुषों को हम तस्वीर में भी न पहचान सकें, ये बात ही कितनी शर्मनाक साबित हो सकती है? जरा सोचें?

सच्चे हिंदीभक्त को अपना भाषाप्रेम अभिव्यक्त करने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए। यदि हम अपने हिंदी साहित्यकारों को सेलिब्रिटी बना सकते हैं तो इन हिंदी के कर्मवीरों में नई चेतना का संचार हो सकता है। जिसका फायदा हमें और हमारी भाषा को मिलेगा।

···सोचिए तो?? क्या हम हमारे इन हिंदी भाषा के शिल्पियों को सेलिब्रिटी नहीं मान सकते? कोई वजह? सच्चे हिंदीभक्त को अपना भाषाप्रेम अभिव्यक्त करने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए। यदि हम अपने हिंदी साहित्यकारों को सेलिब्रिटी बना सकते हैं तो इन हिंदी के कर्मवीरों में नई चेतना का संचार हो सकता है। जिसका फायदा हमें और हमारी भाषा को मिलेगा।

खैर, छोड़िए सब। तस्वीरों की बात रहने दें, पर कम-से-कम हमारी अपनी लाइब्रेरी में इन जैसे सभी प्रमुख साहित्यकारों की पुस्तकें होनी चाहिए, इन किताबों का काम सिर्फ लाइब्रेरी को शोभा देना ही नहीं बल्कि हमारी आत्मा को साक्षर करने का और हिंदी के प्रति लगाव बढ़ाना भी है। वैसे भी आजकल कई तरह के 'डेइज' मनाने की प्रथा बन चुकी है, ऐसे में अब हिंदी दिवस के शुभ मौके पर एक नए अभियान के प्रारंभ का संकल्प ले सकते हैं, तो हमारी हिंदी माता के लिए इससे सुंदर बात कौन सी हो सकती है? यस्स,—तो ये हुई न हिंदी की रीढ़ की हड्डी को मज़बूत बनाने की बात?

रीढ़ की हड्डी मज़बूत हुई, मानो आधी लड़ाई हम जीत गए। क्योंकि रीढ़ की हड्डी ही तो होती है जो हिंदी को सारे विश्व के सामने, अन्य भाषाओं के सामने, संयुक्त राष्ट्र के सामने, गौरवपूर्ण दृष्टिकोण से, सीना तान कर खड़ा रख सकती है। अब बाकी बची आधी लड़ाई को जीतना आसान लग रहा है न? हाँ, है भी आसान।

हिंदी का महत्त्व विश्व के सामने न सिर्फ रखना है, प्रतिपादित भी तो करना है। तो हमारा फंडा नंबर दो यही होना चाहिए : प्रतिपादन। इसके लिए क्या करना चाहिए?

ये बात सर्वविदित है कि अन्य भाषाओं की भाँति हिंदी में भी उच्च कोटि की पुस्तकें उपलब्ध हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ से जुड़े सदस्य राष्ट्रों के सहृदयी पाठकों को हमारी भाषा से लगाव हो, हिंदी के प्रति सम्मान की भावना पैदा हो, ऐसी पुस्तकें उनके हाथों में रखिए। अन्य भाषाओं की श्रेष्ठतम पुस्तकें भी हिंदी में आएँ, और सब पढ़ पाएँ। हमें ये समझना है कि हिंदी किसी और की भाषा पर अपना प्रभाव डालकर सब पर हावी होना नहीं चाहती, पर हिंदी तो सबकी भाषाओं को साथ लेकर एक-दूसरे के प्रति सम्मान की भावना को जागरूक कराना चाहती है।

हमारा उद्देश्य है वैश्विक भाषाओं से मिलजुलकर उनको जीने की राह उजियारा भर के दिखाने का न कि किसी और भाषा को हटाकर अपना प्रभुत्व कायम करने का। बी श्योर, हिंदी को कोई भी अशुद्ध तरीका न ही कभी रास आया है, न ही कभी रास आएगा।

हिंदी के प्रसार के लिए बहुत से ठोस कदम उठाए जा सकते हैं। सभी राष्ट्रों के सामने हिंदी ब्लॉग्स एवं वेबसाइट प्रस्तुत करते रहना चाहिए। हिंदी में रुचि रख रहे अन्य राष्ट्र के पाठकों की सराहना की जाए। उन पाठकों के लिए 'पुस्तकप्रेमी अवॉर्ड' 'मेरी वाचनयात्रा',' श्रेष्ठ पाठक', जैसी प्रतियोगिताएँ एवं पाठकमंच, 'सर्जक से मिलिए', 'इस माह की किताब', जैसे कार्यक्रम नियमित रूप से होने भी जरूरी हैं।

हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकारों से उन लोगों की परिचय-गोष्ठी आयोजित की जाए, जिन लोगों का सभी भाषाओं में वर्चस्व है। सभी विद्वानों को भरोसा दिलाएँ कि हिंदी को बारीकी से समझने का वक्त आ चुका है। अन्यथा हिंदी की अवहेलना से न सिर्फ हिंदी को, बल्कि सभी लोगों की भावनाओं को ठेस पहुँच सकती है। राजभाषा के लिए साहित्यकारों का प्रदान और हिंदी के उत्थान की कार्यप्रणाली की प्रदर्शनी हो। यही हमारी हिंदी का सही मायने में गौरव होगा।

एक सुझाव ऐसा भी है कि जो भारतीय भारत से बाहर जाते हैं, भारत से बाहर रहते हैं, उन सबको अंग्रेज़ी की तरह हिंदी से भी लगाव रखने का आग्रह किया जाए। और विश्व में जहाँ कहीं भी रहें, हिंदी

का प्रसारकार्य करते रहें तो बेहतर है। विश्व के कोने-कोने में भारतीय हैं इस नाते, विश्व के कोने-कोने में हिंदी की खुशबू फैलाने में वही भारतीय अहम काम कर सकता है। बस, हमें उनका साथ देना होगा। हिंदी में लगाव रख रहे बिना भारतीयों के लिए विभिन्न प्रतियोगिताएँ रखी जाएँ, ताकि वे सब भी हमारी भाषा का आनंद उठा सकें।

वस्तुत: हमारी मंजिल सिर्फ हिंदी को प्रमुख भाषाओं में स्थान दिलाना नहीं होना चाहिए, बल्कि हमारी कोशिशें तो ये होनी चाहिए कि सभी देशों के लोग और सारी दुनिया के लोग भी हिंदी का महत्त्व समझें और हमारी तरह वे सब भी हिंदी को माँ सरस्वती के रूप में देखते हुए प्रणाम करें।''यकीन मानिए, कामयाबी दूर नहीं॥

—भावनगर, गुजरात (भारत)
इ-मेल : oza_103@hotmail.com

❑

अल्पभाषी व्यक्ति सर्वोत्तम होते हैं।

—शेक्सपियर

⁂ ⁂ ⁂

उचित समय पर काम करनेवाले का ही श्रम सफल होता है।

—आचारांग चूर्णि

⁂ ⁂ ⁂

जो अवसर को समय पर पकड़ ले, वही सफल होता है।

—गेटे

⁂ ⁂ ⁂

आत्मविश्वास सफलता का प्रथम रहस्य है।

—एमर्सन

32

राजभाषा हिंदी—एक प्रयास

–राम कुमार वर्मा

- **जन्म :** 11 जून, 1955।
- **कार्यक्षेत्र :** साहित्य एवं शिक्षा (माध्यम : राष्ट्रभाषा हिंदी)।
- **प्रसिद्धि :** विचारक, आलोचक, समीक्षक, गीतकार, कथाकार, हास्य कवि, व्यंग्यकार, मंच संचालक।

विभिन्न प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय समाचार पत्र/पत्रिकाओं में 200 से अधिक रचनाएँ/लेख/विचार प्रकाशित।

- **प्रसिद्ध कृति :** 'नया-सवेरा' (महामहिम राष्ट्रपति एवं माननीय प्रधानमंत्रीजी के द्वारा प्रशंसित)।

''भारत माँ को प्यारी है, ये भारत की पहचान है।
जो हिंदी की पूजा करता, भारत की संतान है॥''

जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति में एक विशेषता होती है जिसे वह पल्लवित व पुष्पित कर समाज में एक पृथक पहचान बनाने में समर्थ होता है। उसी प्रकार प्रत्येक राष्ट्र की गौरवशाली एक अपनी पहचान होती है। जिसकी पावन सुगंध की लहर उस राष्ट्र के गौरवमयी उपस्थिति का आभास कराती है। विश्व में जब हमारे भारत की चर्चा होती है तो हमारे देश की सभ्यता, संस्कृति, सर्वधर्म, सर्वभाषा समभाव से सम्मानित होने की मिसाल दी जाती है, जिसके तहत हमारी भारत माँ की गरिमा व पावन तिरंगे की चमक सिद्ध होती है, अत: विचारणीय विषय यह है कि—

हमारे देश में 15 अगस्त, सन् 1947 को माननीय नेहरू, गांधी, अन्य शीर्षस्थों सहित अंग्रेज़ों की उपस्थिति में फहराया गया पावन तिरंगा, कोहिनूर हीरा एवं न जाने कितनी अनमोल वस्तुएँ जो कि देश की धरोहर हैं सहित बापू का चश्मा आज हमारे बीच नहीं है। गलती चाहे जिसकी भी हो पर वर्तमान जन समूह सहित आगामी पीढ़ी के लिए अपूर्णीय क्षति हो गई। जो हो चुका वह कष्टकारक है, पर जो नष्ट हो रहा, उसे बचाना राष्ट्र के प्रति हमारा दायित्व है। स्पष्ट हो कि—

नष्ट होने के कगार में–

हमारे देश की शान व पहचान हिंदी भाषा है, जो देश के कोने-कोने में सर्वथा एवं व्यापक रूप से सम्मानित है। किसी भी भाषा के संबंध में चर्चा करें तो भाषा के दो पृथक भाग होते हैं। जिसमें प्रथम भाग—अक्षर एवं द्वितीय भाग—अंक के रूप में होते हैं। हिंदी भी दो भागों में है—

प्रथम (क, ख, ग, घ, ङ···ज्ञ) एवं द्वितीय अंक अर्थात (1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10···)।

आज कष्टकारक बात यह है कि हमारे देश की गौरवशाली भाषा हमारे सामने, हमारे द्वारा नष्ट हो रही है, और हम इस क्षेत्र में गंभीरता पूर्वक विचार तक नहीं कर पा रहे हैं, मैं इस लेख के माध्यम से आपका ध्यानाकर्षण करना चाहता हूँ कि आज पूरे देश में वन, टू, थ्री, फोर लिखो व एक, दो, तीन, चार बोलो की प्रथा लागू हो चुकी है। आज देश के लगभग सारे अखबार, पत्र-पत्रिकाएँ, पुस्तक-कॉपी, रेडियो, टी.वी. चैनल, बैनर, मोबाइल, गाड़ियों के नंबर, प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, समस्त शासकीय और अर्धशासकीय फॉर्म सहित आम व खास जनों द्वारा अंग्रेजी अंकों का ही प्रयोग होता है, जबकि साल में एक बार हमारे देश में लाखों रुपए खर्च कर हिंदी दिवस मनाया जाता है। जिसमें हिंदी के संबंध में न जाने कितनी बातें होती हैं। आपको मालूम है उस दिन भारत माँ की आँखों में आँसू होते हैं। कार्यालयों/बैंकों में लिखा होता है कि यदि आप हिंदी में काम करें तो हमें प्रसन्नता होगी, जबकि एक भी फॉर्म ऐसे नहीं जिनमें हिंदी अंक हों। आज देश की शैक्षणिक संस्थाओं को निर्देश प्राप्त है कि—वन (1), टू (2), थ्री (3), फोर (4) लिखो और उसे एक (1), दो (2), तीन (3), चार (4) बोलो। इस संबंध में मेरे द्वारा कई बार असफल प्रयास किया गया, कितने ही मंचों पर मैंने अपने

उद्‌गार व्यक्त किए हैं। मालूम हो कि आज कोई भी बच्चा हिंदी अंकों से परिचित नहीं। एक दिन हम अपने साथ अपनी हिंदी को भी साथ ले चले जाएँगे तो इतिहास के पन्नों में कोहिनूर हीरा, लाल किले पर फहराया गया स्वतंत्र भारत का प्रथम तिरंगा, बापू के चश्मे की भाँति हमारी हिंदी भी कतार में खड़ी दिखाई देगी। अत: हम जिसे बचा सकते हैं उसे बचाना हमारा दायित्व व धर्म है।

मालूम हो आज हिंदी की दुर्दशा इस हद तक हो गई है की हिंदी का अंक एक (१) और अंग्रेज़ी के अंक नाईन (९) तथा हिंदी का अंक सात (७) और अंग्रेज़ी के अंक सिक्स (६) में अंतर करना थोड़ा मुश्किल हो जाता है। आप चाहे तो हिंदी के इन अंकों को लिखकर देख सकते हैं। कोई शून्य को जीरो भी बोले वह उतना कष्टकारक नहीं जितना कष्टकारक शून्य को जीरो ही बोलना है। समझ नहीं आता जिस देश में खंडित देव प्रतिमा की पूजा नहीं होती उस देश में देश की पहचान गौरवशाली राष्ट्र की भाषा को खंडित कर खंडित प्रतिमा की पूजा से हम कैसे गौरव महसूस कर रहे हैं? जिस प्रकार राजसी पोशाक में ताज व थ्री पीस सूट में टाई शोभा देती है, उसी प्रकार राष्ट्रभाषा हिंदी भी परिपूर्णता में ही शोभायमान होगी। चड्डी-बनियान में तो ताज व टाई भी हास्यास्पद लगेगी।

माना कि अंग्रेज़ी के अंक 'आज' के परिवेश में आसान और सरल प्रतीत होते हैं, लेकिन हमारे देश की विभूतियाँ पंत, निराला, गुप्त, द्विवेदी, प्रसाद, प्रेमचंद आदि को तो परेशानी नहीं हुई थी जो आज के लोगों को हिंदी के अंक लिखने और समझने में हो रही है।

चूँकि मैं माँ शारदा के आशीर्वाद के फलस्वरूप अपने क्षेत्र (छत्तीसगढ राज्य) में साहित्य साधना के एक छोटे से साधक के रूप में अपने अनुभवों, विचारों के लिए जाना जाता हूँ अत: एक बालक ने मुझसे पूछा कि—जब हिंदी की इतनी दुर्दशा हो रही है तो भारत और उनके राज्यों के हिंदी के लिए कार्य करनेवाली समितियाँ, संस्थाएँ, विभाग, आयोग, क्या कर रहे हैं? मैंने उसे बताया की वे हर वर्ष हिंदी दिवस मनाकर हिंदी के लिए काम कर रहे हैं। तो उसने कहा कि हर वर्ष करोड़ों रुपए खर्च कर करोड़ों के बैनर, पोस्टर, सेमिनार, कार्यशाला, विश्व भ्रमण, और हिंदी दिवस मनाकर क्या वे हमारी हिंदी को पुरातत्त्व विभाग के लिए तैयार कर रहे हैं? और उनकी छोड़िए आपको तो माँ सरस्वती ने हिंदी के रचनाकार होने का गौरव प्रदान किया है आपने क्या किया? मेरे पास उसके इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं है। क्या अपके पास है? माना कि अंग्रेज़ी के अंक 'आज' के परिवेश में आसान और सरल प्रतीत होते हैं, लेकिन हमारे देश की विभूतियाँ पंत, निराला, गुप्त, द्विवेदी, प्रसाद, प्रेमचंद आदि को तो परेशानी नहीं हुई थी जो आज के लोगों को हिंदी के अंक लिखने और समझने में हो रही है। हमारी माँ अगर सुंदर न हो तो क्या हम उसका त्याग कर किसी अन्य महिला को अपनी माँ का दर्जा दे सकते हैं? और अगर नहीं दे सकते तो समाज व शासन का ये हक नहीं बनता कि वे हमारी 'हिंदी' का इस तरह से अपमान करें। इसके साथ ही ये बात तो जग जाहिर है कि पुरातन काल से लेकर आज तक हमारी हिंदी और देवनागरी लिपि समृद्ध, सम्मानित व पल्लवित रही। जब हम छोटे थे हमारे गुरुजी हमें एक (१) दो (२) तीन (३) चार (४) पाँच (५) छह (६) सात (७) आठ (८) नौ (९) दस (१०) की गिनती और वन (१) टू (२) थ्री (३) फोर (४) फाईव (५) सिक्स (६) सेवन (७) ऐट (८) नाईन (९) टेन (१०) को अलग से याद करने को कहते थे, लेकिन हिंदी के अंकों को विलुप्त कर ये कौन सी शिक्षा दी जा रही है? आज बाज़ार में हिंदी के अंकों की पुस्तक का मिलना मुश्किल हो गया है। हिंदी के लिए, हिंदी भाषा में प्रकाशित पुस्तकों, पत्रिकाओं तक से अब हिंदी के अंक न जाने क्यों नाराज हो कहीं चले गए हैं? आज जो हिंदी दिवस मनाया जाता है उसके बैनर, पोस्टर, विज्ञापन, सेमिनार, पेपर प्रेजेंटेशन की स्लाइड, आमंत्रण/निमंत्रण में भी हिंदी के अंकों का स्थान नहीं के बराबर है। हिंदी दिवस के लिए विज्ञापन छपता है कि "14 सितंबर को हिंदी दिवस मनाया जाएगा आप सादर आमंत्रित हैं।" इस विज्ञापन को गौर से पढ़ें इसमें लिखा है फोर्टिन (14) सितंबर, लेकिन इसे पढ़ना है चौदह (14) सितंबर। क्या आपको नहीं लगता कि कुछ गलत हो रहा है? हिंदी दिवस पर हिंदी का ये अपमान क्यों? मैं हिंदी दिवस नहीं मनाऊँगा, क्योंकि अगर मैं उसे उसका सम्मानित स्थान प्रदान नहीं कर सका, तो उसको अपमानित करनेवाले कार्यक्रमों में जाकर हिंदी को अपमानित भी नहीं करूँगा। अगर आप हिंदी दिवस पर हिंदी के बजाए अंग्रेजी में अपनी बात, भाषण या लेख आदि के माध्यम से रखना चाहें तो इसमें कोई गलत बात नहीं, लेकिन जब हिंदी के शब्दों का प्रयोग हो तो अंक भी हिंदी के ही हों। अगर आप अंग्रेजी या अंग्रेज़ी अंकों का उपयोग करना चाहते हैं तो दिल खोलकर करिए, क्योंकि किसी भी भाषा, कला को सीखना उसकी जानकारी रखना अच्छी बात होती है। पर हिंदी के अंकों को विलुप्त होने से बचाना भी हमारी ही जिम्मेवारी है। हमारा देश वह देश है जहाँ कोई पशु, पक्षी वनस्पति अथवा जातियाँ विलुप्त होने के कगार पर हो तो उसे संरक्षण व सहयोग दे पुन: स्थापित करता है फिर करोड़ों की आबादी में हिंदी का अर्धभाग

(हिंदी के अंक) विलोपन के कगार में कैसे?

हमें अन्य किसी भाषा का विरोधी नहीं होना चाहिए पर मेरा मानना यह है कि हम अपनी माँ का सम्मान करने के बाद ही किसी बुजुर्ग महिला का सम्मान करें तो वह सम्मानित व हम गौरवान्वित होंगे।

भारत माँ की वंदना व पूजन के अनेकों पहलू हैं, पर राष्ट्रभाषा को सम्मान, संरक्षण व पुन: स्थापित करने हेतु कारगर प्रयास सबसे बड़ी पूजा है।

दो फुटिया की गोद मातु की, जिसके लाखों वारिस हैं।
जो माँ की गरिमा न समझे, समझो वही लावारिस है॥

इस लेख के माध्यम से व्यक्तिगत अनुभव बताना चाहूँगा कि जब मैंने हिंदी के अंक को बचाने के बारे में सोचा और उसे लिखना शुरू किया तो मुझे अनुभव हुआ कि मैं साक्षात् भारत माँ की गोद में बैठा हूँ, जिससे मुझे शांति और सुकून का एहसास हो रहा, आप भी इसे महसूस करें, आज इसे बचाने के लिए एक मुहिम चलाने व एक जन आंदोलन की आवश्यकता महसूस हो रही है। अत: अब बात उठती है कि हमारे एक से क्या होगा, या हम इस क्षेत्र में क्या कर सकते हैं, इन सारी समस्याओं का एक छोटा सा समाधान है, इसके लिए आपको किसी धरने पर बैठने, कानून बनाने, किसी प्रकार के अनशन करने की आवश्यकता नहीं है, बस आने वाली पीढ़ियों को हिंदी के अंकों को समझाएँ, अपने लेटर पैड, विजिटिंग कार्ड, अखबारों, विज्ञापन, पत्र-पत्रिकाओं, कैलेंडर, आमंत्रण/निमंत्रण पत्रों, पुस्तकों, बैनर, पोस्टर, किसी प्रकार के पेपर प्रेजेंटेशन, कॉपियों, शासकीय/अर्धशासकीय फार्म, इलेक्ट्रॉनिक व प्रिंट मीडिया में यथा संभव हिंदी के अंकों का उपयोग करें। जनसमूह, जनमानस को प्रेरित करें। जैसे ही हिंदी हमारे पाठ्य-पुस्तक, प्रिंट मैटेरियल में आएगी वैसे ही हिंदी अपनी वास्तविक स्थान को प्राप्त करेगी इसके साथ ही हम देखेंगे कि भारत माँ के चेहरे पर मुसकान आ जाएगी कि उसके बच्चों ने उसके लिए जो हो सका किया और हमारे द्वारा 'हिंदी दिवस' मनाना सार्थक हो जाएगा और हमारी हिंदी पुरातत्त्व विभाग से निकलकर हमारे बीच हमें आशीर्वाद देने हमारे साथ हो लेगी।

''हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा, सदा करें इसका गुणगान।
हिंदी में ही हिंद समाया, जिसको कहते हिंदुस्तान॥''

—प्रदेश सचिव
छत्तीसगढ़ हिंदी साहित्य परिषद
प्रतापपुर चौक, अंबिकापुर
छत्तीसगढ़-497001 (भारत)
इ-मेल : vishalaward@gmail.com
वेबसाइट : www.facebook.com/kaviramkumarverma

❑

जिनके हृदय में उत्साह होता है, वे पुरुष कठिन-से-कठिन समय में भी हिम्मत नहीं हारते।

— वाल्मीकि

व्यवहार में पक्षपात नहीं करना चाहिए। व्यवहार धर्म से भी महत्त्वपूर्ण है।

— चाणक्यसूत्राणि

उन्नति का बीजमंत्र सेवा और प्रेम है, न कि आज्ञा और बल-प्रयोग।

— रामतीर्थ

33

द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन : एक संस्मरण

–रामदेव धुरंधर

- **जन्म :** 11 जून, 1946
- 'धर्मयुग', 'सारिका', 'गगनांचलम', 'आजकल' तथा भारत की अनेक पत्रिकाओं में कहानियाँ और लेख प्रकाशित।
- अब तक दस उपन्यास, चार व्यंग्य संग्रह, चार लघु-कथा संग्रह प्रकाशित।
- व्यंग्य लेखक के रूप में प्रतिष्ठित।
- चौदह सौ लघु कथाओं को दो भागों में प्रकाशित।
- 'पथरीला सोना' छह वृहद् खंडीय उपन्यासों से हिंदी जगत में खास पहचान।
- प्रथम भारतीय मज़दूरों की वंश परंपरा को शब्द और अर्थ देने की योजना में सिद्धहस्त।

विश्व हिंदी सचिवालय की 'विश्व हिंदी पत्रिका' में और एक बार अपना संस्मरण छपवाने के लिए आंतरिक भावना का अनुभव कर रहा हूँ। पिछली बार मैंने नागपुर में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन से संबंधित अपनी यादों को ताजा करते हुए कुछ लिखने का प्रयास किया था। लिखने की प्रक्रिया में उस अवसर पर नागपुर में एकत्रित हिंदी के तमाम महिमा मंडित व्यक्तित्व मेरे सामने मूर्तिमान हो गए थे। लिखने और प्रकाशित हो जाने के बाद भी वह सुवास मेरे भीतर सदा के लिए रह जानेवाला है। वही भावना मुझे फिर से हिंदी के दूसरे विश्व महोत्सव से जुड़ने के लिए संबल दे रही है। मैंने पिछली बार लिखा था मॉरीशस के प्रधानमंत्री शिवसागर रामगुलाम ने नागपुर के अपने अध्यक्षीय भाषण में घोषणा कर दी थी कि अगले साल हिंदी का यह सम्मेलन उनके अपने मॉरीशस में हो तो उन्हें खुशी होगी। अत: वहीं पारित हो गया था कि मॉरीशस को द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन संपन्न करने का अवसर प्राप्त हो।

मैंने अपने पिछले संस्मरण में 'धर्मयुग' के संपादक धर्मवीर भारती को बड़ी ही श्रद्धा से याद किया था। उन्हीं से अपने संस्मरण के इस कारवाँ को आगे बढ़ाता हूँ। मैंने नागपुर से लौटने पर इस बार धर्मयुग के लिए एक लेख भेजा था। लेख में मॉरीशस के हिंदी लेखन, शिक्षण और उस पर हावी राजनीति का जिक्र किया था। दो-तीन सप्ताह बाद मुझे लेख की स्वीकृति का पत्र प्राप्त हुआ था। पहले उस प्रपत्र का जिक्र करता हूँ जो धर्मयुग में रचना स्वीकृत होने पर औपचारिकता के लिए लेखक के पास भेजा जाता था। प्रपत्र का तात्पर्य था लेखक प्रमाणित कर रहा है कि यह लेख कहीं से उद्धृत न होकर उसका अपना है। यदि इसमें किसी कानूनी तत्त्व का पर्दाफाश हो तो इसका जिम्मेदार स्वयं लेखक होगा। प्रपत्र को हस्ताक्षर के साथ वापस भेजना था जो मैं तुरंत करने के लिए तत्पर हो गया था। प्रपत्र के साथ धर्मवीर भारती ने मेरे लिए जो पत्र भेजा था उन्होंने उसमें लिखा था—लेख में हिंदी से संबंधित मैंने जो मुद्दे उठाए हैं उन्हें गंभीरता से लिया जाना चाहिए। वे लेख को सम्मेलन से दो सप्ताह पहले धर्मयुग में छापनेवाले थे। उन्होंने आगे लिखा था—वे कोशिश करेंगे लेख में उठाए गए मुद्दों को लेकर सम्मेलन के अंतर्गत एक सत्र रखा जाए। उनके इन शब्दों ने मुझे आश्चर्यचकित कर दिया था। मैं कौन सा दिग्गज लेखक था जिसका लेख चर्चा में आने वाला था।

बाद में मॉरीशस में विश्व हिंदी सम्मेलन संपन्न होने की तारीख निश्चित हो जाने पर मेरा ध्यान धर्मयुग में छपनेवाले अपने उस लेख पर बार-बार चला जाता था। निश्चित था छपने पर हवाई डाक से प्रति मुझे प्राप्त होती। ऐसा हर बार होता था। वैसे मैं साप्ताहिक धर्मयुग का स्थायी ग्राहक था। पोर्ट लुईस में स्थित नालंदा बुक शॉप से धर्मयुग और हिंदी की दूसरी पत्रिकाएँ मँगवाता था। मैं 'सारिका' का भी स्थायी ग्राहक था। दो सप्ताह भी लेने न जाएँ फिर भी पत्रिका वहीं रखी होती थी। मेरे पास पैसा चाहे कम होता था, लेकिन सारिका और धर्मयुग के लिए मेरी आकुलता पराकाष्ठा पर होती थी। मेरा दावा होता था कि चाहे मुझे रोटी आधी मिले, सारिका और धर्मयुग पूरे मिलें। आज मैं उन दिनों की रोटी के कम

पड़ जाने का किसी प्रकार का मलाल मन में नहीं रखता। मैंने पेट के लिए कुछ खोया तो ऐसा भी तो हुआ कि सारिका और धर्मयुग ने मेरे लेखन की पृष्ठभूमि तराशी। उन दिनों इन पत्रिकाओं से मेरा लगाव न हुआ होता तो आज मैं शायद लेखन की दुनिया से बहुत परे छूटा होता। नालंदा बुक शॉप की चर्चा चल ही पड़ी तो उन दिनों वहाँ पुस्तक विक्रेता के रूप में काम करनेवाले दो सज्जनों का स्मरण हो आना मेरे लिए स्वाभाविक हो रहा है। वे दोनों पूरे रूप से हिंदीमना थे। मुझे लगता है उनके दिवंगत होते ही वहाँ से हिंदी की शोभा भी उठ गई थी। बाद में ऐसा भी हुआ कि सारिका और धर्मयुग का प्रकाशन बंद हो गया।

मैं 'धर्मयुग' में छपनेवाले अपने जिस लेख की बात कर रहा था मुझे दु:ख है वह लेख छप न पाया था। धर्मवीर भारती ने सम्मेलन से दो सप्ताह पहले छापने का मुझसे हस्ताक्षरवाला पत्र लिया था तो मेरे मन में प्रश्न बना होता था कि क्या कारण हो सकता है कि वह छपा नहीं। धर्मवीर भारती सम्मेलन में भाग लेने आए। नागपुर में उनसे जान पहचान तो हो ही गई थी। महात्मा गांधी संस्थान के प्रांगन में उनसे मुलाकात होने पर उन्होंने मुझे यह कहकर अचंभित कर दिया कि मैंने लेख छापने से मना कर दिया था। यह तो मेरे ऊपर जैसे बहुत बड़ा आघात था। मेरे कहने पर कि मैं तो लेख छपने का इंतजार कर रहा था, वे मुझे देखते रह गए। उन्होंने मुझे बताया—देश का एक वरिष्ठ लेखक मुंबई में स्थित उनके कार्यालय गया था। लेखक ने उन्हें अपना व्यक्तिगत क्षोभ सुनाया था। वह बहुत बड़ा क्रांतिकारी लेखक था। धर्मवीर भारती ने तब उससे कहा था आपके देश के लेखक रामदेव धुरंधर में भी यही तेवर देख रहा हूँ। भारतीजी ने उक्त लेखक से मेरे लेख के बारे में कहा था। मैंने मॉरीशस में इस लेखक को बताया था—मैंने एक विचारोत्तेजक लेख धर्मयुग में प्रकाशनार्थ भेजा है जिसके प्रकाशन की मुझे सूचना प्राप्त हो गई है। मैंने जो कहा यह वही भारती से उस लेखक के कहने का आधार बन गया। उसने भारतीजी से कहा था—''अच्छा तो धुरंधर का वह लेख अब भी आपके पास है। जबकि उसने कहा है कि उसने लेख न छापने के लिए कहकर आपके यहाँ से मँगवा लिया है। अब जबकि लेख यहीं है तो एक वास्तविक बात कहता हूँ। धुरंधर लेख भेजने पर रोता है। लेख भेजने के बाद वह पछताता है। अपने इसी पछतावे के कारण वह चाहता है कि लेख हरगिज न छपे।''

विडंबना यह हुई कि उक्त लेखक ने मॉरीशस लौटने पर मुझसे कहा—''भारतीजी ने उससे कहा है लेख तो बड़ा ही दमदार है। वे जरूर छापनेवाले हैं। देखना उस लेख का लोगों पर कितना असर पड़ता है। यहाँ तक कि लोग तुम्हें मॉरीशस का सबसे बड़ा लेखक मानने लगेंगे।''

द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन के अपने दूसरे संस्मरणों में लौटता हूँ। सम्मेलन को यादगार बनाने के लिए 'स्मारिका' तैयार हो रही थी। मुझे इसकी तैयारी के लिए स्कूल से बुलाया गया था। इसके लिए मुझे लेख लिखना भी था। श्री सोमदत्त बखोरी की अध्यक्षता में कमेटी बनी थी। जनार्दन कालिचरण और गुरुवर रविशंकर कौलेसर स्मारिका की तैयारी में पूरा सहयोग दे रहे थे। बाकी भारत और भारतेतर देशों की रचनाएँ तैयार करने की जिम्मेदारी भारत पर थी। हमारी बैठक में अनेक लेखों को लेकर विवाद खड़ा होता था। बहुत लंबी-चौड़ी भीड़ से काम लेने में दिक्कत आना स्वाभाविक था। कभी वाक्य दोष तो कभी शैली, विचार, अभिव्यक्ति वगैरह पर लंबी बहस चलती थी। मैं कमेटी में उम्र के हिसाब से सबसे छोटा था। आज इस बात पर अपने को खुश पाता हूँ कि मेरी बातें स्वीकृत होती थीं। सोमदत्त बखोरी मुझे मानते थे। जिस तरह धर्मवीर भारती का नाम लेते मैं अघाता नहीं उसी तरह सोमदत्त बखोरी का नाम मेरे ओंठो पर रहता है। उन्होंने हिंदी परिषद् की स्थापना की थी। परिषद् की ओर से 'अनुराग' नाम की पत्रिका प्रकाशित होती थी। इसमें मेरी बहुत सी कहानियाँ प्रकाशित हुईं। अनुराग पत्रिका मेरे लेखन की बहुत हद तक प्राणाधार रही है। जब भी मैंने इस पत्रिका के लिए कहानी भेजी वह अविकल प्रकाशित हुई।

द्वितीय विश्व हिंदी के कर्णधार हमारे देश के योजना मंत्री खेर जगतसिंह और क्रीड़ा मंत्री दयानंदलाल बसंतराय थे। इनके साथ भी हमारी बैठक लगती थी। रात तक हम काम करते थे। दस-ग्यारह बजे रात से पहले मैं घर लौट नहीं पाता था। मिनिस्ट्री की वैन मिलती थी। इन दोनों मंत्रियों का कहना था हमारी कोशिश हो कि सम्मेलन अपनी भव्यता की छाप छोड़ सके। हम कर्मचारी यही तो चाहते। हिंदी से अनुराग रखने और मॉरीशस को हिंदी से महिमा मंडित दिखाने के अवसर को हम खाली जाने नहीं देते। आज जब पीछे मुड़कर देखता हूँ तो मुझे लगता है वह लगन, वह निष्ठा, हिंदी के प्रति प्रेम का वह निनाद निश्चित ही उत्कर्ष लिए हुए था। हिंदी से रोटी पाने के साथ हिंदी के प्रति सद्भावना रखने तथा हिंदी के प्रति पूजा का संकल्प मन में ठानने से ही हमारे लिए कुछ असंभव होता नहीं था। लेखक और कवि हमारे देश में नित उभरते थे और उनकी रचनाएँ इस बात का आभास देती थीं की मॉरीशस में हिंदी साहित्य का एक विस्मयकारी क्षितिज तैयार होता चल रहा है। हिंदी लेखन के लिए वह जो भूमि तैयार हुई, वह जो क्षितिज तराशा गया आज वही हमारे काम आता है। हिंदीवाले मेरी तरह मानेंगे हिंदी की रोटी खाते हैं तो इसके प्रति हमारा कोई कर्तव्य बनता है। लोग मुझसे सहमत होंगे साहित्य से भाषा में जीवंतता आती है। मैं हिंदी साहित्य का पक्षधर आदमी हूँ। इसलिए भी हिंदी और हिंदी साहित्य पर बल दे रहा हूँ।

उन दिनों कला मंत्रालय होता नहीं था। शिक्षा मंत्री फ्रांसीसी मूल का एक गोरा था। हिंदी से अपना कोई लेना देना न मानते हुए

वह इस सम्मेलन से दरकिनार करता था। यह नई बात नहीं थी। प्रधानमंत्री शिवसागर की सहिष्णुता का ही परिणाम था कि ऐसे लोग सरकार में रहकर भी अपनी खिचड़ी अलग पकाने की जुगाड़ में लगे रहते थे।

मॉरीशस के कलाकारों को लेकर 'अंधा युग' नाटक तैयार करके भारत ले जानेवाले मोहन महर्षि ने इस बार भी नाटक तैयार किए। मोहन महर्षि ने इस बार भी सहकर्मी के रूप में मुझे अपने साथ लिया था। रिहर्सल बो बासे के त्रिवेणी भवन में होता था। मेरे दो काम हुए—एक स्मारिका में अपनी मेहनत समर्पित करना और दूसरा मोहन महर्षि का सहयोगी बनना। वे दो नाटक तैयार कर रहे थे। वे नाटक थे बादल सरकार का 'एवं इंद्रजीत' और मोहन राकेश का 'आषाढ़ का एक दिन'। 'एवं इंद्रजीत' एक सर्वथा प्रयोग नाटक था। यूँ कहें इसे प्रस्तुत करना चुनौती का दूसरा नाम था। मोहन महर्षि को अपने कलाकारों पर भरोसा था। वे मानते थे उनके अपने कलाकार इस नाटक में पात्रता निभाने की योग्यता रखते हैं। 'आषाढ़ का एक दिन' संस्कृतनिष्ठ भाषा में लिखा गया नाटक है। मोहन राकेश भी प्रयोगधर्मी नाटककार थे। 'आषाढ़ का एक दिन' प्रयोग से अछूता नहीं है। मतलब इस नाटक की संस्कृतनिष्ठता और प्रयोग दोनों का निर्वाह कर पाएँ तभी अपने को सफल कह सकते। अंततः मोहन महर्षि ने जैसा चाहा था वैसा हो पाया था। 'आषाढ़ का एक दिन'। महात्मा गांधी संस्थान में और 'एवं इंद्रजीत' रोज हिल के प्लाजा थिएटर में प्रस्तुत किया गया था। छत्रदत्त हीरामन, सुचिता रामदीन, राज हीरामन, सूर्यदेव सिबोरत आदि इन नाटकों के कलाकार हुए। बाकी लगभग वे ही कलाकार थे जिन्होंने 'अंधा युग' में अभिनय किया था। इन दोनों नाटकों के संदर्भ में मेरा जुड़ाव इस अर्थ में हुआ था कि मोहन महर्षि चाहते थे नाटक प्रस्तुति की जो पुस्तिका तैयार होगी दोनों नाटकों से संबंधित उसमें मेरा विस्तृत लेख हो। लेख का संदर्भ होने से मैं इसमें प्राणपण से जुट गया था। 'एवं इंद्रजीत' में एक स्त्री पात्र है जिसका नाम मानसी है। यह बहुअर्थी पात्र है। अर्थात मानसी कहाँ नहीं होती। 'आषाढ़ का एक दिन' की मधुलिका पीड़ा की नारी है। दूसरे पात्र भी विशिष्ट हैं। मैं आज भी मानता हूँ पैंतीस साल पहले लिखे हुए मेरे उस लेख की अपनी शान थी, अपनी गरिमा थी।

सम्मेलन के अवसर पर आलेख प्रस्तुत करने के लिए बखोरीजी ने मेरा नाम पारित किया था। मैंने स्वीकार किया था क्योंकि वह मेरा गाव्रव होता। मुझे 'मॉरीशस में हिंदी साहित्य' शीर्षक के अंतर्गत बोलना था। वक्त आने पर मैंने मंच से अपना आलेख प्रस्तुत किया। उस दिन मंच की अध्यक्षता धर्मवीर भारती कर रहे थे। आलेख पढ़ने के बाद मैं ज्योंही बैठा था कि कवि–लेखक बालकवि वैरागी से मुलाकात हुई [अगली बार सूरीनाम में (2003) जहाँ मैं सम्मानित हुआ था]। वे सूरीनाम में हिंदी में पत्र लिखते हैं। उत्तर आए चाहे न आए।

अपने इस संस्मरण में मॉरीशस आए हुए हिंदी के वंदनीय लेखकों की चर्चा यदि न करूँ तो यह संस्मरण अधूरा रहेगा। बल्कि उन्हीं को ध्यान में रखकर मैंने यह संस्मरण लिखना शुरू किया है। राजेंद्र यादव और कुछ दूसरे लेखकों को क्यूर्पिप के कॉन्टिनेंटल होटल में ठहराया गया था। मुझसे कहा गया था उन्हें लेने जाऊँ। मैं शिक्षा मंत्रालय के वैन में गया। जाने की प्रक्रिया में मेरे मन में खुशी उमड़ रही थी। यह खुशी राजेंद्र यादव को लेकर थी। दूसरे शब्दों में, मैं कॉन्टिनेंटल होटल विशेषकर अपने लाभ के लिए जा रहा था। द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन के समय मोहन राकेश की मृत्यु हो चुकी थी। उस अवसर पर उनका 'आसाढ़ का एक दिन' नाटक प्रस्तुत किया था जो उनके प्रति भावभीनी श्रद्धांजलि ही तो थी। कमलेश्वर और राजेंद्र यादव आए थे।

मैं जब कॉन्टिनेंटल होटल पहुँचा तो सबसे पहले मुझे राजेंद्र अवस्थी दिखे। वे 'कादंबिनी' पत्रिका के संपादक हुआ करते थे। मैंने उनसे कहा—मॉरीशस में आपका स्वागत है। मैं आप लोगों को लेने आया हूँ। उन्होंने अपनी ओर से केवल इतना कहा कि वे सम्मेलन में जाने वाले नहीं हैं। अब उनकी जो मरजी। मैं सीधे राजेंद्र यादव के पास गया। वे गंगा पत्रिका चलाते हैं। 2012 में भी यह पत्रिका जीवित है। पचास साल से भी ज्यादा अब तक इस पत्रिका की उम्र हो गई है। इसका संपादकीय लिखने का राजेंद्र यादव का अपना विशेष अंदाज़ है। हर अंक का उनका संपादकीय अपनी एक खास पहचान कायम करती है। पर भारत में भी ऐसा कहा जाता है राजेंद्र यादव संपादकीय में चौंकाने पर खास ध्यान देते हैं। खैर, यह भारतवालों की बात हुई। राजेंद्र यादव दो बार मॉरीशस आए। दूसरी बार उन्हें मॉरीशस के लेखकों के साथ कार्यशाला चलाने के लिए बुलाया गया था। उन्होंने कहा था लोग इस बात के लिए उतावले होते हैं कि लिखना चाहिए। पर अच्छा हो कि ऐसे उतावलेपन में पड़ने से पहले अपने मन में गाँठ बाँध लें कि—"क्या नहीं लिखना चाहिए।"

मैं सच कहता हूँ यह आज भी मेरे लिए लेखन का एक समर्थ और सार्थक व्याकरण हुआ करता है। मैं वाक्य बड़ी मुस्तैदी से तराशने की कोशिश करता हूँ। साथ ही मेरे सामने मनुष्य होते हैं जिनकी सामाजिकता का ध्यान रखने की मुझे आदत पड़ गई है।

हम जब 'अंधा युग' नाटक लेकर नागपुर से दिल्ली आए थे तब उन दिनों की यशस्वी पत्रिका 'दिनमान' के संपादक रघुवीर सहाय से मुलाकात हुई थी। सूर्यदेव सिबरत और मैं उनके ऑफिस गए थे। उन्होंने सिबरत की कुछ कविताएँ प्रकाशित करने के लिए उससे ली थीं। रघुवीर सहाय के सह संपादक थे सर्वेश्वरदयाल सक्सेना। उन्होंने 'बकरी' शीर्षक से एक बड़ा ही दमदार नाटक लिखा है। रघुवीर सहाय ने बाद में मुझे लिखा था, वे मॉरीशस में

होनेवाले सम्मेलन में आने वाले हैं। पर उनका आना न हो पाया। उनके एक दो वाक्यों से मुझे लगा था राजनीति के कारण वे छूट गए थे। मैं उन्हें पत्र लिखा करता था। उनके दो पत्र मुझे प्राप्त हुए।

आज मुझे दु:ख होता है अनमोल शब्दों से भरे ऐसे बहुत सारे पत्रों को मैंने खो दिया है ! दिवंगत हो चुके बड़े लेखकों से जुड़ी मेरी यादें, उनके आशीर्वाद और उनसे हुए संवादों की धरोहर मेरे पास निश्चित ही विपुल है। अब इसे लेकर एक कृति लिखने के संकल्प पर पहुँच रहा हूँ।

मैंने सुना था द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन में राजनेताओं, पत्रकारों के अलावा डेढ़ सौ लेखक-कवि आए थे। संख्या जितनी देखने को मिलती थी यह सच होगा। मेहमानों में से मेरे लिए विशेष प्रिय विष्णु प्रभाकर रहे थे। इसका एक कारण था। मैंने विश्व हिंदी सचिवालय की विश्व हिंदी पत्रिका में प्रकाशित अपने पिछले संस्मरण में लिखा है—धर्मवीर भारतीजी ने नागपुर में मुझे विष्णु प्रभाकर से मिलवाया था। मेरे पिछले संस्मरण में जो प्रकाशित हो चुका है उसकी दो चार पंक्तियाँ यथावत यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ।

'' मैंने [नागपुर में सम्मेलन के दिनों] लोगों से सुना था विष्णु प्रभाकरजी ने 'आवारा मसीहा' नाम से एक महत् रचना लिखी है। यदि उस पुस्तक की मुझे थोड़ी जानकारी होती तो उस वक्त मैं जरूर कुछ कहता। जो मन में रह गया था अगले साल मैंने मॉरीशस में 'अवारा मसीहा' पढ़ लेने के बाद उस अनकहे को पूरा किया था। राजधानी पोर्ट लुईस में उपेंद्रनाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर और अमृतलाल नागर एक साथ दिखाई दिए थे। मैं भारत के कुछ लेखकों को सैर करवा रहा था। विष्णु प्रभाकरजी ने हमें देखने पर कहा था—''घूमना तो खूब हो रहा है।'' मैंने अनायास ही कहा था—

आवारा हैं, मसीहा बनने की फिक्र में घूम रहे हैं।

मेरे कहने की देर थी कि विष्णु प्रभाकरजी ने मुझे अपने हाथों में कस लिया था। उपेंद्रनाथ अश्क, अमृतलाल नागर और तमाम दूसरे लेखक हँसने लगे थे। सबकी हँसी में नागरजी की हँसी कहीं ज्यादा बुलंद थी। मैंने सुना था नागरजी खूब हँसते हैं, उनकी सहज और मानवीय प्रकृति को मैंने उस वक्त मॉरीशस में चरितार्थ पाया था।

मॉरीशस में उस सम्मेलन के दौरान मेहमानों को घुमाने की व्यवस्था हुई थी। सफर बसों का होता। मैंने एक दिन पहले विष्णु नागरजी से कहा था चलने के लिए तैयार रहें। मॉरीशस के प्राकृतिक सौंदर्य से आप जरूर प्रभावित होंगे। मैंने शामारैल, गंगा तालाब और दूसरे प्राकृतिक सौंदर्य से आप्लावित स्थानों का नाम लिया था। प्रभाकरजी ने कहा था बात तो ठीक है, लेकिन बस में चढ़ने-उतरने में उन्हें कठिनाई होती थी। उनके एक पैर में दर्द था। उन्होंने अपनी वृद्धावस्था का भी जिक्र किया था। उन्होंने सस्मित कहा था—''समझो मैंने मॉरीशस की इन जगहों को तुम्हारी आँखों से देख लिया।''

यह एक महान लेखक के शब्द थे। इस लेखक के पाँवों से अधिक ऊपर मेरा स्थान हो नहीं सकता था। यह उनका गुण था, उनकी सज्जनता थी। मैंने उनके बारे में पढ़ा है, वे जीवनपर्यंत मानवता के पक्षधर रहे। उन्होंने बड़ा लेखक होकर भी अपने को बड़प्पन की हवा में बहने नहीं दिया। वे एक साधारण प्राणी की तरह रहते थे। लेखक शरतचंद के जीवन पर आधारित 'आवारा मसीहा' लिखने के लिए वे इस भावना से तत्पर हुए कि शरतचंद ने नारियों की पीड़ा और उनके जीवन संघर्ष के तमाम आयामों को उकेरा है। 'आवारा मसीहा' की प्रामाणिक सामग्री जुटाने के लिए विष्णु प्रभाकर चौदह साल कंधे पर झोला लटकाए यहाँ वहाँ दौड़-धूप में लगे रहे थे। पूरे प्रमाण का विश्वास हो जाने के बाद ही उन्होंने 'आवारा मसीहा' लिखना शुरू किया था। इसके पीछे भावना यह भी थी कि ये वे ही शरतचंद थे जिन्होंने 'चरित्रहीन' और 'देवदास' जैसे उपन्यास लिखे थे। निरीह पात्रों को लेकर उपन्यास का एक विशाल संसार रच देनेवाले शरतचंद को किसी ने टैगोर से भी बड़ा रचनाकार माना है। जो नारी वेश्या होकर भी अपनी सद्भावना से कठोर से कठोर दिल पर माँ, बेटी, प्रेमिका और संपूर्ण नारी की जोत जगमग कर जाए, इस तरह का साहित्यिक चित्र गढ़नेवाले एक शरतचंद ही हुए। यह भी वह रहस्य हुआ हो कि विष्णु प्रभाकर ने शरतचंद की जीवनी लिखना आवश्यक माना हो।

विष्णु प्रभाकर ने अपनी रचनाओं में भाषा में बनावट और पंडिताऊपन का दुराग्रह कभी नहीं पाला। सहज भाषा में रचना की प्राण प्रतिष्ठा करना उनके लिए अभीष्ट होता रहा। पर उनके अर्थ और अभिव्यक्ति को साधारण समझने की हम भूल न करें। जीवन की गहनता में जाने वाले लेखक होने के कारण वे तलाशने की कोशिश करते थे कि मनुष्य की परिभाषा क्या इतनी ही होती है जो उसके दृश्य रूप में होती है ? विष्णु प्रभाकर की रचनाएँ न बोलकर भी बोलती हैं, जो दृश्य रूप में न होकर अदृश्य होती है, इसकी व्याख्या सहज नहीं होती। विष्णु प्रभाकर का एक उपन्यास है जिसका नाम है 'अर्द्धनारीश्वर'। इस उपन्यास से स्वत: सिद्ध होता है कि विष्णु प्रभाकर नारी और पुरुष के प्रति कैसी सोच रखते थे। मनुष्य धरती के ही सुख-दु:ख के जीवन से जुड़ा हो, लेकिन उनकी चेतना का कोई तंतु अवश्य आकाशगंगा जैसी किसी विचित्रता से अपनापा रखता है। पुरुष और नारी की बाह्य और आंतरिक गुत्थयों की जाँच पड़ताल के लिए जयशंकर प्रसाद के महाकाव्य 'कामायनी' को मील का पत्थर माना जाता है। इसी तरह पुरुष और नारी के रेखांकन में गहरे जाने वाले विष्णु प्रभाकर का उपन्यास 'अर्द्धनारीश्वर' एक वह कृति है जिसे हिंदी साहित्य कालजयी रचना के रूप में स्वीकारने से तनिक भी हिचकिचाने वाला नहीं है। विष्णु प्रभाकर का लिखा एक वाक्य सूत्र है—''मैं शब्दों को अर्थ देने की अपेक्षा अर्थ को शब्द देने का प्रयास करता हूँ।''

विष्णु प्रभाकर पैर के दर्द और दूसरी कठिनाइयों की वजह से बस से सफर के लिए निकलने की स्थिति में नहीं थे तो मैंने कहा था मोटर से जाना आपको सहज लगे तो मैं व्यवस्था कर दूँगा। उन्होंने मेरी ओर देखकर कहा था ऐसा हो जाता है तो मैं जा सकता हूँ। मैंने खुशी से कहा था अगले रोज आप तैयार रहें। मैंने चाहा था वे अपने एक दो मित्रों को साथ चलने के लिए कहें। उन्होंने उपेंद्रनाथ अश्क और अमृतलाल नागर का नाम लिया था। यह तो सोने में सुगंधवाली बात हुई। पोर्ट लुई में इन तीनों को साथ देखने पर मैं समझ गया था तीनों परम मित्र थे। इन तीनों का साथ पाना मेरे लिए सौभाग्य का एक स्रोत ही तो हुआ। सफर के दौरान इनसे मैं साहित्य की बहुत बातें सीख पाता। मैं एक तरह से इस मामले में हठी स्वभाव रखता था। लेखक कितने भी बड़े हों मैं अपने प्रश्न करने से विचलित होता नहीं था। मेरा स्थान ऐसे लेखक के पाँवों में ही हो, लेकिन मेरे प्रश्न का अस्तित्व जरूर असाधारण हो। मुझे याद आता है, मॉरीशस में भारत के एक दिग्गज समीक्षक ने कहा था—भारत में हिंदी का कोई समर्थ लेखक होता नहीं है। मैंने कहा था—वे अपनी यह बात वापस लें, क्योंकि मेरा पढ़ा हुआ था कि प्रेमचंद, रेणु, नागार्जुन आदि हिंदी के समर्थ लेखक थे।

विष्णु प्रभाकर के इन दोनों मित्रों उपेंद्रनाथ अश्क और अमृतलाल नागर की रचनाएँ मैंने पढ़ी थीं। उन दिनों मैं फ्लाक के मॉडर्न कॉलेज में मध्यमा कक्षा के विद्यार्थियों को पढ़ाता था। अश्क का नाटक 'शहर में घूमता आईना' पाठ्यक्रम में निर्धारित था। साथ ही उनकी एक कहानी भी पाठ्यक्रम में थी। इस बारे में अश्कजी से प्रश्न करने का अवसर मिलता तो मैं चुकता नहीं। रहे अमृतलाल नागर वे तो हिंदी लेखन के उन दिनों आधार स्तंभ थे। मैंने उनका उपन्यास 'बूँद और समुद्र' बहुत पहले पढ़ लिया था। वे लखनऊ में रहना पसंद करते थे। उनके जीवन परिचय में दर्ज है—वे लखनऊ की तवायफों की कहानी लिखनेवाले अद्वितीय लेखक हुए। उन्हें भी इन महिलाओं में शरतचंद की तरह लेखन के लिए तमाम सूत्र मिल जाते थे। लखनऊ में हिंदू-मुसलमान के बीच दंगे-फसाद होने पर अमृतलाल नागर अवसाद से भर जाते थे। उनका मानना था लखनऊ के पास एक विशाल सांस्कृतिक संपदा है। उन्हें इस बात का दुःख था कि सिरफिरेपन के कारण लोग उस सांस्कृतिक धरोहर को रौंद डालने की नृशंसता में पगे होते थे। मॉरीशस से लौटने पर अमृतलाल कुछ वर्ष जीवित रहे। मैं जहाँ तक जानता हूँ 'खंजन नयन' उनका अंतिम उपन्यास है।

उन दिनों मेरी मोटर नहीं थी। मैं मोटर के बारे में सोच भी नहीं सकता था। साइकिल भर हो तो गनीमत थी। हम प्राइमरी में काम करनेवाले अध्यापकों की तब तनख्वाह बहुत सीमित होती थी। शायद मेरी तनख्वाह ढाई सौ के आस-पास रही होगी। तब सालाना इंक्रिमेंट दस रुपए का होता था।

वक्त आने पर मैंने अपने जिम्मे पर अपने गाँव से टैक्सी ली थी और महात्मा गांधी संस्थान पहुँचा था। सभी मेहमानों को विभिन्न होटलों से महात्मा गांधी संस्थान लाया गया था। यहाँ से वे बस द्वारा भ्रमणार्थ निकलनेवाले थे। मैंने देखा उपेंद्रनाथ, अमृतलाल नागर और विष्णु प्रभाकर सामने खड़े थे। मैंने तीनों के चरण छुए और उन्होंने मुझे गले लगाया। अमृतलाल नागरजी ने कहा—चलो मैं देखता हूँ तुम्हारे देश में 'लखनऊ जैसा' कुछ होता है कि नहीं। अश्कजी ने तत्काल कहा—''ऐ पंडित, क्या कहते हो···लखनऊ! अपने बुढ़ापे का खयाल तो रखो।''

विष्णु प्रभाकर ने हँसते हुए मुझसे कहा था—''इन लोगों की बातों पर ध्यान न दो। ये बदतमीज लोग हैं।'' नागरजी ने झट से प्रभाकरजी को अलग हटाया था और मेरे कंधे पर हाथ रखकर कहा था—''भाई, हम बदतमीजी के लिए ही तो भारत में जाने जाते हैं।''

अब बोलने का रहा सहा कमान अश्कजी ने सँभाला था। उन्होंने प्रभाकरजी से कहा था—''तुम साधु के साधु ही रह गए देवता। रहा मॉरीशस का यह जवान लेखक। यह हमारी ही तरह साहित्य में हाथ-पाँव मार रहा है। इसे छोटा मत समझो कि इस से परदा करना पड़े।''

महात्मा गांधी संस्थान के प्रांगण में खड़े मेहमानों को अब मानो हम दिखाकर टैक्सी में चल पड़े थे। किसी ने हाथ से अभिवादन किया था तो किसी ने कहा था—''हमें ललचते छोड़कर तुम सब जा रहे हो यह अच्छी बात नहीं है।''

उस वक्त अमृतलाल का कहा मुझे हूबहू याद है। उन्होंने कहा था—''अपने-अपने भाग्य की बात है। इस देश में यह लड़का जो हमें मिल गया है।''

मौका से हम सीधे गंगा तालाब की दिशा में चल पड़े थे।

उपेंद्रनाथ अश्क गंभीरता बनाए रखने की कोशिश करते प्रतीत होते थे। उनका यह हुलिया देखकर संत स्वभाव के विष्णु प्रभाकर और अमृतलाल नागर कहकहे के बीच उनकी खिंचाई करते चल रहे थे। दोनों की बातों का आशय मैं पहले से जानता था। भारतीय पत्रिकाओं में पढ़ने को मिलता था, अश्कजी कैसा मिजाज रखते हैं। हम परी तालाब के तट पर उतरे तो अश्कजी ने अपने कैमरे से अपनी तसवीर उतरवाने की चाह प्रकट की। वे सिर पर दिलचस्प टोपी धारण करते थे। टोपी को हर क्षण कभी इस किनारे से तो कभी उस किनारे से घुमाकर अपने सिर पर फिट करना मानो उनके लिए अनिर्वाय होता था। फोटो की बात करने के साथ वे अपनी टोपी ठीक करने लगे थे। नागरजी ने कहा था—''मॉरीशस में भी तुम सिंगार-पटार की अपनी आदत से बाज आते दिखते नहीं। और देर करोगे तो मुझे कहना पड़ेगा ऐटर के टोपीवाले तुम्हारे चक्कर को यहीं पानी में बहाकर उसका तर्पण करते हैं और आगे के लिए

कूच करते हैं।''

अश्कजी ने हँसकर अपनी टोपी ठीक करते हुए उत्तर किया था —''क्या करें, मॉरीशस है ही ऐसा प्यारा देश, यूँ कहें दूल्हे-दुलहन की तरह।''

यहीं मैंने जाना अश्कजी का 'नीलाभ प्रकाशन' नाम से एक प्रकाशन गृह चलता है। वे हिंदी वालों से बात करने की प्रक्रिया में कहते हैं पुस्तकें खरीदें तो नीलाभ प्रकाशन से ही। खैर, यह तो हँसी की बात हुई। अश्क का हिंदी साहित्य में जो नाम है यह हँसी-मज़ाक से बहुत ऊपर है। उन्होंने बहुत से नए लेखकों का मार्गदर्शन किया है। अपने यहाँ किसी की पुस्तक प्रकाशित करना संभव न हुआ तो उन्होंने किसी और प्रकाशक से मिन्नतकर के कितनों की पुस्तकें छपवाई हैं। अश्क की लिखी हुई एक बात मुझे याद आ रही है। वह बात है—''हरिवंशराय बच्चन पूरा हाथ न मिलाकर बस तीन चार अंगुलियाँ ही आगे करते थे।''

इसमें अश्क का स्वाभिमान न हो तो भी कुछ तो होगा।

उस यात्रा के दौरान अश्कजी से संबंधित एक मजेदार बात हुई थी। उन्होंने 'बैंगन का पौधा' नाम से एक व्यंग्य रचना लिखी थी। उस पुस्तक के बारे में प्रचार कुछ ऐसा हो गया था कि उसमें बैंगन रोपने का नुस्खा सिखाया गया है। बैंगन के पालन-पोषण और उसे बड़ा कर खाने के योग्य बात होने से यह तो कृषि मंत्रालयवालों का मामला हुआ। कृषि मंत्रालय के एक दो बड़े ऑफिसर अश्कजी की उस कृति को अपने मंत्रालय के लिए महत्त्वपूर्ण मानकर प्रतियाँ खरीदने आ गए थे। अश्कजी ने सच्ची बात की गाँठ न खोलकर उनसे और भी तड़क-भड़क से कहा था बैंगन बोने का तरीका कैसा होना चाहिए। उनकी बातों से प्रभावित होकर उन लोगों ने पाँच सौ प्रतियाँ खरीदी थीं। यह तो भागते भूत की लँगोटी हाथ लगना हुआ। अश्कजी पचास तक प्रतियाँ जाने की मन-ही-मन ईश्वर को सुमिर रहे थे।

अश्कजी मॉरीशस से अपनी मातृभूमि लौटने पर साहित्य में सक्रिय तो रहे, लेकिन स्वास्थ्य उनका साथ छोड़ने लगा था। मैंने यहीं सुना था वे बीमार रहते हैं। स्वास्थ्य से वंचित रहनेवाले अश्क को साहित्य की दुनिया से निराशा होने लगी थी। बाद में मेरे पढ़ने में आया था अश्कजी ने अपने अंतिम दिनों में पारचून की दूकान खोल ली थी और ग्राहकों की आशा में स्टूल पर बैठे रहते थे।

पूर्व पंक्तियों में मैंने लिखा उन तीनों महारथियों से साहित्य को लेकर प्रश्न करने की मेरे मन में बेताबी बनी हुई थी। उस रोज उन तीनों के साथ रहने पर ऐसे अवसर आते रहे और मैं उनसे सीखने के लिए प्रश्न करता गया। पर ऐसा भी कि प्रश्नों के बिना भी मेरी जिज्ञासा का समाधान होता चल रहा था। वे हिंदी साहित्य के पुरोधा थे। वे ऐसी-ऐसी बातें कह रहे थे जो कहीं लिखा मुझे देखने को मिलनेवाला नहीं था। यह उनका अपना ज्ञान था, अपनी साहित्यिक सूझ-बूझ थी। उनसे भारत की दूसरी भाषाओं के साहित्य की भी मुझे बहुत सारी बातें सुनने को मिलीं। उड़िया साहित्य के 'माटी मटाल' और मराठी उपन्यास 'ययाति' का नाम मैंने पहली बार सुना। मुझे खुशी होती है बाद में इन दोनों उपन्यासों का हिंदी रूपांतरण मैंने पढ़ा। दोनों को ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला था।

पूर्व पंक्तियों में मैंने लिखा उन तीनों महारथियों से साहित्य को लेकर प्रश्न करने की मेरे मन में बेताबी बनी हुई थी। उस रोज उन तीनों के साथ रहने पर ऐसे अवसर आते रहे और मैं उनसे सीखने के लिए प्रश्न करता गया। पर ऐसा भी कि प्रश्नों के बिना भी मेरी जिज्ञासा का समाधान होता चल रहा था। वे हिंदी साहित्य के पुरोधा थे। वे ऐसी-ऐसी बातें कह रहे थे जो कहीं लिखा मुझे देखने को मिलनेवाला नहीं था। यह उनका अपना ज्ञान था, अपनी साहित्यिक सूझ-बूझ थी। उनसे भारत की दूसरी भाषाओं के साहित्य की भी मुझे बहुत सारी बातें सुनने को मिलीं। उड़िया साहित्य के 'माटी मटाल' और मराठी उपन्यास 'ययाति' का नाम मैंने पहली बार सुना। मुझे खुशी होती है बाद में इन दोनों उपन्यासों का हिंदी रूपांतरण मैंने पढ़ा। दोनों को ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला था।

परी तालाब और ले गोर्ज से होते हम शामारैल पहुँचे थे। वहाँ तीनों विस्मय से चौंके थे। मैंने कहा था—यहाँ चालीस रंगों की मिट्टी होने की बात की जाती है। अश्कजी तो रंगीन मिट्टी अपने साथ ले जाने पर अड़ गए थे। मुझे कहना पड़ा था—इसके लिए वर्जन है। हठ करें तो कैद की सजा है। ऐसी बात थी तो अश्कजी ने रंगीन मिट्टी का मोह छोड़ा था। यहाँ उन्होंने अपनी टोपी बिना ठीक किए तसवीर उतरवाई।

विष्णु प्रभाकरजी ने कहा था—''मानना होगा रंगीन मिट्टी का यह प्राकृतिक सौंदर्य ईश्वर का एक अद्भुत चमत्कार है।''

—कारोलीन, बेल-एर
मॉरीशस
इ-मेल : rdhoorundhur@gmail.com

❑

करीबियाई देशों में हिंदी का संघर्ष : गयाना के विशेष संदर्भ में

(9वें विश्व हिंदी सम्मेलन—जोहांसबर्ग दक्षिण अफ्रीका में प्रस्तुत आलेख)

–वर्षिणी उधो सिंह

The 9th World Hindi Conference, Johannesburg, South Africa, 22-24 September 2012

Survival of Hindi in the Caribbean, the Guyana Experience By Varshnie Udho Singh of the Guyana Hindi Prachar Sabha

I bring you greetings from your Brothers and Sisters in Guyana. It is a great honour for me to address this gathering at the 9th World Hindi Conference. This year marked 174 years since the first Indian immigrants arrived on the shores of Guyana. That 2 out of the 9 conferences have been held in our region of South America and the Caribbean, we hope conveys the interest and enthusiasm our brothers and sisters have for this essential part of our heritage.

In Guyana our forefathers came to the Caribbean with barely 3 things, their religions, languages and cultures. It was a very strong foundation that saw them through the hard days of slavery at the hands of their colonial oppressors. It was a foundation that through carelessness we neglected to build on securely with concrete and steel, using instead mere straws.

- गुयाना के पूर्व फर्स्ट लेडी वर्षिणी उधो सिंह का जन्म पेकहाम, यू.के. में हुआ, उन्होंने प्रशासन, प्रबंधन, बीमा बैंकिंग आदि क्षेत्रों में तथा 5 कानूनी फर्म के लिए पारालीगल के रूप में काम किया।
- सन् 1999 में भरत जगदेव के साथ उनका विवाह हुआ, जो गुयाना के राष्ट्रपति बने और वह गुयाना की फर्स्ट लेडी बनीं।
- हिंदी भाषा के साथ उनका भावात्मक लगाव है और वह गुयाना में हिंदी शिक्षण के उन्नयन तथा हिंदी भाषा और संस्कृति के प्रचार के लिए कार्यरत अनेक संस्थाओं के साथ जुड़ी हैं। वह गुयाना हिंदी प्रचार सभा की संरक्षिका और डिवाइन चेरिटेबल सोसाइटी की संरक्षिका तथा सचिव भी हैं।
- **संप्रति :** 'किड्स फर्स्ट फंड' तथा 'सिटिजेंस एडवाइस ब्यूरो' की संरक्षिका तथा सचिव। कराटे कॉलेज तथा ए. 4 फाउंडेशन के बोर्ड की सदस्या। बाल अधिकार तथा बाल श्रम के विरुद्ध राष्ट्रीय संचालन समिति के राष्ट्रीय आयोग की अध्यक्षा भी हैं।

Indian immigration started in 1838 with Indians coming from all parts of India. In my own family my Ajha is from Orissa, my Ajee is from Rajasthan, my Nanee from Maharastra and my Nana from Nepal. They came to Guyana as indentured labourers which was a fancy word for slave. Some came initially on a 5 year bond with a contractual arrangement for a return passage to India. Some were misled and some even kidnapped from the land of their birth.

They travelled for many days by boat in abysmal conditions, many died and only the strongest survived. From different regions of India they were unified as Jahajis by their common uncertain fate. They were mostly uneducated, spoke different languages, but they all had a variable understanding of Hindi. They retained their religions, cultures, family values and conviction to improve their lot.

The Hindi language continued to be the language of communication amongst the Indian for a long time to come. Many had the desire to return to their motherland and after the

period of indentureship was over but the sugar planters made it difficult to do so. Hindi language was taught in makeshift Mandirs and Logees during the early period of indentureship under the guidance of a knowledgeable person among the Indians. Later it shifted to bottom house schools (informal night schools under the common stilt type houses).

It was not until 1876 when primary education was made compulsory that the Indians started to send their sons to school. Sadly the education of girls was never given priority by the parents or the authorities until the 1950's. Hindi schools run by Mandirs used to receive a pittance as payment for the Hindi teacher prior to our country's independence in 1966.

The present day situation is that Hindi education is left mainly to socio-cultural organisation like the Guyana Hindi Prachar Sabha (G.H.P.S) to take the initiative and responsibility. In 1954, independent India, gave us the gift of Hindi and Cultural teachers through the ICCR, (Indian Council of cultural Relations). We were blessed to have teachers like, dynamic freedom fighter Shree Dr Kaka Sahib Kalilkar, Babu Mahatam Singh, then Shrimatee Amma

Ratnamayee Devi Dixit, who transformed the cultural jungle in Guyana into a landscaped garden of Hindi and Culture. The G.H.P.S was established by Shree Mahatam Singh in 1954. Both he and Amma, went village to village from one end of Guyana to the other; training unpaid voluntary teachers and establishing Hindi classes. Preparing students for overseas Hindi Examinations by Dakshin Bharat Hindi Prachar Sabha, Madras 17. Many students, including non-Indians,successfully wrote the Prathmic, Madhyama and Rashtrabhasha examinations. Many assisted the propagation of Hindi in those days from 1954 to the early 1960's.

Political turmoil aimed at destroying Indians and their culture a forced mass migration. Many of our Hindi loving teachers migrated and Hindi suffered. Those who remained in Guyana had to give priority to survival under a destructive dictatorship. Very few teachers and students remained, so for over 3 generations, Hindi suffered further.

G.H.P.S remained and continued their village to village activities throughout this turbulent period and continue to fulfill their mandate to this present day; which my generation is fortunate to enjoy.

Today the G.H.P.S unpaid volunteers go to every village to train teachers and establish Hindi classes. We provide books, charts, past exam papers, syllabus, we offer 5 levels of examinations every August;

1. Bal Bodh 1
2. Bal Bodh 2
3. Prarambha
4. Pravesh
5. Shabdavali(for nursery school children)

Modern day society, culture and politicians have given Hindi a backseat in terms of priority. On one hand they say Hindi should be a world language, but are not investing in teaching the diaspora who are begging to be taught, in particular Guyana.

The answer to this Hi Tech worlds challenges are in the Ramcharitmanas. To be able to access the deeper meaning we need Hindi. Our forefathers knew this and used this knowledge successfully to produce outstanding human beings, by living what they read, every day of their lives. They passed down their knowledge to their children. We too wish to teach our children, to ensure the rich legacy of knowledge continues, but we don't know enough Hindi.

At birth we were given Hindi names, as young children, we were taught Hindi by our grandparents or parents. We did not see the relevance too much at the time but it made them happy. Once we were older and more experienced, we could appreciate the knowledge as there is much false interpretation of what our scriptures say.

We used to read the Tulsicrit Ramayan from cover to cover in pure Hindi. We have a good grasp of the vocabulary. Learning Hindi actually helps you with English grammatically romanised pronunciation does not come close to the Devnagri script.

One of our greatest regrets and disadvantages that we see now is that we did not practice speaking Hindi outside of Ramayan reading. This is a commonplace situation in Guyana and the diaspora, where people know to read and write but can't speak the language to have an ordinary conversation. Or understand when it is being spoken beyond a few basic sentences.

The Hindi lessons provided at the Mandir level were based on Hindi text books such as Baitaal Pacheesee, Prem Sagar, Nathuram's Pahli, Doosrie and

Teeserie Pustak and Baal Shiksha. In addition excerpts from the Ramayan are used for normal and ethical lessons. These are expanded in Ramayan Kathas and at various yajnas.

To promote the cultural language of the Indians, a reassessment of the present cultural situation is needed. Some dimensions of the existing situation vis-à-vis Hindi education are :

1. At present there is no economic value to learning Hindi but there is great life, spiritual and cultural benefit
2. There is a love by our nation and region for Hindi films
3. Hindi songs are popular with our nation and region, especially the fusion and remixes
4. Many Hindi words are embedded in the local parlance
5. Pujas are conducted using Hindi and Sanskrit invocations
6. Parents continue to give their children Hindi names
7. Hindi is spoken only by a few persons in our nation and region

Our Knowledge of Hindi In Guyana :

We can read Hindi (a little), we can write Hindi (a little),we know a little about swar, we know a

little Vyangen, we know a little of Matra or barah khari(vowel signs), Adha Akshar (1/2 letters,

2-4 letter words, simple present tence (vartman kaal),the AA, AY, EE rule, TA, TAY,TEE rule,

simple present tense e.g. Mai Hindi sikhtee hu, simple pastence e.g. Way Hindi sikhtay tay,

Simple future tense e.g. Hamaray baal bachay Hindi sikhengay, imperitive (Vidhi) e.g. Tu ja - thou goest, Tum jaow - you go, Aap Jaeay - you please go.

We can recite prayers and sing from memory in Hindi and Sanskrit, but we have completely lost the art of speaking Hindi and understanding the real essence of our scriptures.

The challenge is how to propagate Hindi in a non-Hindi Speaking Environment?

We have an approach to recommend for your consideration and active pursuit. Which in our opinion will help to ensure the survival of Hindi in Guyana and the diaspora.

1. There is a need for flexible Hindi/English speaking teachers, to come to Guyana etc for at least a 3-4 year period and teach us to read, write and particularly speak Hindi. The G.H.P.S will do all the groundwork and make all the preparations for the teachers to function
2. We need the latest and most effective scientific methods of teaching Hindi both spoken and written. We need Hindi font software so we can create our teaching materials in better quality than hand written, we can print our magazine Gyanda and our Bol Chal book with ease.
3. There is a need to have a series of special graded text books for the Hindi language written for persons not necessarily familiar with the language, but want to learn it. We recommend strongly Samuchee Hindi Shiksha books 1-4 by Shree Veda Mitra and Hindi Rachna 1&2 (Grammar)
4. The creation of fund provided by supporters of Hindi and Culture, to assist lovers of Hindi to purchase books, pay for teachers, provide learning aids/software etc so we can help ourselves and help others
5. The textbooks must attempt to integrate Nagri script and translation simultaneously
6. The textbooks must carry a key to pronunciation of Nagri script and translation simultaneously
7. The use of abridgments of Indian classical and historical texts should form a significant component of the new text books.
8. Nursery picture books, junior Hindi dictionaries with pictures should be compiled to go along with the new text books
9. Learn Hindi, Audio cassettes, CD's, DVD's, YouTube lectures, Hindi teaching websites and Hindi Software etc should be made available free to all who wish to learn and teach
10. We also need our religious texts like the Ramcharit Manas, The Bhagvad Gita, Mahabharat, Vedas etc translated and made available to us
11. We need Hindi lessons and story books in Amar Chitra Katha style
12. We would like to see Hindi Lessons and Classical/Religious/Historical Texts on CD, DVD

13. We badly want Hindi to be spoken by the diaspora particularly Guyana, within 5 years

In short the sweetness of Hindi has left our lives, we recognized this since Hindi teachers stopped coming to Guyana. Yet we have not been in slumber, we have been working tirelessly to get help ever since.

We have been pleading with everyone we could find, the India High Commission in Guyana(their hands are tied) the Ministry of Education, India, I.C.C.R, the Ministry of External Affairs, India, to give us Hindi teachers, text books, dictionaries (Hindi-English, English-Hindi).

We have even written to and appealed in person to Dr Karan Singh; Our Patron met him at his office in 2011 and Guyanese in the UK petitioned him earlier this year when he delivered the Shree Birla Memorial Lecture on the Bhagwad Gita at the Bharti Vidya Bhavan. We have never received an acknowledgement even, to date.

The G.H.P.S has attended 4 out of the 9 conferences, this is our 5th consecutive one and we have learnt nothing. The World Hindi Conference is aimed at advanced students and masters of Hindi, not beginners like us. If Hindi is to be a major world language, it will need to be taught worldwide. When learning a new language you will need to start from the beginning, the basics. Why not reflect this in the conference?

We are asking that for the 10th and every Conference to follow, special teaching sessions be included for novices, in workshop format. Using modern methods and techniques to teach beginners to read, write and speak Hindi. We have been calling for this recognition and inclusion in the World Hindi Conference for over 20 years, at all levels and forum without success.

Please let 2012 be the year you heed our call and show us you are serious about Hindi being a major world language starting with Guyana. Otherwise this will have to be our last contribution to and attendance of this conference. As the anticipated returns fall far short of what we have to expend financially and can't be justified.

I was given 3 minutes to present this paper having travelled through 2 continents and having spent £3000 for my father and I to attend this conference. When other delegates in my session were given ten minutes and over! And some received financial assistance to pay for air fare, hotel and expenses.

We are on bended knees with clasped hands and all humility, begging this conference to help us.

Please give us Hindi teachers to train our teachers and students, so we can have Hindi as a spoken language in our lifetime.

Finally we invite the organisers to consider Guyana as the venue for the 10th World Hindi Conference.

Hindi is not just a language to us, its our life, if Hindi dies, as Indians we die.

Jai Hind ! Hindi Maa Ki Jai Ho ! Dhanyabaad !

—वर्षिणी उधो सिंह
गुयाना
इ-मेल : jaihindimaa@gmail.com

❑

शिक्षित के लिए सभी देश और सभी नगर अपने बन जाते हैं।

—तिरुवल्लुवर

⁜ ⁜ ⁜

शिष्टाचार का उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

—भट्टनारायण

मैं शहीद हूँ

–श्रीमती नीतू सिंह

वह आज फिर छत पर आई होगी
चाँद से थोड़ी देर बतियाई होगी
तारों पर थोड़ी देर ललचाई होगी
फिर चाँद को देख कोई गीत गुनगुनाई होगी
फिर पायल की झनक के साथ नीचे उतर आई होगी
चाँद से कोई तो पैगाम लाई होगी
वह आज फिर छत पर आई होगी
वह आज मंदिर की सीढ़ियाँ चढ़ आई होगी
साथ में पूजा का थाल लाई होगी
थाल ने गेंदे की महक फैलाई होगी
उसने मंदिर की घंटी बजाई होगी
और होंठों से कुछ बुदबुदाई होगी
वह आज फिर छत पर आई होगी
साँझ जब ढल रही है वह पनघट से आई होगी
साथ में पानी का घड़ा भर लाई होगी
पनघट पर जब उसकी चुनरी लहराई होगी
सरसों के खेत सी वह भी बलखाई होगी
गीले पदचिह्न द्वार तक छोड़ आई होगी
वह आज फिर छत पर आई होगी
वह आज जब झुमका कमरे में भूल आई होगी
दूर गाँव की सीमा पर कोई बारात आई होगी
तो शायद उसे मेरी याद आई होगी
वह उसी आम तले आई होगी
आँखें नम न हों इसी में भलाई होगी
वह आज फिर छत पर आई होगी
जब पड़ोस के टी.वी. पर यह खबर आई होगी
वह भी चुपके से यह बुलेटिन सुन आई होगी
कि एक बार फिर सीमा पर लड़ाई होगी
यह सुन वह थोड़ा तो घबराई होगी
फिर उदास कदमों से रसोईघर लौट आई होगी
वह आज फिर छत पर आई होगी
आज फिर मेढक टर्राया होगा और बरखा आई होगी
उन पहली बूँदों में मेरी गाय तब तक नहाई होगी
जब तक वो उसे दूसरे खूँटे से न बाँध आई होगी
द्वार के बाहर बाबा और चौखट पर माई होगी
दोनों ने बूढ़ी आँखें क्षितिज पर दौड़ाई होंगी
वह आज फिर छत पर आई होगी
वह आज आईना देख शरमाई होगी
माथे पर लालिमा सी बिंदी लगाई होगी
और आखिरी बार उसने माँग सजाई होगी
क्योंकि वह सुबह ऐसी खबर लाई होगी
जिससे उसकी आँख भर आई होगी
वह आज फिर छत पर आई होगी
मेरा दावा है उसकी सूनी कलाई होगी
मेरे गाँव में क्या कहूँ कैसी खामोशी छाई होगी
जब द्वार पर मेरी ही अर्थी आई होगी
खेतों में भी अजीब सी चुप्पी छाई होगी
जब फौलादी सीने से मेरे दुश्मन की गोली चोट खाई होगी
वह आज फिर छत पर आई होगी

❑

मैं अखबार हूँ

–वशिष्ठ कुमार झमन

दस रुपए में बिकता हूँ रोज
और खो देता हूँ रोज ये भी मोल
पढ़े–लिखे शिक्षित लोगों के हाथों में
रोता हूँ बार–बार

शर्मनाक खबरों से बनी
अपनी अस्मिता पर

कभी लिख दिया जाता है मुझ पर
हज़ारों लोगों के पसीने को पीकर
घूमता है कोई बड़ी–बड़ी गाड़ियों में

फिर भी कहता है
मेरी प्यास नहीं बुझी
मुझे तुम्हारा खून भी चाहिए
एक कायर सी लौ जगती है लोगों में
जो शीघ्र ही बुझ जाती है

अँधेरे के डर से
मेरी बिक्री बढ़ जाती है जब
बलात्कार को सनसनीखेज बनाकर
मेरा विज्ञापन किया जाता है
और ढिंढोरा पीटता हूँ मैं
किसी की तबाही का

दस रुपए में
और फिर

वही कायर सी लौ
बेइमानी, चोरी, भ्रष्टाचार
बच्चों पर जुल्म, स्त्रियों पर अत्याचार
नेताओं के ढकोसले
बयान करता हूँ रोज

चिल्ला–चिल्लाकर
और फिर
वही कायर सी लौ

इस जलने–बुझने तक ही
सीमित रह गई है
परिभाषा मेरी
फिर भी तसल्ली दे देता हूँ खुद को
कि आज का इनसान भी
मेरी तरह जीता है
पर न जाने क्यूँ
इनसानों सा जीना
मुझे अब तक रास नहीं आता।

37

मेरी पहचान 26 जनवरी

–कौशल किशोर श्रीवास्तव

कॉफी के टेबल पर बैठे कुछ मित्रों के बीच,
किसी ने मुझसे पूछ दिया, ''तुम्हारी पहचान क्या है?''
मैं थोड़ा अचंभित हुआ, भ्रमित हुआ,
इस सारगर्भित प्रश्न का आयाम क्या है?
ट्रैफिक पुलिस, बैंक क्लर्क, हवाई यात्रा नियंत्रक द्वारा
'पहचान पत्र' की जिज्ञासा पर मैंने कई बार 'ड्राइविंग लाइसेंस' दिखाया है,
और उन्होंने मुसकराते हुए 'थैंक यू' कहकर आभार प्रकट किया है।
पर इस बार प्रश्नकर्ता बुद्धिजीवी या पत्रकार या कोई शोधकर्ता लगता है।
जिसे हमारा 'पहचान पत्र' नहीं, हमारी 'पहचान' चाहिए।
मैंने सोचा 'मैं भारतीय हूँ' कहना शायद सार्थक होगा,
पर भारतीयता का कोई संक्षिप्त, स्पष्ट स्वरूप नहीं है,
यह तो विभिन्न धर्मों, संस्कृतियों, दार्शनिक विचारों,
वेश–भूषा, खान–पान इत्यादि का आदि स्थल है,
क्या इन सबों में कोई एक भाव दिखता है जिसे हम भारतीय कहें?
मैंने सोचा मेरी पहचान शायद मेरे चेहरे का 'ब्राउन रंग' है,
जो जन्मजात है और सदियों से प्रख्यात है,
पर आधुनिक युग में ऐसा कहना रंगभेद को दरशाता है,
जिसका मैं घोर विरोधी हूँ,
अतः यह मेरी पहचान का आधार नहीं है।

पुनः ऑस्ट्रेलिया में रहते हुए, इसको कर्मभूमि मानते हुए,
क्या हमारी पहचान केवल भारतीयता हो सकती है?
नहीं, ऐसा कहना वर्तमान का तिरस्कार है।
सामाजिक मूल्यों का अनादर है।
हमारी पहचान में 'जन्मभूमि' और 'कर्मभूमि' के आदर्शों का संगम हो,
वर्तमान युग की झलक हो और जीवन का आधार हो,
इस मानक कसौटी पर मेरी पहचान '26 जनवरी' है,
इसमें निहित अधिकारों का, गौरवगाथा का,
मैं प्रणेता हूँ, अभिनेता हूँ ओर इसी का ध्वज फहराता हूँ।
इसे हम 'भारतीय गणतंत्र दिवस' कहें या 'ऑस्ट्रेलिया दिवस' कहें,
यही मेरी पहचान का संबल है,
मानवीय मूल्यों, स्वतंत्र जीवन, समानता और प्रगति का द्योतक है।
अंत में प्रश्नकर्ता ने कहा, ''मैं इस सोच का समर्थक हूँ,
और तुम्हारी पहचान पर समर्पित हूँ।''
इन शब्दों की शक्ति ने मुझे उत्साहित किया,
और मैंने उच्च स्वर में कहा, ''26 जनवरी ही मेरी पहचान है।''

—

❑❑❑

विचारों का अजीर्ण भोजन के अजीर्ण से कहीं बुरा है।

— महात्मा गांधी